वैज्ञानिक परिदृष्टि



राजकमल प्रकाशन

दिल्ली ६ पटना ६

बर्ट्रैंड रसेल



वैज्ञानिक परिदृष्टि

अनुवादक
श्री गंगारत्न पाण्डेय,
एम० ए०, एल एल० बी०

मूल्य १०.००

प्रकाशक
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
दिल्ली ६

मुद्रक
नवीन प्रेस
नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज
दिल्ली ६

Hindi Translation of
'Scientific Outlook'
originally published by
George Allen & Unwin Ltd London

प्रस्तावना

यह एक सामान्य कथन हो गया है कि हम लोग वैज्ञानिक युग में रह रहे हैं। किन्तु अधिकांश सामान्य उक्तियों की भाँति यह कथन भी केवल आंशिक रूप में ही सत्य है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि हम अपने पूर्वजों की दृष्टि से अपने समाज पर नज़र डालें तो वह हमें बहुत अधिक वैज्ञानिक समाज मालूम होगा किन्तु आगे आने वाली पीढ़ियों की नज़र से देखने पर सम्भावना इस बात की है कि अपना समाज हमें ठीक इसका उल्टा ही दिखाई दे।

मानव जीवन में विज्ञान ने अभी हाल ही में एक तात्त्विक स्थान ग्रहण किया है। कला का बहुत अधिक विकास, जैसा कि हम गुफाओं के प्रशंसनीय चित्रों से मालूम होता है अंतिम हिम-युग में पहले ही हो चुका था। धर्म की प्राचीनता के सम्बन्ध में इतने विश्वासपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता फिर भी बहुत सम्भव है कि धर्म का विकास भी कला के साथ-साथ ही हुआ हो। अनुमानतः कला और धर्म दोनों लगभग ८० हज़ार वर्षों से मौजूद हैं। किन्तु एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में विज्ञान का प्रारम्भ गैलीलियो के समय से हुआ, और इसलिए विज्ञान का अस्तित्व लगभग ३०० वर्ष पुराना है। इस अवधि के पूर्वार्ध में विज्ञान केवल कुछ विद्वान लोगों के ही अध्ययन का विषय रहा, और सामान्य लोगों के विचारों अथवा उनकी आस्था पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। केवल पिछले डेढ़ सौ वर्षों के दौरान ही विज्ञान ने सामान्य जनता के दैनिक जीवन का नियमन निर्धारण करने वाले एक महत्वपूर्ण तत्त्व का रूप धारण किया है। इस छोटी सी अवधि में विज्ञान ने जो महान् परिवर्तन किये हैं वे प्राचीन मिस्र युग से अब तक होने वाले परिवर्तनों से कहीं बड़े और महत्वपूर्ण हैं। विज्ञान-पूर्व संस्कृति के पाँच हज़ार वर्षों की अपेक्षा विज्ञान के ये डेढ़ सौ वर्ष अधिक क्रांतिकारी सिद्ध हुए हैं। यह कल्पना करना तो एक अर्थहीन बात होगी कि विज्ञान की क्रांतिकारी शक्ति समाप्त हो चुकी है या उसका चरमोत्कर्ष पूरा हो चुका है। सम्भावना इस बात की है कि सदियों तक विज्ञान अधिकाधिक तीव्र परिवर्तन उत्पन्न करता रहेगा। यह कल्पना की जा सकती है कि अन्ततोगत्वा एक नई साम्यावस्था पर मानव-जाति पहुँच जाएगी जो अवस्था या तो उस स्थिति में आएगी जब मनुष्य का ज्ञान इतना अधिक व्यापक हो जाएगा कि उसकी सीमान्त तक पहुँचने के लिए मनुष्य की वर्तमान जीवन-अवधि पर्याप्त

न होगी और इसलिए शोध और आविष्कार का कार्य तब तक आगे बढना असम्भव हो जाएगा जब तक मनुष्य की जीवन अवधि मे पर्याप्त वृद्धि न हो, अथवा यह अवस्था उस स्थिति म आएगी जब मनुष्य जाति इन नए खिलौने स ऊब जाएगी वैज्ञानिक प्रगति के लिए आवश्यक श्रम और आयास से थक जाएगा और अपने पूवजो के श्रम स उपलब्ध हुए फलो का उपभोग करने म ही सतोष मानने लगगी जस रोम के लोगा को अपने पूवजो द्वारा निर्मित जल प्रवाहिकाओ के उपभोग म आनन्द मिलता था। अथवा हो सकता है कि मानव-जाति यह सिद्ध कर द कि कोई भी वज्ञानिक समाज स्थायी रहने म सक्षम होता ही नही, और यह कि मानव जीवन की निरतरता कायम रखने के लिए बबरता की स्थिति म वापस लौट जाना अनिवाय है।

फिर भी इस प्रकार की कल्पनाएँ बकारी के क्षणो म भले ही कुछ मनोरजन कर सकें पर ये इतनी धूमिल, अस्पष्ट और अनिर्दिष्ट होती हैं कि इनका कोई व्यावहारिक महत्त्व नही हो सकता। आधुनिक काल म महत्त्वपूण बात तो यह है कि हमारे विचारो पर, हमारी आशाओ पर और हमारी आदतो पर विज्ञान का प्रभाव निरतर बढता जा रहा है और कम स कम आने वाली कई शताब्दियो तक तो उसके बढते जाने की ही सम्भावना है।

जसा कि नाम म ही निहित है, विज्ञान प्रथमत ज्ञान है। परम्परागत अथ म वह एक विशिष्ट कोटि का ज्ञान है, अर्थात ऐसा ज्ञान जो अनेक विशिष्ट तथ्यो को परस्पर सम्बधित सिद्ध करने वाले सामान्य नियमो की खोज करता है। फिर भी धीरे धीरे विज्ञान का ज्ञानमूलक स्वरूप अब पीछे पडता जा रहा है और प्रकृति का सचालन करने वाली शक्ति के रूप म विज्ञान आग आ रहा है। कला की अपेक्षा विज्ञान का सामाजिक महत्त्व इसीलिए अधिक है कि वह हम प्रकृति का सचालन या नियमन करने की शक्ति देता है। सत्य की खोज क रूप म विज्ञान कला के समकक्ष है, किन्तु उसस बरेण्य नहीं। एक तकनीक क रूप म विज्ञान का जो प्रायोगिक महत्व है वह कला को कभी नहीं प्राप्त हो सकता यद्यपि तकनीक के रूप म विज्ञान का भी कोई स्वत मूल्य नही है।

एक तकनीक क रूप म विज्ञान का एक और महत्व है जिसकी व्याप्तियाँ अभी तक भलीभाँति स्पष्ट नही हो पाइ, अर्थात् विज्ञान मानव-समाज क नय स्वरूपो की स्थिति न केवल सम्भव बनाता है बल्कि आवश्यक भी। आर्थिक सगठन क ढाँचा और राज्यो के कतव्यो का पहल ही विज्ञान बहुत अधिक गम्भीर रूप स प्रभावित कर चुका है पारिवारिक जीवन पर भी उसका व्यापक प्रभाव प्रारम्भ हो गया है और वह दिन बहुत दूर नही जब निश्चित रूप स यह पारिवारिक जीवन को बहुत अधिक बदल देगा।

इसलिए मानव जीवन पर विज्ञान के प्रभाव की विवेचना करत समय

हम तीन बातों की जाँच-परख करनी होगी जो न्यूनाधिक रूप में एक-दूसरे से पृथक् हैं। पहली बात है वैज्ञानिक ज्ञान का स्वरूप और उसकी व्याप्ति, दूसरी बात है वैज्ञानिक तकनीक से प्राप्त होने वाली वर्द्धमान सचालन-शक्ति, और तीसरी बात है वैज्ञानिक तकनीक द्वारा अपेक्षित नये प्रकार के संगठनों से सामाजिक जीवन में और परम्परागत संस्थाओं एवं प्रथाओं में अनिवार्यतः उत्पन्न होने वाले परिवर्तन। इसमें सन्देह नहीं कि विज्ञान का ज्ञानमूलक स्वरूप शेष दोनों बातों में भी अन्तर्निहित है, क्योंकि विज्ञान द्वारा उत्पन्न होने वाले समस्त प्रभाव परिवर्तन उस ज्ञान के ही परिणाम होते हैं जो विज्ञान से प्राप्त होता है। अभी तक मनुष्य अपनी आशाओं को इसलिए नहीं सिद्ध कर पाता रहा कि उसे साधनों का ज्ञान न था। जैसे-जैसे यह अज्ञान दूर होता जाता है, वैसे-वैसे वह अपने भौतिक पर्यावरण को, अपने सामाजिक परिवेश को और स्वयं अपने आपको उन रूपों में परिवर्तित करने में अधिकाधिक सक्षम होता जाता है जिन्हें वह सर्वोत्तम समझता है। जहाँ तक वह बुद्धिमानी से काम लेता है, वहाँ तक यह नई शक्ति उसके लिए मंगलकारी होती है, जहाँ तक वह एक मूर्ख की तरह आचरण करता है उस हद तक यह नई शक्ति उसके लिए घातक होती है। इसलिए वैज्ञानिक सभ्यता को यदि एक मंगलमयी सभ्यता बनना है तो यह आवश्यक है कि ज्ञान की वृद्धि के साथ-साथ विवेक-बुद्धि में भी वृद्धि हो। विवेक-बुद्धि से मेरा तात्पर्य है जीवन के उद्देश्यों की सत् अवधारणा। यह एक ऐसी चीज है जो विज्ञान स्वयं नहीं दे सकता। इसलिए विज्ञान की प्रगति अपने आपमें शुद्ध प्रगति की कोई गारण्टी नहीं, यद्यपि ऐसी प्रगति के लिए आवश्यक अनेक तत्त्वों में से एक तत्त्व अवश्य उससे उपलब्ध होता है।

आगे के पृष्ठों में हम विवेक-बुद्धि की अपेक्षा अधिकांश रूप में विज्ञान की ही चर्चा करेंगे। फिर भी यह स्मरण रखना अभीष्ट होगा कि यह विवेचना एकांगी ही होगी और यदि मानव जीवन का एक सन्तुलित दृष्टिकोण प्राप्त करना हो तो इस विवेचना का संशोधन आवश्यक होगा।

क्रम

पहला भाग

वैज्ञानिक परिज्ञान

दूसरा भाग

वैज्ञानिक तकनीक

तीसरा भाग

वैज्ञानिक समाज

पहला भाग

वैज्ञानिक परिज्ञान

पहला अध्याय

वैज्ञानिक पद्धति के उदाहरण

१ गलीलियो

वैज्ञानिक पद्धति अधिक परिशुद्ध रूपों में भले ही जटिल मालूम हो किन्तु तात्त्विक रूप में वह बहुत ही सरल होती है। यह पद्धति है ऐसे तथ्यों का प्रेक्षण करना, जो प्रेक्षक को एक विशेष प्रकार के तथ्यों का नियमन करनेवाले सामान्य नियमों की खोज करने में सहायता दे सकें। प्रेक्षण करने की स्थिति, और फिर एक नियम की अनुमिति निर्धारित करने की स्थिति ये दोनों ही स्थितियाँ अनिवार्य होती हैं और इनमें से प्रत्येक का शोधन अनन्त रूपों में किया जा सकता है। किन्तु तत्त्वतः पहले-पहल जिस व्यक्ति ने यह कहा था कि "आग जलाती है", वह वैज्ञानिक पद्धति का ही प्रयोग कर रहा था कम-से-कम उस स्थिति में तो निश्चय ही जबकि उसने अपने-आपको कई बार आग में जला कर अनुभव किया होगा। यह व्यक्ति प्रेक्षण और सामान्यीकरण की दोनों स्थितियों में गुजर चुका होगा। फिर भी उसके पास वह कुछ नहीं था जिसकी अपेक्षा वैज्ञानिक तकनीक में होती है, अर्थात् एक ओर तो सावधानी के साथ महत्त्वपूर्ण तथ्यों का चयन और दूसरी ओर केवल सामान्यीकरण के अलावा अन्य प्रकार से नियमों की उपलब्धि के विविध साधन। जो व्यक्ति यह कहता है कि 'निराधार वस्तुएँ पृथ्वी पर गिर जाती हैं' वह केवल सामान्यीकरण कर रहा है, और उसकी इस उक्ति का खंडन गुब्बारों, तितलियों और वायुयानों द्वारा किया जा सकता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति गिरते हुए पिण्डों का सिद्धान्त समझता है वह यह भी जानता है कि कुछ अपवाद-स्वरूप पिण्ड क्यों नहीं गिरते।

वैज्ञानिक पद्धति तत्त्वतः सरल भले ही है, किन्तु इसकी उपलब्धि बड़ी कठिनाई से हुई है और अब भी इसका उपयोग केवल कुछ थोड़े-से लोगों द्वारा किया जाता है जो उन तमाम प्रश्नों में से, जिनके बारे में वे अपनी जिज्ञासा रखते हैं, केवल कुछ थोड़े-से प्रश्नों के सम्बन्ध में ही इसका उपयोग करते हैं। यदि आपके परिचितों में कोई विद्वान् वैज्ञानिक हो जो अपने प्रयोगों में मात्रात्मक सूक्ष्मतम परिशुद्धता का अभ्यस्त हो, और उन प्रयोगों से अनुमिति

निर्धारित करने में अत्यन्त जटिल कौशल का प्रयोग करने का अभ्यस्त हो, तो उसे आप अपने एक छोटे से प्रयोग का विषय बना सकते हैं। और यह प्रयोग निश्चित रूप से आपके लिए ज्ञानवर्धक होगा। यदि आप राजनीतिक दलबन्दी की राजनीति के बारे में, धर्मशास्त्र के बारे में, आय-कर के बारे में, मकानों के दलालों के बारे में मजदूर-वर्ग की स्वार्थहिता के बारे में तथा इसी प्रकार के अन्य प्रकरणों के बारे में उसको छेडें, तो निश्चित है कि बहुत जल्दी वह उबल पडेगा और तब आप उन अपरीक्षित सम्मतियों और धारणाएँ ऐसी कट्टरता के साथ व्यक्त करते हुए देखेंगे जिसका लेशमात्र भी अपनी प्रयोगशाला के प्रयोगों से उपलब्ध सिद्ध परिणामों के सम्बन्ध में वह कभी भी व्यक्त न करेगा।

जैसा कि इस उदाहरण से स्पष्ट होता है, वैज्ञानिक अभिरुचि कुछ अंशों तक मनुष्य के लिए अस्वाभाविक होती है। हमारी अधिकांश सम्मतियाँ अपनी इच्छाओं की पूर्तियाँ मात्र होती हैं फ्रायडी सिद्धान्त में सपनों की भाँति। हममें से सर्वाधिक तर्कसंगत और विचारवान व्यक्ति का मस्तिष्क आवेगपूर्ण विश्वासों के तूफानी सागर जैसा होता है जिस पर वैज्ञानिक रीति से परीक्षित कुछ थोडे-से विश्वासों की छोटी छोटी अल्पसंख्यक नौकाएँ संकटपूर्ण स्थिति में तैरती रहती हैं। ये सारे आवेगपूर्ण विश्वास हमारी इच्छाओं पर आधारित रहते हैं। इस स्थिति को नितान्त शोचनीय भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि आखिरकार जीवन तो जीना ही है और उन सभी विश्वासों का तर्कसंगत ढंग से जाँचने परखने का समय ही कहाँ है जिनके अनुसार हमारे आचार व्यवहार का नियमन होता है? स्वस्थ आवेगों के अभाव में कोई जीवित रह ही नहीं सकता। इसलिए वैज्ञानिक पद्धति तो स्वभावतः हमारी कुछ अधिक गम्भीर और दायित्वपूर्ण सम्मतियों तक ही सीमित रहती है। एक चिकित्सक खुराक के सम्बन्ध में कोई राय देने से पहले इस विषय पर विज्ञान ने जो कुछ ज्ञान उपलब्ध किया है उसका पूरा पूरा विचार कर लेता है और ऐसा उसे करना ही चाहिए। लेकिन जो व्यक्ति उसकी सलाह को मानकर चलता है वह उस सलाह का सत्यापन कराने या उसकी जाँच करने की स्थिति में नहीं होता, इसके लिए उसके पास समय ही नहीं, और इसलिए उसे विज्ञान पर नहीं बल्कि अपने इस विश्वास पर भरोसा करना पडता है कि उसका चिकित्सक वैज्ञानिक है। विज्ञान से संसिक्त समाज ऐसा समाज होता है जिसमें जाने माने विशेषज्ञ वैज्ञानिक पद्धतियों के आधार पर अपनी सम्मतियाँ निर्धारित करते हैं किन्तु सामान्य नागरिक के लिए तो यह असम्भव ही है कि वह विशेषज्ञों के कार्य को स्वयं अनुभूति करने के लिए उन्हें दोहराए। आधुनिक संसार में सभी प्रकार के विषयों में सम्बन्धित सुरक्षित ज्ञान का बहुत बडा भंडार उपलब्ध है जिसको सामान्य व्यक्ति बिना किसी संकोच के आधिकारिक मानकर स्वीकार कर लेता

है। किन्तु जब ही कोई प्रबल भावावेश विशेषज्ञ के निर्णय निश्चय को दूषित कर देता है, वह अविश्वसनीय हो जाता है भले ही उसके पास वैज्ञानिक उपकरणों का भण्डार ही हो। गर्भावस्था, प्रसव, दुग्धस्रवण के सम्बन्ध में अभी कुछ दिन पहले तक डॉक्टरों की राय पर परपीड़न रति का पूरा-पूरा प्रभाव था। उदाहरण के लिए, उन्हें इस बात पर राजी करने के लिए कि प्रसव में निश्चेतकों का प्रयोग किया जा सकता है, जितने अधिक प्रमाण देने की जरूरत पड़ी उतने प्रमाणों की आवश्यकता इसके विपरीत तथ्य पर उन्हें राजी करने के लिए न पड़ती। थोड़ी देर के लिए मनोरंजन के इच्छुक पाठकों को यह सलाह दी जा सकती है कि करोटि विज्ञान के प्रख्यात विद्वानों ने मस्तिष्क की नाप जोख के आधार पर पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक मूढ़ सिद्ध करने के प्रयत्न में किस प्रकार अपने सिद्धान्तों में उलट फेर किए हैं, इसका अध्ययन करें।[1]

फिर भी वैज्ञानिक पद्धति का वर्णन करते समय हमारा ध्यान वैज्ञानिकों की चर्चा पर नहीं रहना चाहिए। वैज्ञानिक सम्मति एक ऐसी सम्मति होती है जिसे सत्य मानने का कोई कारण होता है, अवैज्ञानिक सम्मति एक ऐसी सम्मति होती है जिसकी मान्यता का कारण उसकी सम्भाव्य सत्यता के बजाय कुछ और ही होता है। १७वीं शताब्दी से पहले के युगों से हमारा वर्तमान युग इसी दृष्टि से भिन्न और विशिष्ट है कि हमारी कुछ सम्मतियाँ इसी अर्थ में वैज्ञानिक सम्मतियाँ हैं। मैं शुद्ध तथ्यपरक बातों को छोड़ देता हूँ, क्योंकि सामान्यतः तो न्यूनाधिक रूप में विज्ञान का एक तात्त्विक लक्षण ही है और (कुछ रहस्यवादियों को छोड़कर) लोगों में अपने दैनिक जीवन के स्वतःस्पष्ट तथ्यों को पूर्णतः अस्वीकार करने की शक्ति कभी भी नहीं आई।

मानव कार्य-कलापों के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में यूनानियों ने विशिष्टता प्राप्त की थी किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि उन्होंने विज्ञान के क्षेत्र में लगभग कुछ भी नहीं किया। यूनानियों की एक बहुत बड़ी बौद्धिक उपलब्धि थी ज्यामिति, जिसे वे लोग स्वतःसिद्ध मान्यताओं पर आधारित निगमनात्मक अध्ययन मानते थे और जिसके लिए प्रायोगिक सत्यापन या जाँच-परख की आवश्यकता उन्हें नहीं महसूस होती थी। यूनानी प्रतिभा आगमनात्मक होने के बजाय निगमनात्मक ही अधिक थी, और इसलिए गणित यूनानियों का प्रिय विषय था। बाद के युगों में यूनानी गणित को प्रायः भुला ही दिया गया, जबकि निगमन के प्रति यूनानियों की तीव्र अभिरुचि से उत्पन्न अन्य शास्त्र—विशेषकर धर्मशास्त्र और विधि शास्त्र में भी कायम रहे और विकसित होते रहे। यूनानियों

१ देखिए हैवलॉक एलिस की पुस्तक 'मैन एण्ड वोमन', छठा संस्करण पृष्ठ ११६ से आगे।

ने इस जगत को वैज्ञानिकों की अपेक्षा कवियों की भाँति अधिक देखा भाला। मेरे विचार से इसका आंशिक कारण यह था कि यूनान में सभी प्रकार का शारीरिक श्रम सम्भ्रान्त लोगों के लिए अनुपयुक्त माना जाता था और इसलिए जिस किसी भी अध्ययन में प्रयोग करना आवश्यक हुआ, वही अध्ययन कुछ अभद्र माना गया। शायद यूनानियों के इस पूर्वाग्रह का इस तथ्य से सम्बद्ध करना कुछ अधिक कल्पनापरक मालूम होगा कि ज्ञान के जिस क्षेत्र में यूनानियों ने सबसे अधिक वैज्ञानिक ज्ञान की क्षमता दिखाई वह ज्योतिष शास्त्र था, जिसका सम्बन्ध ऐसे पिण्डों से है जो केवल देखे जा सकते हैं पर जिनका स्पर्श नहीं किया जा सकता।

जो भी हो ज्योतिष में यूनानियों ने जितनी खोज की वह निस्सन्देह बहुत ही प्रशंसनीय है। बहुत पहले उन्होंने यह निश्चित कर लिया था कि पृथ्वी गोल है और उनमें से कुछ लोग कापरनिकस के इस सिद्धान्त को जानते थे कि सूर्य और तारों की प्रकट दैनिक गति का कारण आकाशीय पिण्डों का परिक्रमण नहीं है, बल्कि पृथ्वी का परिक्रमण ही इसका कारण है। सिराक्यूज के राजा जिलोन को पत्र लिखते हुए आर्कमिडीज ने लिखा था—'समोस के अरिस्टार्कस ने एक पुस्तक प्रकाशित की है जिसमें कुछ ऐसी प्राक्कल्पनाएँ दी गई हैं जिनके आधार वाक्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह विश्व उससे कई गुना बड़ा है जिसे आज हम विश्व कहते हैं। उनकी प्राक्कल्पनाएँ ये हैं कि तारे और सूर्य स्थिर हैं और अविचल रहते हैं, कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर एक वृत्त की परिधि बनाती हुई उसकी परिक्रमा करती है और सूर्य उस वृत्त के केन्द्र में रहता है।" इस प्रकार यूनानियों ने न केवल पृथ्वी के दैनिक परिक्रमण की खोज कर ली थी, बल्कि वे सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की वार्षिक परिक्रमा की भी खोज कर चुके थे। कापरनिकस का इस सिद्धान्त की पुनःस्थापना का साहस यह जानकर ही हुआ था कि यूनानी लोग इस सिद्धान्त को मानते थे। पुनर्जागरण-काल में, जबकि कापरनिकस जीवित थे, यह माना जाता था कि प्राचीन लोग जिस किसी बात को मानते रहे हों वह सत्य हो सकती है लेकिन जिस बात को कभी प्राचीन लोगों में से किसी ने न माना हो उस बात की कोई वक़त नहीं हो सकती। मुझे सन्देह है कि अरिस्टार्कस का सहारा यदि न मिला होता तो कापरनिकस कभी अपना यह सिद्धान्त प्रतिष्ठित कर पाते। प्राचीन शास्त्रीय अध्ययन का फिर से प्रचलन होने से पहले तक लोग अरिस्टार्कस द्वारा प्रतिष्ठित सिद्धान्त को भूले हुए थे।

पृथ्वी की परिधि को नापने के पूर्णतः मान्य तरीके भी यूनानियों ने खोज निकाले थे। भूगोलवेत्ता एरेटास्थनीज ने पृथ्वी की परिधि २५०,०००

स्टेडिया (लगभग २४६६२ मील) आँकी थी जिसे सच्चाई से बहुत अधिक दूर नहीं कहा जा सकता।

यूनानियों में से सर्वाधिक वैज्ञानिक थे आर्किमिडीज (२८७–२१२ ई० पूर्व)। लियोनार्डो दा विंसी की भाँति आर्किमिडीज भी अपने युद्ध-औजारों के कारण एक राजा की नजरों में चढ़ गए थे, और लियोनार्डो की भाँति उन्हें इस बात की अनुमति मिल गई थी कि वे मानव ज्ञान की अभिवृद्धि करें। शर्त केवल यह थी कि ज्ञान की उपलब्धि मानव जीवन से ही की जाए। फिर भी, इस क्षेत्र में उनके कार्य-कलाप लियोनार्डो के कार्य-कलापों की अपेक्षा अधिक विशिष्ट कोटि के थे, क्योंकि उन्होंने रोम की सेनाओं के विरुद्ध सिराक्यूज नगर की रक्षा के लिए अत्यन्त आश्चर्यजनक यांत्रिक युक्तियों का आविष्कार किया था और अन्ततोगत्वा एक रोमन सिपाही द्वारा उनकी हत्या नगर का पतन होने के बाद कर दी गई थी। कहा जाता है कि वह किसी गणितीय समस्या में इतना अधिक तल्लीन थे कि उन्हें रोमन सिपाहियों के आने का पता भी नहीं चला। आर्किमिडीज के यांत्रिक आविष्कारों के सम्बन्ध में प्लूटार्क ने बहुत ही दम्भपूर्ण विचार व्यक्त किए हैं, उनकी राय में ये आविष्कार एक सम्भ्रान्त व्यक्ति के लिए उपयुक्त नहीं कहे जा सकते। फिर भी प्लूटार्क आर्किमिडीज को इस आधार पर क्षम्य मानते हैं कि वह अपने राजा की सहायता अत्यन्त संकट की घड़ी में इन आविष्कारों द्वारा कर रहे थे।

आर्किमिडीज ने गणित में अपनी बहुत बड़ी प्रतिभा दिखाई और यांत्रिक आविष्कारों में असाधारण कौशल प्रदर्शित किया, किन्तु विज्ञान के क्षेत्र में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण होते हुए भी यूनानियों की उसी निगमनात्मक अभिवृत्ति को प्रदर्शित करता है जिसके कारण प्रायोगिक पद्धति को अपनाना उनके लिए प्रायः असम्भव ही हो गया था। स्थितिकी के क्षेत्र में आर्किमिडीज का कार्य प्रख्यात है। उसे प्रख्यात होना ही चाहिए। उसका उद्गम यूक्लिड की ज्यामिति जैसे स्वयंतथ्यों से हुआ है और स्वयंतथ्य स्वयंसिद्ध माने जाते हैं। वे प्रयोगों द्वारा सिद्ध परिणाम नहीं होते। 'आन फ्लोटिंग बाडीज' शीर्षक उनकी पुस्तक परम्परा के अनुसार सम्राट् हियरो के राजमुकुट की समस्या का समाधान खोजने के परिणामस्वरूप प्रस्तुत हुई थी। राजमुकुट के सम्बन्ध में यह सन्देह था कि वह शुद्ध सोने का बना हुआ नहीं है। जैसा सभी लोग जानते हैं, आर्किमिडीज ने इस समस्या का समाधान अपने गुसलखाने में खोज निकाला था। जो भी हो, अपनी इस पुस्तक में उन्होंने इस प्रकार के मामलों के सम्बन्ध में जो पद्धति सुझाई है वह पूर्णतः मान्य है, और यद्यपि पुस्तक की रचना निगमनात्मक पद्धति में अभ्युपगमों के आधार पर की गई है, फिर भी इस धारणा को स्वीकार करना ही पड़ता है कि आर्किमिडीज प्रयोगों के माध्यम से

हो इन अभ्युपगमो को निर्धारित कर सके होंगे। आर्कमिडीज की सारी रच नाओ म से शायद यही पुस्तक (आधुनिक अर्थ म) वैज्ञानिक कहे जाने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। किन्तु आर्कमिडीज के बाद बहुत जल्दी यूनानी लोगो म जो भी वैज्ञानिक शोध की भावनाएँ प्राकृतिक तत्त्वो के सम्बन्ध म थी उनका ह्रास हो गया और यद्यपि मुसलमानो द्वारा अलेक्जेंडिया पर अधिकार किए जाने के समय तक शुद्ध गणित का विकास होता रहा फिर भी प्राकृतिक विज्ञान म कोई प्रगति नही की जा सकी और जो कुछ इस क्षेत्र म सर्वोत्तम ढग से किया भी जा सका वह भुला दिया गया, जसे अरिस्टाकस का सिद्धान्त।

यूनानियो की अपेक्षा अरब लोग अधिक प्रयोग प्रिय थे विशेषकर रसायन शास्त्र के क्षेत्र मे। उन्ह इस बात की आशा थी कि वे हीन कोटि की धातुओ को सोने म रूपान्तरित कर देंगे पारस पत्थर खोज लेंगे और आबहयात तैयार कर लग। अशत इस कारण भी रासायनिक शोध का काम बडे उत्साह से किया जाता था। समूचे अधकार युग के दौरान सभ्यता की परम्परा मुख्यत अरब लोगो द्वारा कायम रखी गई और अधिकाश रूप म राजरबेकन जसे ईसाइयो न मध्य युग से उपलब्ध होने वाला विज्ञान विषयक ज्ञान उन्ही से प्राप्त किया। किन्तु अरब लोगो म एक कमी थी जो यूनानियो की कमी से बिल्कुल उलटी थी। वे लोग सामान्य सिद्धान्तो के बजाय असम्बद्ध तथ्यो की खोज करते थे और जिन तथ्यो की खोज कर लेते थे उनसे सामान्य नियमो की अनुमिति कर सकने की शक्ति उनमे न थी।

यूरोप म जब पहले-पहल पुनर्जागरण की लहर के सामने पुरानी पण्डिताऊ पद्धति के पर खिसकने लगे तब कुछ समय के लिए सभी प्रकार के सामान्यीकरण और सभी [illegible] के प्रति एक प्रकार की अरुचि उत्पन्न हो गई। मानत्न म इस प्र[illegible] [illegible]हरण देते जा सकते हैं। उन्ह कुछ [illegible] अदभुत तथ्य पस[illegible] [illegible] यदि वे किसी बात का खडन

कार्यों (१५६४-१६४२) में ही पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित होती है। उनके समकालीन केप्लर (१५७१-१६३०) में भी कुछ कम मात्रा में यह पद्धति दिखाई देती है। केप्लर की ख्याति उनके तीन नियमों के कारण है। उन्होंने ही पहले-पहल इस बात की खोज की थी कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर दीर्घ वृत्तों में घूमती है, वृत्तों में नहीं। आज के लोगों के लिए तो इस तथ्य में कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है कि पृथ्वी की कक्षा एक दीर्घ वृत्त है किन्तु जो लोग प्राचीन मान्यताओं में पालित थे उनके लिए यह बात प्रायः अविश्वसनीय ही थी कि कोई भी आकाशीय पिण्ड एक वृत्त या वृत्तों के किसी जटिल रूप के अलावा और किसी कक्षा पर चल सकता है। यूनानियों की दृष्टि में ग्रह देवी थे और इसलिए उन्हें अनिवार्यतः पूर्ण वृत्तों में ही घूमना चाहिए। वृत्त और अधिचक्रों में उनकी सौन्दर्यानुभूति को कोई ठेस नहीं लगती थी किन्तु एक टेढ़ी, विषम कक्षा में—जैसी कि पृथ्वी की कक्षा वास्तव में है—उनको बड़ा गहरा धक्का लगता। इसलिए सौन्दर्यानुभूतिपूर्ण पूर्वाग्रहों से मुक्त होने के लिए उन दिनों एक असाधारण रूप में गहन वैज्ञानिक भावना की आवश्यकता थी। केप्लर और गैलीलियो ने ही इस तथ्य को प्रतिष्ठित किया कि पृथ्वी तथा अन्य ग्रह सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। कॉपरनिकस ने इस तथ्य की घोषणा की थी और, जैसा कि हम देख चुके हैं कुछ यूनानियों ने भी इसे स्वीकार किया था, किन्तु ये लोग इस तथ्य के प्रमाण देने में समर्थ नहीं हुए थे। कॉपरनिकस के पास तो सचमुच अपने विचार की पुष्टि के लिए कोई गम्भीर तथ्य नहीं थे। यह कहना कि कॉपरनिकस की परिकल्पना को स्वीकार करने में केप्लर शुद्ध वैज्ञानिक प्रेरणाओं और प्रयासों से ही प्रेरित था उसके साथ न्याय न करके शायद कुछ पक्षपात करना होगा। ऐसा लगता है कि अपनी युवावस्था में निश्चित रूप से वह सूर्य की उपासना करता था, और इसलिए इतने महान देवता के उपयुक्त स्थान उसे इस विश्व का केन्द्र ही समझ पड़ता था। किन्तु इस तथ्य की खोज के लिए तो उसे केवल वैज्ञानिक प्रयोजन और प्रेरणाएँ ही प्रेरित कर सकी होंगी कि ग्रहों की कक्षाएँ वृत्त नहीं दीर्घ वृत्त हैं।

अपने पूर्ण रूप में वैज्ञानिक पद्धति केप्लर में तथा उससे भी अधिक गैलीलियो में देखने को मिलती है। यद्यपि उनके समय में उपलब्ध ज्ञान की अपेक्षा आज बहुत अधिक ज्ञान प्राप्त हो चुका है, फिर भी पद्धति में कोई तात्त्विक अभिवृद्धि नहीं हुई। विशिष्ट तथ्यों के प्रेक्षण से ये लोग परिशुद्ध परिमाणात्मक नियमों की स्थापना करते थे, जिनके द्वारा भावी विशिष्ट तथ्यों का पूर्वकथन किया जा सकता था। इनकी स्थापनाओं से इनके समकालीन लोगों को अवश्य ठेस लगी, अंशतः इस कारण भी कि उनके निष्कर्ष उस युग के विश्वासों के लिए स्वभावतः बहुत ही ठेस पहुँचाने वाले थे। किन्तु इस

आघात का एक आंशिक कारण यह भी था कि आप्तत्व में श्रद्धा के कारण उस युग के विद्वान लोग अपने शोधकार्यों को पुस्तकालयों तक ही सीमित रखने में समय होते थे और उन लोगों को इस सुझाव से बहुत ही क्लेश हुआ कि जगत को यथावत जानने समझने के लिए उसका प्रेक्षण करना भी आवश्यक हो सकता है।

यह स्वीकार करना ही होगा कि गैलीलियो एक प्रकार से लावारिस जैसे ही थे। फिर भी बहुत छोटी अवस्था में ही वह पिसा में गणित के आचार्य हो गए थे। किन्तु चूंकि उनका वेतन केवल साढ़े सात शिलिंग प्रतिदिन था, इसलिए ऐसा लगता है कि वह यह नहीं समझते थे कि किसी बहुत सम्भ्रान्त आचरण की आशा उनसे की जा सकती थी। उन्होंने विश्वविद्यालय में टोपी और गाउन पहनने की प्रथा के विरुद्ध एक पुस्तक लिखना प्रारम्भ किया। यह पुस्तक स्नातक विद्यार्थियों के बीच शायद लोकप्रिय हुई हो, किन्तु उनके सहकर्मी आचार्यों ने उसे गम्भीर आपत्ति की दृष्टि से ही देखा। ऐसी स्थितियों की सृष्टि करने में गैलीलियो को आनन्द आता था जिनमें उनके सहकर्मी मूर्ख मालूम हों। उदाहरण के लिए अरस्तू की भौतिकी के आधार पर वे लोग इस बात पर जोर देते थे कि दस पाउण्ड वजन वाला पिण्ड एक ही ऊँचाई से धरती पर गिरने में एक पौण्ड वजन वाले पिण्ड की अपेक्षा दशमांश समय ही लेगा। इसलिए वह पिसा के स्तूप पर दो पिण्ड लेकर चढ़े जिनमें एक का वजन दस पौण्ड और दूसरे का वजन एक पौण्ड था और जिस समय आचार्य लोग बड़े सम्भ्रान्त ढंग में अपने विद्यार्थियों की उपस्थिति में अपने-अपने व्याख्यान-कक्षों की ओर जा रहे थे ठीक उसी समय गैलीलियो ने उनका ध्यान आकर्षित किया और मीनार के सिरे पर से दोनों पिण्ड नीचे उनके कदमों के पास गिरा दिये। दोनों पिण्ड ठीक एक साथ धरती पर गिरे। फिर भी आचार्यों ने यही माना कि उनकी आंखों ने उन्हें धोखा दिया होगा क्योंकि यह असम्भव था कि अरस्तू की बात गलत हो।

एक अन्य अवसर पर वह और भी अधिक दुस्साहसी बन गए। लेघोर्न के गवर्नर ने एक निष्कर्षण मशीन का आविष्कार किया था और इसका उसे बहुत गर्व था। गैलीलियो ने कहा कि वह मशीन और चाहे जो कुछ कर सके, निष्कर्षण नहीं कर सकेगी और उनकी बात सही सिद्ध हुई। इस घटना के बाद गवर्नर प्रबल अरस्तूवादी बन गया।

गैलीलियो की लोकप्रियता समाप्त हो गई। उनके भाषणों में लोग उसकी हंसी उड़ाने की कोशिश करते जैसा बर्लिन में आइन्स्टीन के साथ भी कभी-कभी किया गया है। तब गैलीलियो ने एक दूरबीन बनाई और उस दूरबीन से आकाश में बृहस्पति के चाँद देखने के लिए आचार्यों को आमंत्रित

किया। आचार्यों ने इस आधार पर यह आमन्त्रण अस्वीकार कर दिया कि अरस्तू ने कहीं भी इन उपग्रहों की चर्चा नहीं की और इसलिए जो कोई भी यह सोचता है कि उसने इन उपग्रहों को देखा है वह निश्चित रूप से भूल कर रहा है।

पिसा की झुकी हुई मीनार से किए गए प्रयोग द्वारा गलीलियो का पहला महत्वपूर्ण कार्य प्रकाश में आया। यह कार्य था गिरते हुए पिण्डों के नियम की स्थापना, जिसके अनुसार सभी पिण्ड निर्वात में एक ही रफ्तार से गिरते हैं और एक निश्चित समय के बाद उनका वेग उस समय का समानुपाती हो जाता है जिसमें उनके पतन की गति जारी रही, और उनके द्वारा तय की गई दूरी उस समय से वेग के समानुपात में होती है। अरस्तू ने कुछ इससे भिन्न स्थापना की थी, किन्तु न तो अरस्तू ने और न उनके उत्तराधिकारियों ने ही लगभग दो हज़ार वर्ष तक यह जानने का प्रयत्न किया कि जो कुछ अरस्तू ने कहा था वह सही था या नहीं। अब ऐसी खोज करने का विचार ही एकदम नया मालूम पड़ता था और आप्तत्व के प्रति गलीलियो की अश्रद्धा बहुत ही निन्दनीय और घृणित समझी गई। बेशक उनके अनेक मित्र भी थे, जो ऐसे लोग थे जिन्हें किसी व्यक्ति में बुद्धिमानी देखकर हर्ष होता था। किन्तु पाण्डित्य-पूर्ण पदों पर शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति रहा हो, और विश्वविद्यालय की सम्मति गैलीलियो की खोजों के प्रबल विरोध में थी।

जैसा कि सभी को मालूम है अपने जीवन के अन्तिम काल में गलीलियो का संघर्ष धार्मिक न्यायालय से उनकी इस मान्यता के कारण हुआ कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। पहले भी एक छोटा मोटा संघर्ष हो चुका था जिसमें गलीलियो को अधिक हानि नहीं उठानी पड़ी थी, किन्तु सन १६३२ में उन्होंने कापरनिकस और टोल्मी की पद्धतियों के सम्बन्ध में एक संवादात्मक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें पोप द्वारा कही गई कुछ बातों को उन्होंने सिम्प्लीसियस नामक पात्र के मुख से कहलाने की धृष्टता की। अभी तक तो पोप गलीलियो के प्रति मैत्री भाव रखता था, किन्तु इस बात से वह अत्यन्त क्रुद्ध हो गया। उस समय गलीलियो फ्लोरेंस के ड्यूक के साथ मित्र रूप से रह रहे थे। धार्मिक न्यायालय ने उन्हें रोम आने का आदेश दिया जिससे उन पर मुकदमा चलाया जा सके और ड्यूक को धमकी दी गई कि यदि उसने गलीलियो को अपनी शरण में रखा तो उसे भी दण्ड दिया जाएगा। इस समय गलीलियो की अवस्था ७० वर्ष की थी। वह बहुत बीमार थे और उनकी आंखों की रोशनी जा रही थी। उन्होंने एक डॉक्टरी प्रमाण-पत्र इस आशय का भेजा कि वह यात्रा करने योग्य नहीं हैं। इस पर धार्मिक न्यायालय ने अपना एक डाक्टर यह आदेश देकर भेजा कि जैसे ही गलीलियो की हालत ठीक हो, उन्हें

जजीरो मे बाधकर लाया जाए। यह खबर पाकर कि ऐसा आदेश जारी किया गया है, गलीलियो स्वय ही चल पडे। धमक्रिया द्वारा उन्ह अपना अपराध स्वीकार करने के लिए विवश किया गया।

धार्मिक यायालय का फसला एक मजेदार प्रलेख है

स्वर्गीय विनसेजियो गलिली के पुत्र गैलीलियो, फ्लोरेंस निवासी, अवस्था ७० वष चूकि इस धमपीठ द्वारा सन १६१५ म इसलिए तुम्हारी निदा की गई थी कि अनेक लोगो द्वारा प्रचारित इस झूठे सिद्धात को तुमने सही माना कि सूय विश्व के केद्र म अचल है और पृथ्वी उसकी परिक्रमा करती है और पृथ्वी की एक दनिक गति भी है, इसलिए भी कि तुमने इही सिद्धान्ता की शिक्षा देकर अपने कुछ शिष्य तयार किए, इसलिए भी कि इसी विषय पर तुमने जमनी के कुछ गणितनो के साथ अपना पत्र यवहार जारी रखा इसलिए भी कि सूय के धब्बो के सम्बध म तुमने कुछ पत्र प्रकाशित किए जिनम तुमने इसी सिद्धात को एक सत्य सिद्धान्त के रूप म प्रतिष्ठित किया इसलिए भी कि पवित्र धम-ग्रथो से बराबर उदधृत की जाने वाली आपत्तियो का उत्तर देते हुए तुमने उन धम ग्रथो की व्याख्या अपने अर्थो के अनुसार की और धम ग्रथो की अवमानना की और चूकि तुम्हारे द्वारा एसा किए जाने पर पत्र रूप म लिखी हुई एक रचना की प्रति तुम्हारे सामने उपस्थित की गई जिसे तुमने एक ऐसे व्यक्ति को लिखा गया अपना पत्र होना स्वीकार किया जो पहले तुम्हारा शिष्य था जिसम कापरनिकस की प्राक्कल्पना के अनुसार तुमने ऐसे अनेक वक्तव्य दिए हैं जो धार्मिक पुस्तको के शुद्ध अथ और आप्तत्व के विरुद्ध हैं इसलिए (इससे उत्पन्न होने वाली और बधमान, अव्यवस्था और शतानी को जो पवित्र धार्मिक मत को हानि पहुँचा रही है रोकने की इच्छा से प्रेरित यह पवित्र यायालय) पवित्रात्मा पोप और महामहिम लाड कार्डिनल के इस सर्वोच्च विश्व धम यायालय की इच्छानुसार सूय की स्थिरता और पृथ्वी की गति-शीलता-सम्बधी दोनो प्रस्तावनाओ की समीक्षा धार्मिक समीक्षको द्वारा निम्नलिखित रूप मे की गई

१ यह प्रस्तावना कि सूय इस जगत का केद्र है और अपने स्थान म अचल है, मूखतापूण है दाशनिक दृष्टि स झूठी है और नियमत अधार्मिक है क्योकि यह स्पष्टत धम-ग्रथो के विपरीत है।

२ यह प्रस्तावना कि पृथ्वी इस जगत का केद्र नही है और

न अचल है, बल्कि वह गतिशील है और उसकी एक दैनिक गति भी है, मूर्खतापूर्ण है, दार्शनिक दृष्टि से झूठी है और धर्म शास्त्र की दृष्टि से विचार करने पर इसमें कम-से-कम निष्ठा की त्रुटि है।

किन्तु चूंकि उस समय तुम्हारे साथ दयापूर्ण व्यवहार करने के विचार से फरवरी सन १६१६ के २५वें दिन आयोजित धार्मिक महासभा में पवित्रात्मा पोप की उपस्थिति में यह आदेश दिया गया था कि महामहिम लार्ड कार्डिनल बेलार्मिन तुम्हें इस उक्त झूठे सिद्धान्त को बिल्कुल त्याग देने का परामर्श दें, और यदि तुम उसे न मानो तो पुण्यात्मा पोप के धर्म पीठाधिकारी द्वारा तुम्हें आदेश दिया जाए कि तुम उक्त झूठे सिद्धांत को त्याग दो, दूसरों को उसकी शिक्षा न दो, न उसका मण्डन करो और इस आदेश के न मानने पर तुम्हें कारावास का दण्ड दिया जाए और चूंकि दूसरे दिन महामहिम लार्ड कार्डिनल बेलार्मिन की उपस्थिति में राजमहल में उक्त आज्ञा का कार्यान्वयन करते हुए उक्त लार्ड कार्डिनल द्वारा तुम्हारी सामान्य भर्त्सना किए जाने के बाद, एक लेख्य प्रमाणक और साक्षियों के सामने धर्मपीठाधिकारी द्वारा तुम्हें आदेश दिया गया था कि तुम उक्त झूठे सिद्धान्त को त्याग दो और भविष्य में किसी प्रकार भी न तो उसका मण्डन करो और न उसकी शिक्षा दो, न मौखिक रूप से और न लिखित रूप में, और इस आदेश का पालन करने का वचन दिए जाने पर तुम्हें छोड़ दिया गया था।

और, इस उद्देश्य से कि इतना घातक दुष्ट सिद्धांत बिल्कुल जड़ मूल से समाप्त कर दिया जाए और प्रत्यक्ष रूप से भी इसका प्रचार या विकास कैथोलिक सत्य को हानि न पहुँचाने पाए पवित्र धर्म-संघ से एक आदेश प्रचारित किया गया जिसके द्वारा वे सभी पुस्तकें अवैध और निषिद्ध घोषित की गई जिनमें इस सिद्धान्त की विवेचना की गई है इस सिद्धान्त को झूठा तथा पवित्र दैवी धर्म ग्रन्थों के नितान्त प्रतिकूल घोषित किया गया।

और चूंकि उस समय के बाद फ्लारेंस में प्रकाशित की गई एक पुस्तक गत वर्ष निकली है, जिसके नाम और मुखपृष्ठ से यह प्रकट होता है कि तुम उसके लेखक हो, जिसका नाम है, 'दि डायलाग ऑफ गैलीलियो गैलिली, ऑन दि टू प्रिंसिपल सिस्टम्स ऑफ दि वर्ल्ड—दि टालेमिक एण्ड कॉपरनिकन', और चूंकि पवित्र धर्म-संघ को मालूम हुआ कि इस पुस्तक के प्रकाशन के फलस्वरूप पृथ्वी की गतिशीलता और सूर्य की स्थिरता-सम्बन्धी झूठे सिद्धान्त दिना-

न्ति प्रचलित होने जा रहे है, इस पुस्तक पर सावधानीपूर्वक विचार किया गया है और उसम ऊपर कहे गए उस आदेश का स्पष्ट उल्लघन दिखाई देता है जो तुम्हे दिया गया था, क्योकि इस पुस्तक म तुमने उक्त सिद्धान्त का समथन किया है जिसे पहले ही, और तुम्हारी उपस्थिति म निन्दनीय और त्याज्य घोषित किया जा चुका है, यद्यपि इसी पुस्तक म अनेक प्रकार से घुमा फिराकर तुमने यह विश्वास पैदा करने का प्रयत्न किया है कि यह सिद्धान्त अभी अनिर्णीत है और केवल सम्भाव्य है, जबकि ऐसा कहना भी समान रूप से एक गम्भीर त्रुटि है क्योकि जिस किसी सम्मति के बारे म पहले ही और अंतिम रूप म यह घोषित किया जा चुका है कि वह धार्मिक ग्रन्थो के विपरीत है, वह किसी प्रकार भी सम्भाव्य नही हो सकती, इसलिए, हमारे आदेश से तुम्हे इस धर्मपीठ के सामने उपस्थित किया गया है, जहा तुमने शपथपूर्वक पूछे जाने पर यह स्वीकार किया है कि उक्त पुस्तक तुम्हारे द्वारा लिखी और छापी गई है। तुमने यह भी स्वीकार किया है कि तुमने इस पुस्तक का लिखना उक्त आदेश लिए जाने के बाद दस या बारह वर्ष पहले प्रारम्भ किया था यह भी, कि तुमने इस पुस्तक के प्रकाशित करने का लाइसेंस मांगा और लाइसेंस देने वालो का इस बात की सूचना नही दी कि तुम्हे उक्त सिद्धान्त को न मानने, उसका समथन न करने और उसकी शिक्षा न देने का आदेश दिया जा चुका है। तुमने यह भी स्वीकार किया है कि इस सिद्धान्त को झूठा साबित करने वाले तर्कों के बारे म पाठक यह सोच सकता है कि उसकी शब्दावली सिद्धान्त के प्रति विश्वास उत्पन्न करने म अधिक प्रभावपूर्ण सिद्ध होने वाली है और उसका खडन उतनी आसानी से नही किया जा सकता। इसके बचाव म तुमने यह कहा है कि ऐसा करने म तुमसे भूल हो गई है जो (तुम्हारे कथनानुसार) तुम्हारा अभिप्राय नही था और यह भूल सवाद रूप म पुस्तक लिखने के कारण तथा अपने गूढार्थों के सम्बन्ध में प्रत्येक व्यक्ति की स्वाभाविक असावधानता और असत्य प्रस्तावनाओ के पक्ष मे भी पटुतापूर्ण तथा प्रकट रूप मे विश्वसनीय तर्क प्रस्तुत करने म सामान्य जनो की अपेक्षा अपने-आपको अधिक कुशल सिद्ध करने के परिणामस्वरूप हो गई है।

और अपने बचाव के लिए तैयारी करने का सुविधाजनक समय दिए जाने पर, तुमने लार्ड कार्डिनल बलार्मिन के हाथ का

लिखा हुआ एक प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया जिसे, अपने कथनानुसार, तुमने स्वयं प्राप्त किया था ताकि तुम अपने शत्रुओं द्वारा प्रचारित उन झूठे आरोपों के विरुद्ध अपनी रक्षा कर सको जिनमें यह कहा गया था कि तुमने शपथपूर्वक अपनी सम्मतियों को त्याग दिया है और तुम्हें धर्मपीठ द्वारा दण्ड भी दिया गया है, इस प्रमाणपत्र में यह घोषणा की गई है कि न तो तुमने अपनी सम्मतियों को शपथपूर्वक त्याग दिया है और न तुम्हें दण्ड दिया गया है, बल्कि पवित्रात्मा पोप द्वारा की गई और पवित्र धर्म संघ की निषेधाज्ञाओं द्वारा प्रचारित घोषणा तुम्हें सुनाई गई जिसमें यह कहा गया है कि पृथ्वी की गतिशीलता और सूर्य की स्थिरता-सम्बन्धी सिद्धान्त पवित्र धर्म ग्रन्थों के प्रतिकूल है, और इसलिए न तो उसे स्वीकार किया जा सकता है और न उसका समर्थन किया जा सकता है इसलिए, चूंकि इस प्रमाणपत्र में आदेश के दो अन्तर्नियमों का—अर्थात 'शिक्षा न देने' और 'किसी प्रकार भी' का—उल्लेख नहीं किया गया इसलिए तुमने यह तर्क पेश किया कि हमें यह विश्वास करना चाहिए कि पिछले चौदह या सोलह वर्षों की लम्बी अवधि में यह अन्तर्नियम तुम्हें याद नहीं रह गए और यही कारण है कि जब तुमने अपनी पुस्तक प्रकाशित करने की अनुमति मांगी तब इन आदेशों के सम्बन्ध में तुम मौन ही रहे, और यह भी कि यह तर्क तुमने अपनी भूल की माफी के लिए नहीं पेश किया, बल्कि इसलिए कि इस भूल का कारण झूठे आत्मगौरव की महत्त्वाकांक्षा को माना जाए न कि किसी प्रकार की दुर्भावना को। किन्तु तुम्हारे द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रमाणपत्र ने ही तुम्हारे अपराध को बहुत अधिक गम्भीर बना दिया है, क्योंकि इसमें यह घोषणा की गई है कि उक्त सम्मति पवित्र धर्मग्रन्थों के प्रतिकूल है और फिर भी तुमने उस सम्मति का विवेचन करने और तर्क करने का दुस्साहस किया है कि यह सम्भाव्य सम्मति है। धोखा देकर और चालाकी से तुमने जो लाइसेंस प्राप्त कर लिया है उसमें भी तुम्हारे अपराध को हल्का करनेवाली कोई बात नहीं है क्योंकि अधिकारियों को तुमने उस आदेश की सूचना नहीं दी जो तुम्हारे ऊपर लागू किया जा चुका था। किन्तु चूंकि हमें ऐसा लगा कि तुमने अपने मन्तव्य के सम्बन्ध में सम्पूर्ण सत्य का उद्घाटन नहीं किया इसलिए हमने यह आवश्यक समझा कि तुम्हारी भली भांति परीक्षा ली जाए और इस परीक्षा के दौरान (तुमने जो कुछ स्वीकार कर लिया है और जिसका

विवरण तुम्हारे उक्त मंतव्य के संदर्भ में तुम्हारे विरुद्ध ऊपर दिया जा चुका है उसे बिल्कुल अलग रखते हुए) तुमने एक अच्छे कैथोलिक की भाँति प्रश्नों के उत्तर दिए।

इसलिए, तुम्हारे मामले के सभी पक्षों का दल समझकर और उन पर गम्भीर विचार करके, तुम्हारी उक्त स्वीकृतियों और बचाव तथा उन अन्य सभी बातों को ध्यान में रखते हुए जिन पर विचार किया जाना चाहिए, हम इस फैसले पर पहुँचे हैं कि तुम्हारे विरुद्ध निम्नलिखित अन्तिम निर्णय घोषित किया जाए

अतः प्रभु ईसा मसीह तथा उनकी परम पवित्र माता कुमारी मरी के परम पवित्र नामों का स्मरण कर उन्हें साक्षी बनाते हुए, हम अपने इस अंतिम निर्णय की घोषणा करते हैं, जिसे पवित्र धर्मशास्त्र के श्रद्धेय धर्माध्यक्षों तथा दोनों ही विधानों के आचार्यों तथा असमरों का परिषद के साथ न्यायाधीशों के रूप में बैठकर हमने उन विषयों और विवादों के सम्बन्ध में लिखित रूप में प्रस्तुत किया है जो एक ओर पवित्र धर्मपीठ के राजस्व न्याया धिकारी दोनों विधानों के आचार्य मन्त्रिमय कार्लो सिंसीरियोबाग्नी तथा दूसरी ओर तुम—गैलीलियो गलिली—अभियुक्त और यथावत स्वीकृत अपराधी—प्रतिवादी के बीच न्यायालय में विचारार्थ प्रस्तुत किए गए थे हमने निर्णय किया है और इस निर्णय की घोषणा करते हैं कि तुम—उक्त गलीलियो—उन बातों के कारण जिनका विवरण इस प्रक्रिया में किया गया है और जिन्हें यथोक्त रूप में, तुमने स्वीकार किया है इस पवित्र धर्मपीठ की दृष्टि में अपने आपको अपसिद्धान्त का माननेवाला बना चुके हो, अर्थात तुमने इस सिद्धान्त पर (जो झूठा है और पवित्र तथा दैवी धर्म-ग्रन्थों के प्रतिकूल है) विश्वास किया है और इसे माना है कि सूर्य इस जगत का केन्द्र है और यह पूर्व से पश्चिम की ओर गतिशील नहीं है तथा यह कि पृथ्वी गतिशील है और इस जगत का केन्द्र नहीं है तुमने यह भी माना है कि कोई सम्मति पवित्र धर्मग्रन्थों के प्रतिकूल घोषित किए जाने के बाद भी मानी जा सकती है उसका समर्थन किया जा सकता है और उसे सम्भाव्य बताया जा सकता है, और फलतः इस प्रकार के अपचारियों के विरुद्ध पवित्र धर्मादेशों द्वारा और अन्य मामान्य और विशिष्ट संविधानों द्वारा व्यादिष्ट और घोषित सभी प्रकार की निन्दा और शास्ति का पात्र तुमने अपने आपको बना लिया है। हम चाहते हैं कि इस निन्दा और शास्ति से तुम्हें मुक्त

कर िया जाए, बशर्ते ि तुम ुद्ध हृदय से और कृत्रिम निष्ठा के साथ हमारी उपस्थिति म उपयुक्त भूला और अपसिद्धा ता को तथा अ य उन सभी भूला और अपसिद्धा ता को, जो कैथोलिक और पोपपरक रोम के चच के प्रतिकूल हा ापथपूवक त्याग दो उसकी नि दा करो और उसस घृणा करो—उस रूप म, जो अब तुम्ह नीचे बताया जा रहा है।

लेकिन अपनी इस हानिकर और घातक भूल तथा अतिक्रमण के बावजूद तुम बिल्कुल दण्डमुक्त न रह जाओ, भविष्य के लिए तुम्ह अधिक सचेत बनाया जा सके और इस प्रकार के अपचारो से दूर रहने के लिए तुम दूसरो की दष्टि म एक उदाहरण बन जाओ, इसलिए हम यह आदेश देते हैं कि तुम्हारी पुस्तक 'डायलाग्स ऑफ़ गलीलियो गलिली' एक सावजनिक ासनादेश द्वारा निषिद्ध घोषित कर दी जाए और तुम्ह हम इस पवित्र धमपीठ के औपचारिक कारावास मे तब तक रखे जाने का आदेश देते हैं जब तक तुम्हारा उक्त कारावास म रखा जाना हम अभीष्ट समझ और हम आदेश देते है कि कल्याणकारी तपश्चया के रूप म तुम अगले तीन वष तक प्रति सप्ताह एक बार प्रायश्चित्त मूलक सात स्तोत्रो का जाप किया करो। ऊपर कह गए दण्ड अथवा तपश्चया को पूणत अथवा आशिक रूप म कम करने, समाप्त करने अथवा उसे और हल्का करने का अधिकार हम अपने हाथो म सुरक्षित रखते है।

इस दण्ड के फलस्वरूप शपथपूवक अपसिद्धात के त्याग का जो सूत्र घोषित करने के लिए गलीलियो को विवश किया गया था, वह इस प्रकार था—

महामहिम एव श्रद्धास्पद लाड कार्डिनलो व धम भ्रष्टता के विरुद्ध विचार करन वाले विश्वव्यापी ईसाई गणतत्र के सावजनिक यायाधीशो ! आपके सम्मुख व्यक्तिगत रूप स याय विचार के लिए लाया गया मैं गलीलियो गलिली, फ्लोरेंसवासी स्वर्गीय विनसेंजियो गलिली का पुत्र, अवस्था ७० वष, आपके सामन झुका हुआ, अपनी आँखो के सामन पवित्र दिव्य वार्ता की पुस्तका को देख रहा हूँ जिन्हें अपने हाथो स छूकर मैं ापथपूवक कहता हूँ कि मैंने सबदा यह विश्वास किया है, और भगवान की अनुकम्पा म भविष्य म भी उस प्रत्यक नियम पर विश्वास करूँगा जो पवित्र कथालिक और रोम के पाप का चच मा य मानता है, जिनकी शिक्षा और उपदेश देता है। किन्तु चूकि इस पवित्र धमपीठ द्वारा मुझे यह धमदेश दिया गया है कि मैं उस असत्य सम्मति को बिल्कुल त्याग दू जिसम यह माना

गया है कि सूर्य इस जगत का केन्द्र है और अविचल है, और इस असत्य सिद्धान्त को किसी प्रकार भी मानने, उसका समर्थन करने अथवा उसकी शिक्षा देने से मुझे मना किया गया है और चूंकि मुझे यह बताए जाने के बाद भी कि उक्त सिद्धान्त पवित्र धर्म ग्रन्थों के प्रतिकूल है, मैंने एक पुस्तक लिखी और छापी है जिसमें मैंने इसी निषिद्ध सिद्धान्त का विवेचन किया है और बिना कोई समाधान प्रस्तुत किए उसके समर्थन में सबल तर्क प्रस्तुत किए है, और इसलिए यह निर्णय किया गया है कि मेरे अपधर्मी होने की गम्भीर शकाएँ हैं, अर्थात मैंने यह माना है और विश्वास किया है कि सूर्य इस जगत का केन्द्र है और अविचल है तथा पृथ्वी जगत का केन्द्र नहीं है और गतिशील है, इसलिए आप महामहिम न्यायाधीशों के मस्तिष्क से तथा प्रत्येक कैथोलिक ईसाई के मस्तिष्क से अपने विरुद्ध बनी हुई इस गम्भीर शका को दूर करने के लिए मैं प्रस्तुत हूँ अतः शुद्ध हृदय और अकृत्रिम निष्ठा के साथ मैं उक्त भूलों और अपसिद्धान्तों का तथा सामान्यतः ऐसी प्रत्येक अन्य भूल और पन्थ का जो उक्त पवित्र चर्च के प्रतिकूल है, मैं शपथपूर्वक त्याग करता हूँ उसकी निन्दा करता हूँ और उससे घृणा करता हूँ और शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं भविष्य में कभी भी न तो मौखिक रूप से और न लिखित रूप से ऐसी कोई बात कहूँगा या प्रतिपादित करूँगा जिसके कारण मेरे विरुद्ध किसी प्रकार की शका उत्पन्न हो सके बल्कि यदि कभी मुझे किसी अपधर्मी का अथवा ऐसे व्यक्ति का पता चला जिसके अप-सिद्धान्तवादी होने की शका हुई तो मैं उसकी निन्दा इस पवित्र धर्मपीठ के सामने अथवा जहाँ कहीं भी मैं होऊंगा वहां के धार्मिक न्यायाधीश के सामने करूँगा। इसके अतिरिक्त मैं शपथपूर्वक वचन देता हूँ कि जो तपश्चर्या मेरे लिए इस पवित्र धर्मपीठ द्वारा निर्धारित की गई है अथवा की जाएगी उसका पालन पूरी तरह करूँगा। किन्तु यदि कभी ऐसा हो कि मैं अपने उक्त वचनों, अपनी शपथों और निष्ठापूर्ण स्वीकृतियों का उल्लघन करूँ (जिससे भगवान बचाए) तो मैं अपने आप उन सभी यातनाओं और दण्डों को भोगूंगा जिनकी आज्ञप्ति और घोषणा पवित्र धर्मादेशों तथा अन्य सामान्य और विशिष्ट सविधानों द्वारा इस प्रकार के अपचारों के विरुद्ध की गई है। अत भगवान और उनकी पवित्र दिव्य वार्ता के ग्रन्थ मेरी सहायता करें जिन्हें अपने हाथों से छूकर मैं, उपरिलिखित गलीलियो गलिली, ने शपथपूर्वक अपसिद्धान्तों का त्याग किया है, और ऊपर

> जिसके अनुसार अपने आपको वचनबद्ध कर लिया है, और जिसके साक्षी रूप में अपने ही हाथों मैंने अपनी स्वीकृतिसूचक अपना हस्ताक्षर इस प्रस्तुत अपसिद्धान्त-त्याग प्रलेख में किया है जिसे मैंने शब्दशः सस्वर पढ़ा है।

रोम स्थित मिनर्वा के कान्वेंट में २२ जून, १६३३ ई० को मैं, गैलीलियो गैलिली, ने अपने हाथों यथोक्त ढंग से शपथपूर्वक अपसिद्धान्त का त्याग किया है।[1]

यह सच नहीं है कि शपथपूर्वक अपसिद्धान्त के इस त्याग-पत्र को पढ़ने के बाद गैलीलियो ने धीमे स्वर में 'एपर सी मूव' कहा था। यह तो दुनिया ने कहा था, गैलीलियो ने नहीं।

धार्मिक न्यायालय में यह कहा गया था कि गैलीलियो को दिया गया दण्ड 'दूसरों को इस प्रकार के अपचार से दूर रहने के लिए एक चेतावनी' होना चाहिए। कम-से-कम जहाँ तक इटली का सम्बन्ध था इस उद्देश्य में सफलता मिली थी। गैलीलियो इटली की अन्तिम महान सन्तान थे। उनके बाद आज तक कोई भी इटलीवासी इस प्रकार के अपचारों में समर्थ नहीं हो सका। यह नहीं कहा जा सकता कि गैलीलियो के समय से अब चर्च में बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया है। जहाँ कहीं चर्च की सत्ता है जैसे आयरलैण्ड और बोस्टन में वहाँ आज भी नए विचारों से युक्त साहित्य निषिद्ध है।

गैलीलियो और धार्मिक न्यायालय के बीच का यह संघर्ष केवल स्वतन्त्र विचार और कट्टरपंथियों के बीच का अथवा विज्ञान और धर्म के बीच का संघर्ष नहीं है, यह संघर्ष निगमनात्मक और आगमनात्मक भावना के बीच का संघर्ष है। जो लोग निगमन को ज्ञान प्राप्ति की पद्धति मानते हैं उन्हें अपने आधार वाक्य अन्यत्र—प्रायः किसी पवित्र ग्रन्थ में—खोजने होते हैं। प्रेरणामूलक पुस्तकों से निगमन की पद्धति सत्य सिद्धि के लिए विधिवेत्ताओं, ईसाइयों, मुसलमानों और साम्यवादियों द्वारा अपनाई जाती है। चूँकि जब कभी निगमन के आधार-वाक्यों पर ही शंका उत्पन्न की जाती है तभी ज्ञान प्राप्ति के एक साधन के रूप में इस पद्धति का दिवाला निकल जाता है इसलिए पवित्र ग्रन्थों के आप्तत्व पर प्रश्नचिह्न लगाने वालों के विरुद्ध निगमन पद्धति पर विश्वास करने वालों का उग्र रहना आवश्यक ही है। गैलीलियो ने अरस्तू और धर्म ग्रन्थों के विरुद्ध प्रश्नचिह्न लगाए और इस प्रकार मध्ययुगीन ज्ञान के पूरे ढाँचे को ही नष्ट कर दिया। उनके पूर्वजों को इस बात का ज्ञान था कि संसार की रचना कैसे हुई, मनुष्य का भाग्य क्या है, तत्त्वमीमांसा के गूढ़तम रहस्य तथा पिण्डों के आचरण के

१ श्री जे० जे० फाही लिखित पुस्तक 'गैलीलियो, हिज लाइफ एण्ड वर्क,' पृष्ठ ३१३ जान मरे, १६०३।

नियमन करने वाले गूढ सिद्धात उन्हे मालूम थे। सम्पूर्ण नैतिक और भौतिक विश्व मे उनके लिए कुछ भी रहस्यपूर्ण नही था, कुछ भी उनसे छिपा नही था, कुछ भी ऐसा नही था जिसकी विगति व्यवस्थित हेत्वनुमान द्वारा न की जा सकती हो। इस प्रभूति की तुलना मे गलीलियो के अनुयायियो के पास क्या शेष रह गया ?—गिरते हुए पिण्डो का सिद्धात, दोलन का सिद्धात और केपलर के दीर्घ वृत्त। अपनी अत्यन्त श्रमपूर्वक अर्जित इस सम्पत्ति के इस प्रकार नष्ट होने पर यदि तत्कालीन विद्वान लोग उबल पडे हो तो इसमे आश्चर्य ही क्या है ? जैसे उगता हुआ सूर्य असंख्य तारागणो को विलीन कर देता है, उसी प्रकार गलीलियो के थोडे-से सिद्ध सत्यो ने मध्ययुगीन निश्चित मतो के टिमटिमाते हुए तारो को विलीन कर दिया।

सुकरात ने कहा था कि अपने समकालीन लोगो से वह इसलिए अधिक बुद्धिमान थे कि उन्हे इस बात का ज्ञान था कि उन्हे कुछ भी ज्ञान नही। यह एक प्रभावपूर्ण अतिशयोक्ति थी। गलीलियो सच्चाई के साथ कह सकते थे कि उन्हे कुछ ज्ञान प्राप्त है, किन्तु वह यह भी जानते थे कि उनका ज्ञान अत्यल्प है, इसके विपरीत अरस्तू के समकालीन लोगो का ज्ञान शून्य था, फिर भी वे सोचते थे कि उनका ज्ञान बहुत विशाल है। अभिलाषा-पूर्ति के मनोराज्य के प्रतिकूल ज्ञान की प्राप्ति कठिनाई से होती है। यथार्थ ज्ञान से तनिक भी सम्पर्क हो जाने पर मनोराज्य की स्थिति कम स्वीकार्य रह जाती है। तथ्य तो यह है कि ज्ञान की प्राप्ति को गलीलियो जितना कठिन समझते थे, वास्तव मे वह उससे भी कही अधिक कठिन है, और उनके अधिकाश विश्वास सत्य के केवल सन्निकट ही थे, किन्तु ऐसे ज्ञान को उपलब्ध करने की पद्धति मे, जो निर्भ्रान्त और साथ ही सामान्य भी हो, गलीलियो ने पहला बडा कदम उठाया था। इसीलिए गैलीलियो आधुनिक युग के जनक हैं। जिस युग मे हम रह रहे हैं उसके सम्बन्ध मे हमारी पसन्द या नापसन्द चाहे जैसी हो, इस युग मे आबादी की वृद्धि, जनस्वास्थ्य के सुधार, रेलगाडियाँ, मोटरकार, रेडियो, राजनीति और साबुन के विज्ञापन—सभी कुछ गलीलियो की देन है। यदि उनकी युवावस्था मे ही धार्मिक न्यायालय का शिकजा उन पर आ गया होता तो आज न तो हवाई युद्ध और विषैली गैसो के वरदानो का और न गरीबी और रोगो से क्रमश मिलने वाली मुक्ति का ही उपभोग हम कर पाते, जो हमारे युग की विशेषताए हैं।

समाजशास्त्रियो का एक वर्ग है जो बुद्धि के महत्व को नगण्य बताने का अभ्यासी है और जो सभी प्रकार की महान घटनाओ को बडे बडे अवैयक्तिक कारणो से उद्भूत मानता है। मेरा विश्वास है कि यह मनोवृत्ति एक व्यापक विभ्रम है। मेरा विश्वास है कि यदि सत्रहवी शताब्दी के जन समाज मे से कोई १०० व्यक्ति शैशवावस्था मे ही मार डाले गए होते तो आधुनिक ससार का

अस्तित्व ही न होता। और इन १०० व्यक्तियो म से गैलीलियो प्रमुख है।

२ 'न्यूटन'

सर आइजक न्यूटन का जन्म उसी वर्ष हुआ था जिस वर्ष (१६४२) गैलीलियो की मृत्यु हुई थी। गैलीलियो की भाँति ही उन्होंने भी लम्बी उमर पाई थी। उनकी मृत्यु सन १७२७ मे हुई थी।

इन दोना व्यक्तियो के कार्य-कलापो के बीच की अवधि म विज्ञान का स्थान ससार म बिल्कुल बदल गया था। गैलीलियो को अपने जीवन भर तत्कालीन प्रतिष्ठित विद्वानो के विरुद्ध सघर्ष करना पडा था, और जीवन के अन्तिम वर्षों म उन्ह अभियुक्त बनने और अपने कार्य के निषिद्ध घोषित किए जाने की वेदना झेलनी पडी थी। दूसरी ओर न्यूटन को १३ वर्ष की अवस्था मे कैम्ब्रिज के ट्रिनिटी कालेज का स्नातक विद्यार्थी होने के समय मे ही सार्वजनिक प्रशसा प्राप्त हुई थी। एम० ए० की डिग्री मिलने के बाद दो वर्ष भी नही बीते थे कि उनके कालिज के आचार्य ने उन्ह अविश्वसनीय प्रतिभाशाली व्यक्ति बताना शुरू कर दिया था। सम्पूर्ण विद्वत समाज द्वारा उनकी प्रशसा की गई सम्राटो द्वारा उनका सम्मान किया गया और विशुद्ध अंग्रेजी परम्परा म उन्हें एक सरकारी पद देकर पुरस्कृत किया गया, पर इस पद पर व कायम न रह सके। वे इतने अधिक महत्वपूर्ण बन गए थे कि जब जार्ज प्रथम गद्दी पर बैठे तब महान लीबनिज को हनोवर ही मे छोड दिया गया, क्योकि वह न्यूटन स लड पडे थे।

आगामी पीढियो के लिए यह सौभाग्य की बात थी कि न्यूटन की परिस्थितियाँ इतनी शान्तिपूर्ण थी। वह एक घबडालू और अधीर व्यक्ति थे, एक ही साथ झगडालू भी, और विवाद से डरने वाले भी। वह प्रचार और विज्ञापन से घृणा करत थ क्योकि इसम उनकी आलोचना होने के भी अवसर आते थे। मित्रो द्वारा डराए धमकाए जाने पर ही वह अपनी रचनाएँ प्रकाशित करत थे। अपनी पुस्तक 'आपटिक्स' के सदर्भ म उन्होंने लीबनिज को लिखा था— 'प्रकाश का अपना सिद्धान्त प्रकाशित करने क कारण उत्पन्न विवादो से मुझे इतना कष्ट हुआ कि मैंने अपनी इस मूर्खता के लिए अपने आपको कोसा है कि एक छाया की प्राप्ति के लिए अपनी शान्ति-जसे महत्वपूर्ण वरदान को मैंने छोड दिया।" जिस प्रकार के विरोध का सामना गैलीलियो को करना पडा था, यदि उस प्रकार के विरोध का सामना न्यूटन को भी करना पडता तो सम्भव है कि उन्होंने कभी एक पंक्ति भी प्रकाशित न की होती।

विज्ञान के इतिहास म न्यूटन की सफलता सर्वाधिक दर्शनीय है। यूनानियो के समय स ही समस्त विज्ञानो म सर्वाधिक प्रगति प्राप्त और समादृत विज्ञान रहा है ज्योतिष। केपलर के नियम अभी तक ताजे ही थे, और उनम से

तीसरा नियम तो अभी तक सार्वजनिक स्वीकृति भी नहीं पा सका था। इसके अलावा जो लोग वृत्त और दीर्घ वृत्त के अभ्यस्त थे उनकी दृष्टि में ये नियम अद्भुत और आधारहीन मालूम होते थे। गैलीलियो का ज्वारभाटा सिद्धान्त ठीक नहीं था, चन्द्रमा की गतियां ठीक ठीक नहीं समझी जा सकी थीं, और टोलमीय पद्धति में आकाशीय पिण्डों को जो एकता प्राप्त थी उसके नष्ट हो जाने का लेद ज्योतिषियों के लिए अनिवार्य था। अपने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त से न्यूटन ने इस सम्पूर्ण गडबडझाले में एक नई व्यवस्था प्रतिष्ठित कर दी। न केवल ग्रहों और उपग्रहों की गतियों के प्रमुख पहलुओं के कारण ज्ञात हो गए, बल्कि उस युग की सम्पूर्ण ज्ञात बारीकियों के भी कारण मालूम हो गए। कुछ समय पहले तक जो धूमकेतु राजाओं की मृत्यु का अपशकुन माने जाते थे वे भी अब गुरुत्वाकर्षण के नियम के अनुसार चलने वाले सिद्ध हो गए। सभी धूमकेतुओं में से हैली द्वारा वर्णित धूमकेतु सबसे अधिक इस नियम की यथार्थता सिद्ध करनेवाला साबित हुआ, और हैली न्यूटन के सर्वोत्तम मित्र थे।

न्यूटन की पुस्तक 'प्रिंसिपिआ' भव्य यूनानी शैली पर लिखी गई है। गुरुत्वाकर्षण के नियम और तीन गति नियमों के आधार पर शुद्ध गणितीय निगमन द्वारा सम्पूर्ण सौर-परिवार का विश्लेषण किया गया है। न्यूटन की रचना दर्शनीय है जैसी कि हमारे युग की सर्वोत्तम रचनाएं भी नहीं होतीं। आधुनिक रचनाओं में से उस प्रकार की अभिजातपूर्णता के समीप पहुँचने वाली रचना सापेक्षता सिद्धांत सम्बन्धी रचना है किन्तु उसमें भी उस प्रकार की अन्तिमता का लक्ष्य नहीं स्वीकार किया गया, क्योंकि आजकल प्रगति बहुत तेज है। सेब के गिरने की कहानी सभी को मालूम है। इस प्रकार की अधिकांश कहानियों के विपरीत, निश्चित रूप से इस कहानी के झूठ होने का किसीको ज्ञान नहीं है। जो भी हो, सन् १६६५ में ही न्यूटन ने सबसे पहले गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त पर विचार किया और उसी वर्ष, प्लेग की महामारी के कारण उन्होंने अपना समय देहात में सम्भवतः किसी बगीचे में बिताया। अपनी पुस्तक 'प्रिंसिपिआ' उन्होंने सन् १६८७ ई० तक प्रकाशित नहीं की। पूरे २१ वर्ष तक वह अपने सिद्धान्त पर विचार करने और क्रमशः उसे पूर्ण बनाने में लीन और सन्तुष्ट रहे। कोई भी आधुनिक विद्वान ऐसा करने का साहस नहीं करेगा क्योंकि २१ वर्ष का समय वैज्ञानिक जगत को पूरी तरह बदल देने के लिए पर्याप्त है। आइन्सटीन की रचना में भी हमेशा कुछ ऊबड़-खाबड़ अंश, कुछ शंकाएं जिनका समाधान नहीं हो सका और कुछ अपूर्ण कल्पनाएँ या विचार पाए रहते हैं। यह बात मैं आलोचना के स्वर में नहीं कह रहा केवल अपने युग और न्यूटन के युग के बीच जो अन्तर है उसे स्पष्ट करने के लिए कह रहा हूँ। अब हम पूर्णता को अपना ध्येय नहीं बनाते, क्योंकि हमारे उत्तराधिकारियों की

एक पूरी सेना है जिससे आग बढ़ पाना हमारे लिए काफी कठिन है और प्रतिक्षण हमारे चिह्नों को ही मिटा देने के लिए तैयार है।

गलीलियो के साथ जो व्यवहार किया गया उसके विपरीत न्यूटन को मिला सार्वजनिक सम्मान जो अशत गलीलियो के कार्य का ही परिणाम था दोनो के बीच की अवधि म अन्य वैज्ञानिको द्वारा किया गया कार्य भी इसका एक कारण था, किन्तु न्यूटन को मिले सम्मान का कारण प्राय उसी मात्रा मे राजनीति की गतिविधि भी थी। गलीलियो की मृत्यु के समय जर्मनी में जो तीस वर्षीय युद्ध चल रहा था उसन वहा की आधी आबादी समाप्त कर दी और फिर भी प्रोटेस्टटो और कैथोलिको क बीच शक्ति-सतुलन मे तनिक भी परिवतन न हो सका। जिनम जरा भी सोचने विचारने की क्षमता थी, वे इस युद्ध के कारण यह सोचने लगे कि धार्मिक युद्ध लडना एक भूल है। एक कथोलिक राष्ट्र होते हुए भी फ्रास न जर्मनी के प्रोटेस्टटो का समर्थन किया था, और चौथे हैनरी न यद्यपि फ्रास का समर्थन पाने के लिए कैथोलिक मत स्वीकार कर लिया था, फिर भी अशत इस नए मत के प्रति उसम कोई कट्टरता नहीं आई थी। इग्लड मे न्यूटन के जन्म सवत म जो गृहयुद्ध शुरु हुआ था उसने धार्मिक सन्तो का शासन स्थापित किया और इस शासन ने इन सन्तो को छोडकर शेष प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक अतिउत्साह का विरोधी बना दिया। द्वितीय चार्ल्स के देशनिकाले से वापस आन के एक वर्ष बाद न्यूटन ने विश्वविद्यालय म प्रवेश किया। द्वितीय चार्ल्स ने ही रायल सोसायटी की स्थापना की थी और विज्ञान का प्रोत्साहन देने के लिए अपनी शक्ति भर सब-कुछ किया था, यद्यपि इसम सन्देह नही कि अशत ऐसा करने म उसका उद्देश्य कट्टरता का प्रतिकार करना था। प्रोटेस्टटो की धार्मिक कट्टरता ने उसे देशनिकाला दे रखा था और कथोलिको की धार्मिक कट्टरता के कारण उसके भाई को सिंहासन छोडना पडा था। द्वितीय चार्ल्स एक बुद्धिमान सम्राट था। उसने सरकार का यह नियम बना दिया कि विदेशो मे यात्रा पर जाने की स्थितियो से राजा को बचना चाहिए। उसके राज्यारोहण स लेकर रानी एन की मृत्यु तक का समय इग्लड के इतिहास म बौद्धिक दृष्टि से सर्वाधिक दीप्तिमान युग है।

इस बीच देकार्त न फ्रास मे आधुनिक दर्शन शास्त्र की नींव डाल दी थी, किन्तु उनका आवर्त सिद्धान्त न्यूटन के विचारो का स्वीकृति मे बाधक ही सिद्ध हुआ है। न्यूटन की मृत्यु के बाद ही, और अधिकाशत वाल्टेयर की रचना 'लेट्रेस फ़िलासफीक्स' क परिणामस्वरूप, न्यूटन के विचार प्रचलित हुए। किन्तु एक बार प्रारम्भ हो जान पर उनका प्रचलन अत्यन्त प्रबल हुआ, तथ्य तो यह है कि नेपोलियन क पतन तक अगली समूची शताब्दी के दौरान मुख्य रूप से

फ्रांसीसी लोग ही न्यूटन के कार्य को आगे बढ़ाते रहे। देश भक्ति की भावना के कारण अंग्रेज लोग तो उन क्षेत्रों में न्यूटन की पद्धतियों से ही चिपके रहे जहां वे लीबनिज की पद्धतियों से निम्न कोटि की थीं। इसका परिणाम यह हुआ कि न्यूटन की मृत्यु के बाद एक शताब्दी तक गणित में अंग्रेजों की प्रगति नगण्य ही रही। इटली को जो हानि धार्मिक कट्टरता के कारण हुई थी, इंग्लैंड में वही हानि राष्ट्रीय भावना के कारण हुई। यह कहना जरा कठिन है इन दो में से कौन अधिक घातक सिद्ध हुआ।

न्यूटन की रचना प्रिंसिपिआ में यद्यपि यूनानियों द्वारा प्रारम्भ की गई निगमनात्मक पद्धति कायम रखी गई है फिर भी उसमें यूनानी रचनाओं से भिन्न भावना अपनाई गई है क्योंकि गुरुत्वाकर्षण का नियम, जो उसका एक आधारभूत सिद्धान्त है स्वतः सिद्ध नहीं माना गया, बल्कि उसकी प्रतिष्ठा केपलर के नियमों से आगमनात्मक पद्धति द्वारा की गई है। इसलिए यह पुस्तक वैज्ञानिक पद्धति को उसके आदर्श रूप में प्रस्तुत करती है। विशिष्ट तथ्यों के प्रेक्षण के आधार पर आगमनात्मक पद्धति से वह एक सामान्य नियम की स्थापना करती है और इस सामान्य नियम से निगमनात्मक पद्धति द्वारा विशिष्ट तथ्यों का अनुमान किया जाता है। आज भी यही भौतिकी का आदर्श है और सिद्धान्ततः भौतिकी ही वह विज्ञान है जिससे अन्य सभी विज्ञानों का निगमन किया जाना चाहिए। किन्तु आदर्श की सिद्धि न्यूटन के समय जितनी कठिन मालूम होती थी वास्तव में वह उससे भी कुछ अधिक कठिन है और अपरिपक्व व्यवस्थापन खतरनाक ही सिद्ध हुआ है।

न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त का एक अद्भुत इतिहास रहा है। जहाँ एक ओर दो शताब्दियों से भी अधिक समय तक वह आकाशीय पिण्डों की गतियों के सम्बन्ध में ज्ञात प्रायः प्रत्येक तथ्य का विश्लेषण प्रस्तुत करता रहा वहाँ दूसरी ओर प्राकृतिक नियमों में उसकी स्थिति बिल्कुल अलग और रहस्यपूर्ण बनी रही। भौतिकी की नई-नई शाखाओं का व्यापक विकास हुआ, ध्वनि, ऊष्मा प्रकाश और विद्युत सम्बन्धी सिद्धान्तों की सफलतापूर्वक खोज की गई किन्तु पदार्थ के किसी ऐसे गुण की खोज न की जा सकी जिसे किसी प्रकार भी गुरुत्वाकर्षण के साथ सम्बन्धित किया जा सके। आइंसटीन के सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त द्वारा ही (१९१५ में) गुरुत्वाकर्षण को भौतिकी की सामान्य योजना में स्थान दिया जा सका और फिर भी यह देखा गया कि प्राचीन अर्थों में उसका सम्बन्ध भौतिकी के बजाय ज्यामिति से अधिक है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से आइंसटीन के सिद्धान्त में न्यूटन द्वारा प्रस्तुत परिणामों के कुछ अत्यन्त सूक्ष्म संशोधन ही किए गए हैं। इन सूक्ष्म संशोधनों को, जहाँ तक उनकी नाप-जोख सम्भव है अनुभव के आधार पर परखा जा चुका

है किन्तु व्यावहारिक परिवतन अल्प होने पर भी बौद्धिक परिवतन बहुत अधिक हुआ है, क्योंकि देश और काल सम्बधी हमारी सम्पूण धारणा म क्रान्तिकारी परिवतन करन पडे हैं। आइसटीन के काय ने विज्ञान क क्षेत्र म स्थायी उपलब्धि की दुरुहता स्पष्ट कर दी है। न्यूटन का गुरुत्वाकपण का नियम इतने समय तक निर्विकल्प रूप म प्रचलित रहा और इतन प्रश्ना, समस्याओं का समाधान किया कि ऐसा सम्भव नहीं मालूम होता था कि उसम भी कभी सशोधन की आवश्यकता मालूम पडेगी। फिर भी आखिरकार ऐसा सशोधन आवश्यक सिद्ध हो गया और किसीको भी इस बात म सन्देह नहीं है कि इस सशोधन का भी सशोधन करना पडेगा।

३ 'डार्विन'

वैज्ञानिक पद्धति की प्रारम्भिक सफलताएँ ज्योतिष के क्षेत्र म हुई थी। हाल के जमाने म इस पद्धति की प्रशसनीय सफलताएँ आणविक भौतिकी के क्षेत्र म हुई हैं। ये दोनों ही ऐसे विषय हैं जिनके विश्लेषण के लिए गणित की बहुत अधिक आवश्यकता पडती है। शायद अन्तिम पूणता की स्थिति म समस्त विज्ञान गणितीय हो जाएगा किन्तु तब तक ऐसे पर्याप्त व्यापक क्षेत्र हैं जिनम गणित का प्रयोग बहुत कम सम्भव है और आधुनिक विज्ञान की कुछ सर्वाधिक महत्वपूण उपलब्धियाँ इन्हा क्षेत्रो मे हुई हैं।

डार्विन के काय को हम अगणितीय विज्ञानो का एक उदाहरण मान सकते हैं। न्यूटन की भाति डार्विन ने भी एक युगान्त भर न केवल वज्ञानिको के बल्कि साधारण शिक्षित जनता के बौद्धिक दृष्टिकोण पर शासन किया, और गलीलियो की भाति धम शास्त्र से उनका सघप हुआ यद्यपि उसका परिणाम उनके लिए कम घातक रहा। सस्कृति के इतिहास म डार्विन का महत्व बहुत अधिक है किन्तु शुद्ध वज्ञानिक दृष्टिकोण से उनके काय का मूल्य आकना कुछ कठिन है। उन्होंने विकास की प्राक्कल्पना नहीं की जिसकी सूझ उनके कई एक पूवगामियो को हो चुकी थी। उन्होंने विकास के पक्ष म तमाम प्रमाण या साक्षी एकत्र किए और विकास सिद्धान्त को समझाने के लिए एक प्रक्रिया का आविष्कार किया जिसे उन्होंने 'प्राकृतिक चुनाव' नाम दिया। उनके द्वारा एकत्र अधिकाश साक्ष्य आज भी मान्य हैं, किन्तु 'प्राकृतिक चुनाव' जीवविज्ञान के पण्डितो के बीच पहले की अपेक्षा अब कम स्वीकाय है।

उन्होंने काफी लम्बी लम्बी यात्राएँ की थी, बुद्धिमानी के साथ खोजा था देखा-परखा था और शान्तिपूर्वक विचार किया था। उनकी भाँति ख्यातिप्राप्त लोगो म से शायद ही कोई ऐसे हो जिनम बौद्धिक दीप्ति उनसे कम रही हो, उनकी युवावस्था म किसी ने भी उन पर विशेष ध्यान नहीं दिया।

मे म्रिज म उन्हे निष्क्रिय रहने म और केवल उत्तीर्ण होकर उपाधि प्राप्त करने म ही सताप था । उस समय विश्वविद्यालय म जीव विज्ञान का अध्ययन करने म असमर्थ होने के कारण उन्हे देहात में घूमने और गुबरले इकट्ठे करने म अपना समय बिताना अच्छा लगता था । अधिकारियो की दृष्टि म यह भी बेकारी का ही एक रूप था । उनकी वास्तविक शिक्षा बीगल की यात्रा म ही हुई, जबकि उन्हे अनेक क्षेत्रो की वनस्पति और जन्तुओ का अध्ययन करने तथा समवर्गीय, किन्तु भौगोलिक दृष्टि से पृथक, जातियो के वासस्थानो का प्रेक्षण करने का अवसर मिला। उनके सर्वोत्तम काय का कुछ अश परिस्थिति विज्ञान से सम्बन्धित है अर्थात जातियो और वशो के भौगोलिक वितरण से ।[1] उदाहरण के लिए उन्होने यह देखा कि आल्प्स पवत की ऊँचाइयो पर उपलब्ध वनस्पति ध्रुवीय क्षेत्रो की वनस्पति से मिलती-जुलती है और इसी तथ्य से उन्होने यह अनुमान लगाया कि दोनो के पूवज हिम-युग म एक ही थे ।

वैज्ञानिक विवरणो के अलावा डार्विन का महत्व इस बात म है कि उन्होने जीव विज्ञान के पण्डितो को और उनके माध्यम से सामान्य जनता को अपनी यह पूर्ण धारणा बदलने के लिए विवश कर दिया कि जातिया अपरिवर्तनीय हैं, और यह विचार स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया कि विभिन्न प्रकार के सभी जीव एक सामान्य प्रकार के पूवजो से विभिन्न रूपो मे विकसित हुए हैं । आधुनिक युग के प्रत्येक नव विचार प्रचलित करने वाले की भाति डार्विन को भी अरस्तू के आप्तत्व से सघर्ष करना पडा था । यह कहना ही चाहिए कि अरस्तू मानव जाति के महान् दुर्भाग्यो म से एक थे । आज दिन तक अधिकाश विश्वविद्यालयो म तर्क शास्त्र के अध्यापन म तमाम अर्थहीन और बुद्धिहीन बातें भरी हैं जिनके लिए अरस्तू उत्तरदायी हैं ।

डार्विन के पूववर्ती जीव विज्ञान वेत्ताओ का सिद्धान्त यह था कि स्वग म एक आदर्श बिल्ली और एक आदर्श कुत्ता हैं तथा अन्य इसी प्रकार के आदर्श जीव हैं और धरती पर के वास्तविक बिल्ली-कुत्ते न्यूनाधिक रूप म इन्ही स्वर्गीय जीवो की अपूर्ण प्रतिकृतियाँ हैं । प्रत्येक जीव-जाति दवी मस्तिष्क के एक भिन्न विचार के अनुरूप बनी है और इसलिए एक जाति से दूसरी जाति म किसी प्रकार भी प्रकारान्तरण नही हो सकता क्योकि प्रत्येक जाति एक भिन्न सृष्टि क्रिया का परिणाम है । भूवैज्ञानिक साक्ष्य के कारण इस विचार को कायम रखना दिन-ब दिन अधिकाधिक कठिन होता गया क्योकि यह देखा गया कि व्यापक रूप से भिन्न वतमान जीव जातियो के पूवज परस्पर आज की जातियो की अपेक्षा बहुत अधिक मिलते जुलते थे, उनमे अधिक साम्य था । उदाहरण के लिए, एक समय था जब घोडे के भी पैरो म अँगुलियाँ होती थी, आदिकालीन चिडियो का

१ देखिए डार्विन की पुस्तक 'दि नेचर ऑफ लिविंग मैटर,' १६३०, पृ० १४४ ।

सरीसृपों से पृथक् कर सकना कठिन था, आदि आदि। यद्यपि 'प्राकृतिक चुनाव' की प्रक्रिया विशेष को अब जीव-वैज्ञानिक पर्याप्त नहीं मानते, फिर भी विकास के सामान्य तथ्य को शिक्षित लोगों में सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया जाता है।

मनुष्य को छोड़कर अन्य सभी जीवों के सम्बन्ध में विकास का सिद्धान्त कुछ लोगों द्वारा शायद बिना किसी संघर्ष विशेष के स्वीकार कर लिया जाता, किन्तु जन समाज के मन में डार्विनवाद इस प्राक्कल्पना के साथ एकरूप बन गया कि मनुष्य बन्दरों के वंशज हैं। हमारी मानव अहम्मन्यता के लिए यह धारणा बहुत ही क्लेशकारक थी, लगभग उतनी ही कष्टदायक जितना कि कापरनिकस का यह सिद्धान्त था कि पृथ्वी इस विश्व का केन्द्र नहीं है। जैसा कि स्वाभाविक ही है, परम्परागत धर्म शास्त्र में हमेशा मानव-जाति की प्रशंसा ही की गई है, यदि धर्म दर्शन की रचना बन्दरों ने अथवा शुक्र ग्रह के निवासियों ने की होती तो इसमें सन्देह नहीं कि उसमें यह गुण न होता। किन्तु स्थिति जैसी है उसमें लोगों को अपनी आत्म प्रतिष्ठा या अहं भावना की रक्षा करने की सामर्थ्य सर्वदा प्राप्त रही है और वह भी इस धारणा के साथ कि ऐसा करने में वे धर्म की रक्षा कर रहे हैं। और फिर हमें यह ज्ञात है कि मनुष्यों के आत्मा होती है, जबकि बन्दरों में आत्मा नहीं होती। यदि मनुष्य का विकास धीरे धीरे बन्दरों से ही हुआ है तो उसे आत्मा की उपलब्धि किस अवस्था में हुई? वास्तव में यह समस्या अपेक्षाकृत रूप में इस समस्या से अधिक जटिल नहीं है कि भ्रूण को किस विशिष्ट अवस्था में आत्मा की उपलब्धि होती है, किन्तु नई कठिनाइयाँ हमेशा पुरानी कठिनाइयों की अपेक्षा अधिक जटिल मालूम होती हैं, क्योंकि पुरानी कठिनाइयाँ के इक लम्बे परिचय के कारण कुण्ठित हो जाते हैं। इस कठिनाई से बचने के लिए यदि हम यह तय कर लें कि बन्दरों को भी आत्मा प्राप्त है तो फिर कदम-ब-कदम हमें यह विचार स्वीकार करना होगा कि प्रोटोजोआ को भी आत्माओं की उपलब्धि है और यदि हम प्रोटोजोआ या प्रजीवाणुओं को आत्मा विहीन मानते हैं तो विकासवादी सिद्धान्त के अनुसार हम मनुष्यों को भी आत्मा विहीन मानने के लिए विवश होना पड़ेगा। ये सारी कठिनाइयाँ डार्विन के विरोधियों के सामने प्रत्यक्ष थीं, और यह आश्चर्य की बात है कि डार्विन का जो विरोध किया गया वह और अधिक भीषण क्यों नहीं हुआ।

यद्यपि डार्विन के काम में अनेक स्थलों पर संशोधन की आवश्यकता हो सकती है, फिर भी वह काम वैज्ञानिक पद्धति में जो कुछ तात्त्विक है उसका एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है अर्थात् अभिलाषापूर्तिजन्य मनोराज्य की परी कहानियों के स्थान पर साक्ष्य पर आधारित सामान्य नियमों की प्रतिष्ठा का उदाहरण। अपनी आशाओं की अपेक्षा साक्ष्य पर अपनी सम्मतियों का आधारित करना मनुष्य जाति के लिए प्रायः सभी क्षेत्रों में कठिन होता है। जब पड़ोसियों

पर सद्गुणों से च्युत होने का आरोप लगाया जाता है तो उस पर विश्वास कर लेने से पहले उस आरोप की सच्चाई की जाँच परख कर लेना प्रायः असम्भव होता है। जब युद्ध प्रारम्भ हो जाता है तब दोनों पक्ष विश्वास करते हैं कि जीत निश्चित रूप से उन्हीं की होगी। जब कोई व्यक्ति घुड़दौड़ में किसी घोड़े पर पैसा लगाता है तो वह विश्वास करता है कि वही घोड़ा जीतेगा। स्वयं अपने सम्बन्ध में यदि कोई विचार करता है तो उसे विश्वास होता है कि वह एक सज्जन व्यक्ति है जिसकी आत्मा अमर है। इनमें से प्रत्येक तथा सभी प्रस्तावनाओं के पक्ष में निष्पक्ष साक्ष्य चाहे कुछ भी न हो किन्तु हमारी इच्छाएँ उन पर विश्वास करने के लिए एक प्रायः अनिवार्य प्रवृत्ति पैदा कर देती हैं। वैज्ञानिक पद्धति हमारी इच्छाओं को बिल्कुल अलग हटा देती है और इस प्रकार की सम्मतियों को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न करती है जिनके निर्धारण में इच्छाओं का कोई हाथ न हो। इसमें सन्देह नहीं कि वैज्ञानिक पद्धति में व्यावहारिक लाभ हैं यदि ऐसा न होता तो इच्छाजनित मनोराज्य के विरुद्ध इस पद्धति को आगे बढ़ने में कभी सफलता न मिली होती। जो जिल्दसाज वैज्ञानिक पद्धति से काम करता है, सफल और धनवान हो जाता है जबकि सामान्य रूप से अच्छा किन्तु अवैज्ञानिक जिल्दसाज असफल और गरीब हो जाता है। मानव प्रश्न सम्बन्ध में भी इस विश्वास ने कि मनुष्यों के आत्मा होती है, मानव जाति के सुधार के लिए एक विशिष्ट तकनीक उत्पन्न की है किन्तु एक लम्बे और सर्वांगीण प्रयत्न के बाद भी इस तकनीक से अभी तक कोई शुभ परिणाम प्रत्यक्ष नहीं हुआ। इसके विपरीत मानव शरीर, मानव मस्तिष्क और मानव जीवन का वैज्ञानिक अध्ययन अनतिदूर भविष्य में मानव स्वास्थ्य, बुद्धि और सद्गुणों के क्षेत्र में साधारण मनुष्यों का इतना अधिक सुधार करने की शक्ति हमें दे सकता है जिसकी पहले हमने कभी स्वप्न में भी कल्पना न की होगी।

आनुवंशिकता के नियमों के सम्बन्ध में डार्विन भूल में थे और मेण्डल के वंशागत सिद्धान्त द्वारा डार्विन के नियमों का पूरा-पूरा रूपान्तरण हो चुका है। इसी प्रकार परिवर्तनों और विविधताओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी डार्विन का कोई सिद्धान्त नहीं था और उनका विश्वास था कि ये परिवर्तन बहुत कम और अत्यधिक क्रमिक हुए हैं जबकि वास्तव में विशिष्ट परिस्थितियों में इसका बिल्कुल उल्टा पाया गया है। आधुनिक जीवशास्त्रज्ञ इस विषय में डार्विन से बहुत आगे जा चुके हैं, किन्तु आज वे जिस स्थान पर हैं उस तक वे कभी पहुँच ही न होते यदि डार्विन के कार्य से मिली प्रेरणा और गति उन्हें प्राप्त न हुई होती। विकास सिद्धान्त के महत्व और इसकी अनिवार्यता से लोगों को प्रभावित करने के लिए उनके शोध-कार्यों की व्यापकता आवश्यक थी।

४ 'पैवलाव'

किसी भी नए क्षेत्र म की गई विनान की प्रत्यक नइ प्रगति के विरुद्ध उसी प्रकार का प्रतिरोध उपन हुआ है जिसका सामना *गलीलियो* का करना पडा था, किंतु यह प्रतिराध क्रमश कमजोर हाता गया है। परम्परावादी हमशा यह आशा करत रहे हैं कि कहीं-न कहीं एक ऐसा क्षेत्र मिलगा जिसम वैनानिक पद्धति का प्रयोग करना असम्भव सिद्ध हो जाएगा। न्यूटन के बाद आकाशीय पिण्डा का क्षेत्र उहोंने निराश होकर छाड दिया। डार्विन के बाद उनम से अधिकाश ने विकास के व्यापक तथ्य को स्वीकार कर लिया, यद्यपि आज तक वे कहते जा रहे हैं कि विकास की गति का निदशन किन्हीं आन्तरिक शक्तियां द्वारा नही किया गया बल्कि उसका निर्देशन एक भविष्यदर्शी प्रयोजन द्वारा किया गया है। हम यह कल्पना करनी पडेगी कि फीताकृमि जो कुछ है वह इसलिए नहीं बन गया कि मनुष्य की अन्तडियां म अन्य किसी रूप म वह जीवित रह ही नहा सकता था बल्कि इसलिए कि वह किसी स्वर्गीय विचारणा की प्रतिपूर्ति कर रहा है जा दवी मन-मस्तिष्क का एक अश है। जसा कि बर्मिघम के विशप ने कहा है[1] 'यह घणित परापजीवी उत्परिवर्तना के समाकलन का परिणाम है, पर्यावरण के अनुकूलन का यह एक बडा सुदर उदाहरण है और साथ ही नतिक दृष्टि स अत्यन्त घृणास्पद भी। यह विवाद अभी तक पूणत समाप्त नहीं हुआ, यद्यपि इसम तनिक भी सन्देह नहीं है कि निकट भविष्य म ही विकास के आन्तरिक सिद्धान्त पूरी तरह प्रतिष्ठित हा जाएँगे।

विकासवादी सिद्धान्त का एक परिणाम यह हुआ है कि जिन गुणा का दावा हम होमोसेपियन्स के लिए करत हैं उनका कुछ अश हम जानवरो के लिए भी स्वीकार करना पडेगा। देकार्त की स्थापना थी कि जानवर केवल बुद्धिहीन यन्त्रवत चालित जीव हैं, जबकि मनुष्यों म अपनी स्वतन्त्र सकल्प शक्ति होती है। इस प्रकार के विचारा की सम्भाव्यता समाप्त हो गइ है यद्यपि 'उदासीी विकास का सिद्धान्त इस विचार की पुन प्रतिष्ठा करने का प्रयत्न करता है कि मनुष्य अन्य जीवो से गुणात्मक रूप म भिन्न है। क्रिया विनान दो प्रकार के लोगा के बीच सघष का क्षेत्र रहा है एक व जा सम्पूर्ण तत्वा को वनानिक पद्धति क अधीन मानत हैं और दूसरे व जा अब भी यह आशा करते हैं कि महत्वपूर्ण तत्वा म कुछ एस अवश्य हैं जिनका विश्लेषण रहस्यवादी ढग से करना आवश्यक है। क्या मानव शरीर एक मशीन मात्र है जिसका पूणत नियमन और शासन भौतिकी और रसायन शास्त्र के सिद्धान्ता द्वारा किया जाना है? जहाँ तक इस शरीर-यन्त्र को समझा जा सकता है वहा तक निश्चित रूप से वह एसा ही है किन्तु अब भी एसी प्रक्रियाएँ हैं जिन्हें पूरी तरह समझा नहीं जा

[1] देखिए, 'नेचर', २६ नवम्बर, १९३०।

सकता। सम्भव है इन प्रक्रियाओं में ही कोई महत्वपूर्ण सिद्धान्त छिपा हो। इस प्रकार जीववाद के समर्थक अज्ञान के ही सगी साथी बन जाते हैं। उनकी भावना कुछ ऐसी है कि मानव शरीर के सम्बन्ध में हम बहुत अधिक जानने का प्रयत्न न करना चाहिए कहीं ऐसा न हो कि अन्त में यह जानकर दुख हो कि हम इसे पूर्णतः समझ सकते हैं। प्रत्येक नया शोध कार्य इस दृष्टिकोण की तर्क सगति को और भी कम करता जा रहा है और निगूहन वृत्ति वाले लोगों के लिए उपलब्ध क्षेत्र को और भी सकुचित करता जाता है। फिर भी कुछ ऐसे लोग हैं जो मानव शरीर को वैज्ञानिकों की कृपा पर छोड़ देने के लिए तैयार हैं बशर्ते कि आत्मा को बचा सकें। हम जानते हैं कि आत्मा अमर है और उसे सत असत का ज्ञान है। सद् व्यक्ति की आत्मा को परमात्मा का भान रहता है। उसकी आत्मा उच्चतर तत्वों की ओर गतिशील रहती है और दिव्य ज्योति से उसका सम्पर्क रहता है। ऐसी स्थिति में निश्चित रूप से आत्मा का नियमन शासन भौतिकी और रसायन शास्त्र के नियमों द्वारा, अथवा तद्भिन्न किसी प्रकार के भी नियमों द्वारा, नहीं किया जा सकता। इसीलिए वैज्ञानिक पद्धति के विरोधियों द्वारा मानव ज्ञान के अन्य किसी विभाग की अपेक्षा मनोविज्ञान का समर्थन अत्यधिक कट्टरता के साथ किया गया है। फिर भी मनोविज्ञान भी वैज्ञानिक होता जा रहा है अनेक लोगों ने इसे वैज्ञानिक बनाने में सहयोग दिया है किन्तु रूसी क्रिया विज्ञान-वेत्ता पैवलाव से अधिक योग और किसी ने नहीं दिया।

पैवलाव[१], जो अभी तक जीवित हैं सन् १८४६ में पैदा हुए थे और अपने सक्रिय जीवन का अधिकांश भाग उन्होंने कुत्तों के व्यवहार की जाँच-परख करने में बिताया है। किन्तु यह कथन तो बहुत अधिक शिथिल है—उनका अधिकांश कार्य तो इस बात का प्रेक्षण करने में लगा है कि कुत्ते के मुँह में पानी कब आता है और कितना। यह बात वैज्ञानिक पद्धति की एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता का उदाहरण प्रस्तुत करती है जो तत्वमीमासकों और धर्मशास्त्रियों की पद्धतियों के विरुद्ध है। विज्ञान के क्षेत्र में काम करने वाला ऐसे तथ्यों की खोज में लगा रहता है जो इस दृष्टि से सार्थक होते हैं कि उनके आधार पर सामान्य नियमों की स्थापना की जा सकती है और इस प्रकार के तथ्य प्रायः अपने-आप में कतई मनोरंजक नहीं होते। किसी भी अवैज्ञानिक व्यक्ति को जब यह मालूम होता है कि किसी प्रसिद्ध प्रयोगशाला में क्या किया जा रहा है, तो उसकी पहली धारणा यही होती है कि शोध-कार्य में लगे हुए सभी व्यक्ति तुच्छ बातों पर अपना समय बर्बाद कर रहे हैं किन्तु बौद्धिक दृष्टि से नया प्रकाश देने वाले तथ्य प्रायः ऐसे ही होते हैं जो अपने आपमें तुच्छ होते हैं और जिनमें कुछ भी रोचक नहीं होता। यह बात पैवलाव के विशिष्ट शोधकार्य पर विशेष रूप से

१ २७ फरवरी, १९३६ को इनका देहान्त हो गया।

लागू होती है जैसे कुत्तों के मुह से लार आने के तथ्य पर। इस तथ्य का अध्ययन करके पवलाव ने सामान्य सिद्धान्तों की स्थापना की जो पशुओं के अधिकांश व्यवहार पर लागू होते हैं और जो मनुष्यों के व्यवहार का भी समान रूप से निरूपण करते हैं।

इस खोज की प्रक्रिया निम्नलिखित है—

सभी जानते हैं कि किसी रसीले पदार्थ को देखकर कुत्ते के मुह से पानी आ जाता है। पैवलाव ने कुत्ते के मुह में एक नली रख दी जिससे यह नापा जा सके कि उस पदार्थ को देखकर कुत्ते के मुह में आने वाले पानी की मात्रा कितनी है। जब मुह में खाना होता है तब लार का प्रवाह एक प्रतिवर्ती क्रिया होती है अर्थात् ऐसी स्थिति में लार का प्रवाह शरीर द्वारा स्वतःस्फूर्त क्रियाओं में से एक है। इस क्रिया पर अनुभव का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रतिवर्ती क्रियाएँ अनेक हैं कुछ तो बहुत अधिक विशिष्ट या निर्दिष्ट होती हैं और कुछ कम। इनमें से कुछ का अध्ययन नवजात शिशुओं में किया जा सकता है किन्तु कुछ क्रियाएँ विकास की बाद में आने वाली स्थितियों में ही उत्पन्न होती हैं। बच्चा छींकता है जम्हाई लेता है हाथ-पैर फैलाता है दूध चूसता है किसी चमकीले प्रकाश को देखकर उधर अपनी आँखें फेरता है और अन्य अनेक प्रकार की शारीरिक क्रियाएँ उपयुक्त अवसरों पर करता है और इन सबके लिए उसे किसी प्रकार के पूर्व ज्ञान की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस प्रकार की सभी क्रियाओं को प्रतिवर्ती क्रियाएँ कहा जाता है अथवा पवलाव की भाषा में इन्हें निरुपाधिक प्रतिवर्तन कहा जाता है। ऐसी क्रियाओं में वे सभी क्रिया-क्षेत्र आ जाते हैं जिन्हें पहले सहज प्रवृत्ति कहा जाता था। जटिल प्रवृत्तियाँ तो प्रतिवर्तनों की एक शृङ्खला से निर्मित प्रतीत होती हैं, जैसे चिड़ियों में घोंसला बनाने की प्रवृत्ति। निम्न स्तर के जीवों में अनुभव द्वारा प्रतिवर्तनों का संशोधन बहुत कम होता है पतंगा अपने पंख जल जाने के अनुभव के बाद भी आज तक लौ में कूद पड़ता है। किन्तु उच्च कोटि के जीवों में अनुभव का बहुत बड़ा प्रभाव प्रतिवर्तनों पर पड़ता है और यह बात मनुष्य पर बहुत अधिक लागू होती है। पैवलाव ने कुत्ते के लार-सम्बन्धी प्रतिवर्तनों पर अनुभव के प्रभाव का अध्ययन किया। इस विषय में आधारभूत नियम है सोपाधिक प्रतिवर्तनों का नियम। जब किसी निरुपाधिक प्रतिवर्तन के उद्दीपक के साथ अथवा उससे तुरन्त पहले बार-बार कोई दूसरा उद्दीपक आता है, तब कुछ समय बाद यह दूसरा उद्दीपक ही अकेला उस अनुक्रिया को उत्पन्न करने में समान रूप से सक्षम हो जाता है जो मूलतः निरुपाधिक प्रतिवर्तन के उद्दीपक द्वारा उत्पन्न हुई थी। मूलतः लार का प्रवाह तभी उत्पन्न होता है जब मुह में भोजन सचमुच मौजूद हो बाद में केवल भोजन के देखने पर और उसकी सुगन्ध मिलने पर ही मुह में लार पैदा हो जाती है अथवा किसी ऐसे साधन से

भी मुह मे लार पैदा हो जाती है जो नियमित रूप से खाना दिए जाने का सूचक बन गया हो। इसको हम सोपाधिक प्रतिवर्तन कहेंगे अनुक्रिया तो वही होती है जो निरुपाधिक प्रतिवर्तन मे होती है किन्तु उसका उद्दीपक बिल्कुल नया होता है जो अनुभव द्वारा मूल उद्दीपक से सम्बन्धित हो चुका होता है। सोपाधिक प्रतिवर्तन का यह नियम उस बात का आधार है जिसे पुराने मनोवैज्ञानिक 'विचार साहचर्य' कहते थे यही भाषा का, आदत का और प्राय प्रत्येक व्यवहारगत ऐसी चीज का आधार है जो अनुभव द्वारा सीखी जाती है।

इस मूलभूत नियम के आधार पर पवलाव ने प्रायोगिक ढग से, तमाम तरह की जटिलताएँ निर्मित की है। उन्होने केवल स्वादिष्ट भोजन का ही उद्दीपक रूप मे प्रयोग नही किया बल्कि अरुचिकर अम्लो का भी प्रयोग किया है ताकि स्वीकृति मूलक अनुक्रियाओ की ही भाँति परिहार-मूलक अनुक्रियाओ को भी उत्पन्न किया जा सके। एक प्रकार के प्रयोगो द्वारा सोपाधिक प्रतिवर्तन निर्मित कर लेने के बाद वह दूसरे प्रकार के प्रयोगो द्वारा उसका निरोध भी करा सकते हैं। यदि एक निश्चित संकेत के बाद कभी कभी सुखद परिणाम मिलें और कभी-कभी दुखद, तो अततः कुत्ते का तन्त्रिका भग हो जाना स्वाभाविक है। कुत्ता अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठता है अथवा उसका दिमाग श्रान्त और निष्क्रिय-सा हो जाता है और वह सचमुच एक विशिष्ट प्रकार का मानसिक रोगी हो जाता है। पैवलाव उसका इलाज उसे अपने बचपन की याद दिलाकर नही करते और न अपनी मा से अपने अपराधी भावावेग की स्वीकृति द्वारा ही उसका इलाज करते हैं बल्कि उसे आराम पहुचाकर और ब्रोमाइड देकर उसका इलाज करते हैं। उन्होने एक कहानी बताई है जिसका अध्ययन सभी शिक्षा शास्त्रियो को करना चाहिए। उनके पास एक कुत्ता था जिसे भोजन देने से पहले वे हमेशा तेज रोशनी का एक वृत्त दिखाया करते थे, और बिजली का झटका देने के पहले रोशनी का एक दीर्घ वृत्त दिखाया करते थे। परिणामतः कुत्ते ने वृत्त और दीर्घ वृत्त का भेद स्पष्टतः समझ लिया, वृत्त को देखकर उसे प्रसन्नता होती थी और दीर्घ वृत्त को देखते ही वह कुछ दुख के साथ उससे दूर हटता था। पवलाव ने फिर धीरे धीरे दीर्घ वृत्त की उत्केन्द्रता कम करनी शुरू की और उसे अधिकाधिक रूप मे वृत्त के समान बना दिया। काफी अरसे तक तो कुत्ता वृत्त और दीर्घ वृत्त के बीच स्पष्टतः करता रहा— जैसे जैसे दीर्घ वृत्त का आकार वृत्त के आकार के नजदीक आ गया वैसे वैसे अधिकाधिक सूक्ष्म विभेद करने की क्षमता भी कुत्ता रूप मे तेजी के साथ दिखाई दी। किन्तु जब हमने एक ऐसे दीर्घ वृत्त का योग किया जिसके दोनो अक्ष ८ ९ अनुपात मे थे अर्थात दीर्घ वृत्त लगभग वृत्त ही जाता था, तब सारी स्थिति बदल गई। एक नए ढग का सूक्ष्म विभेदीकरण

दिखाई दिया, जो दो या तीन सप्ताह तक रहा और बाद म न केवल अपने-आप गायब हो गया बल्कि पहले के विभेदीकरणो की क्षमता भी नष्ट हो गई जिनम सूक्ष्मता की मात्रा कम थी। जो कुत्ता पहले शांतिपूर्वक अपनी बच पर खडा रहता था वही अब बराबर सघर्ष करता था और भौंकता था। अब फिर नए सिरे स सारे विभेदीकरणो को समझना आवश्यक हो गया और मोटे मोटे विभेदीकरणो का समझाने म भी पहले की अपेक्षा कही अधिक समय लगाना पडा। अतिम विभेदीकरण की क्षमता उत्पन्न करने के प्रयत्न मे फिर उसी कहानी की पुनरावृत्ति हुई अथात सभी प्रकार के विभेदीकरणो की क्षमता गायब हो गई और कुत्ता फिर उसी उत्तेजित अवस्था म पहुँच गया।[१] मुझे आशका है कि इसी प्रकार की काय पद्धति स्कूलो म प्रचलित है और अनेक विद्यार्थियो की स्पष्ट मूखता का यही कारण भी है।

पैवलाव की राय म निद्रा भी तात्विक रूप म वही चीज है जिसे निरोधन कहते हैं तथ्यत वह विशिष्ट प्रकार का निरोधन होने के बजाय एक सामान्य निरोधन होता है। कुत्तो का जो अध्ययन उन्होने किया है उसके आधार पर पवलाव यह स्वीकार करते हैं कि प्रकृति या स्वभाव चार प्रकार का होता है पत्तिक प्रकृति, विषादी प्रकृति सुप्रत्याशी प्रकृति और कफ प्रधान प्रकृति। कफ प्रधान और सुप्रत्याशी प्रकृतियो को पवलाव स्वस्थ प्रकृतिया मानते हैं और विषादी तथा पित्त प्रधान प्रकृतियाँ उनके मतानुसार मानसिक अव्यवस्थाओ का कारण हो सकती है। अपने कुत्तो को उन्होने इन्ही चार प्रकारो में विभाजनीय पाया है और उनका विश्वास है कि मनुष्यो के सम्बन्ध मे भी यही बात सत्य है।

जिस अग के माध्यम से ज्ञान का अजन होता है उसे वल्कुट कहते हैं, और पवलाव का खयाल है कि वह वल्कुट का ही अध्ययन कर रहे हैं। वह क्रिया विज्ञान के अध्यता हैं मनोवज्ञानिक नही किन्तु उनका विचार है कि जानवरो के सम्बन्ध म उस प्रकार के मनोविज्ञान की कल्पना नही की जा सकती, जसा मनुष्यो का अध्ययन करते समय अन्तदशन से उपलब्ध होता है। ऐसा लगता है कि मनुष्यो के सम्बन्ध मे पवलाव उस हद तक आगे नही जाते जिस हद तक जान बी० वाटसन गए हैं। उनका कहना है, 'मनोविज्ञान का

१ दखिए इवान पेट्रोविच पैवलाव, एम० डी० की पुस्तक 'लक्चस ऑन कडीशण्ड रिफ्लक्सेज', पृष्ठ ३४२। रूसी भाषा से इस पुस्तक का अनुवाद श्री डब्ल्यू० हासले गैण्ट एम० डी०, बी० एस सी० ने किया और मार्टिन लारेंस लिमिटेड, लन्दन ने प्रकाशित किया है।

और भी देखिए आई० पी० पैवलाव द्वारा लिखित 'कण्डीशण्ड रिफ्लेक्सेज़ : एन इन्वेस्टीगेशन ऑफ दि फिजियालॉजिकल एक्टिविटी ऑफ दि सेरेब्रल कारटेक्स'। श्री जी० वी० एन रेप द्वारा अनूदित, ऑक्सफोर्ड १९२७।

सम्बन्ध जिस हद तक मनुष्य की आत्मनिष्ठ स्थिति से है, उस हद तक उसके अस्तित्व का एक प्राकृतिक अधिकार भी है क्योंकि हमारा आत्मनिष्ठ संसार ही वह वास्तविकता है जिसका सामना हम सबसे पहले करना होता है। किन्तु मानव मनोविज्ञान के अस्तित्व का अधिकार यद्यपि स्वीकार किया जाता है, फिर भी कोई कारण नहीं है कि पाशव मनोविज्ञान की आवश्यकता पर प्रश्न चिह्न क्यों न लगाया जाए।'[१] जहाँ तक पशुओं का सम्बन्ध है पैवलाव एक शुद्ध व्यवहारवादी है और इसका आधार यह है कि किसी पशु में चेतना है या नहीं इसका ज्ञान किसी को नहीं प्राप्त हो सकता। अथवा यदि पशुओं में चेतना है तो उसका स्वरूप क्या हो सकता है ? मनुष्यों के सम्बन्ध में भी सैद्धांतिक रूप से अंतर्दर्शी मनोविज्ञान की स्थिति स्वीकार करने पर भी पैवलाव जो कुछ कहते हैं उसका आधार सोपाधिक प्रतिवर्तनों का उनका अध्ययन ही है और यह स्पष्ट है कि शारीरिक व्यवहार के सम्बन्ध में वह पूर्णतः यांत्रिक स्थिति स्वीकार करते हैं।

इस बात को अस्वीकार करना कठिन है कि तंत्रिका ऊतक में होने वाली भौतिक रासायनिक प्रक्रियाओं के अध्ययन से ही हमें सम्पूर्ण तंत्रिका प्रपंच सम्बन्धी यथार्थ सिद्धांत की उपलब्धि हो सकती है और इस प्रक्रिया की अवस्थाओं से ही हम तांत्रिक क्रिया-कलाप की वाह्य अभिव्यक्तियों का, उनकी क्रमिक निरंतरता का और उनके अन्तसम्बन्धों का विश्लेषण मिल सकता है।[२]

नीचे लिखा हुआ उद्धरण मनोरंजक है, केवल इसलिए नहीं कि इस सम्बन्ध में पैवलाव की मान्यता पर इससे प्रकाश पड़ता है बल्कि इसलिए भी कि विज्ञान की प्रगति के आधार पर मानव जाति के सम्बन्ध में पैवलाव की आशावादी आशाएँ भी इससे स्पष्ट होती हैं

अपने काम की शुरुआत में, और उसके बाद भी लम्बे अरसे तक अपने विषय का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक व्याख्याओं द्वारा करने की आदत हम पर हावी रही। हर बार जब कभी वस्तुनिष्ठ शोध के मार्ग में कोई बाधा पड़ी अथवा जब कभी समस्या की जटिलता के कारण वस्तुनिष्ठ अनुसंधान रोक देना पड़ा तभी अपनी नई पद्धति के सम्बन्ध में स्वभावतः शंकाएं उत्पन्न हुई कि वह सही है या नहीं। धीरे धीरे शोध कार्य की प्रगति होने के साथ-साथ क्रमशः ये शंकाएँ उत्पन्न होने के अवसर कम होते गए और अब मेरा यह पूर्ण और अटल विश्वास है कि इसी मार्ग पर चलकर मानव मस्तिष्क मानव प्रकृति की आंतरिकता और उसके नियमों का ज्ञान प्राप्त कर सकेगा और

१ पूर्व-उल्लिखित, पृ० ३२८।
२ पूर्व उल्लिखित, पृष्ठ ३४८।

यही मनुष्य की सबसे बडी और जटिल समस्या है। यही एक माग है जिससे पूण, सत्य और स्थायी प्रसन्नता की प्राप्ति हो सकेगी। अपनी चतुर्दिक प्रकृति पर मानव मस्तिष्क निरन्तर विजय पर विजय प्राप्त करता जाए, मानव-जीवन और मानव-कायकलापा के लिए मानव मस्तिष्क न केवल पृथ्वी के धरातल को बल्कि सागरो की गहराइया मे लेकर वायुमण्डल के अन्तिम छोर और वाह्य अन्तरिक्ष तक जो कुछ भी है उस सबको अपने वशीभूत कर ले, अपनी सेवा के लिए अपार ऊर्जा का प्रवाह विश्व के एक भाग से दूसरे भाग तक सचालित करे, अपने विचारा के स्थानान्तरण के लिए देश गत दूरी समाप्त कर दे, किन्तु फिर भी यह सब कर सकने वाला मनुष्य ही युद्धा और क्रान्तिया की भयावह शक्तिया द्वारा सचालित होकर अपने लिए अपार भौतिक हानि और अकथनीय पीडाओ की सृष्टि करता है और फिर पाशव स्थितिया की ओर लौट जाता है। केवल विज्ञान—मानव प्रकृति के सम्बन्ध मे परिशुद्ध विज्ञान—और उसके प्रति सवसमग्र वैज्ञानिक पद्धति की सहायता से सत्यनिष्ठ उपागम ही मनुष्य को उसकी वतमान विपादपूर्ण स्थिति से मुक्ति दे सकता है और पारस्परिक मानव सम्बन्धों के क्षेत्र म उसकी वतमान लज्जाजनक स्थिति को समाप्त कर सकता है।[1]

तत्वमीमासा के क्षेत्र म पवलाव न तो भौतिकवादी हैं और न मनोवादी हैं। वे उसी विचार को मानते हैं जिसे मैं भी दृढ़तापूर्वक यथाथ मानता हूँ और वह यह है कि मस्तिष्क और पदाथ के बीच भेद करना एक भूल है और दोनो को ही यथाथ वास्तविकता मानना अथवा किसी को भी वास्तविकता न मानना समान रूप से न्याय सगत हो सकता है। उनका कहना है 'हम उस स्थिति म आ रहे हैं जब मस्तिष्क को, आत्मा को और पदाथ को एक ही समझा जाएगा, और इस दृष्टिकोण के स्वीकार कर लिए जाने पर इनके बीच वरीयता की कोई आवश्यकता ही न रह जाएगी।"

मनुष्य रूप म पवलाव म वही सरलता और वही नियमितता है जो पुराने जमाने के विद्वान पुरुषा म होती थी, जस इमेनुएल काट म। उन्होने एक शान्तिपूण पारिवारिक जीवन बिताया है और नियमित रूप से अपनी प्रयोगशाला म काम करते रहे हैं। क्रांति के दिना म एक बार उनका सहायक दस मिनट देर करके आया और क्रांति को ही देरी का कारण बताया। पैवलाव का उत्तर था—'जब प्रयोगशाला म तुम्हारा काम तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है तब क्रान्ति से इसम क्या अन्तर पडता है?' उनकी रचनाओ म रूस की कठिनाइयो का जिक्र केवल एक बार उस प्रसग म आया है जब अन्न की कमी के दिना म अपने जानवरा को खिलाने म उन्हे कुछ कठिनाई पडी थी। यद्यपि

[1] पूर्व उल्लिखित, पृष्ठ ४१।

उनका काम ऐसा है जिसके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि साम्यवादी दल के आधिकारिक तत्वमीमांसा शास्त्र का उससे समर्थन ही मिलता है फिर भी पैवलाव सोवियत सरकार के सम्बन्ध में बहुत ही आलोचनापूर्ण विचार रखते हैं और व्यक्तिगत रूप से तथा खुलेआम भी उसकी खरी आलोचना करते हैं। इसके बावजूद सरकार ने उनके साथ बहुत ही उदारतापूर्ण व्यवहार किया है और उनकी प्रयोगशाला के लिए आवश्यक प्रत्येक वस्तु उपलब्ध की है।

अपने सिद्धान्तों के प्रस्तुतीकरण में पैवलाव ने किसी भी प्रकार पूर्णता का प्रयत्न नहीं किया और यह तथ्य न्यूटन की अथवा डार्विन की भी, अभिवृत्ति की तुलना में वैज्ञानिकों की आधुनिक अभिवृत्ति की विशिष्टता प्रकट करता है। पैवलाव का कहना है, "पिछले बीस वर्षों के दौरान उपलब्ध परिणामों को मैंने कोई व्यवस्थित अभिव्यक्ति नहीं दी। इसका कारण यह है कि यह क्षेत्र बिल्कुल नया है और कार्य निरन्तर प्रगति करता गया है। जब प्रतिदिन नए प्रयोगों और प्रेक्षणों द्वारा नए तथ्यों की उपलब्धि हो रही थी तब यह कैसे सम्भव था कि मैं कार्य रोककर किसी व्यापक अवधारणा का प्रतिपादन करता, परिणामों को व्यवस्थित रूप देता?"[1] आजकल विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति की रफ्तार इतनी अधिक है कि न्यूटन के ग्रन्थ 'प्रिंसिपिआ' अथवा डार्विन की रचना 'ओरिजिन आफ स्पिशीज' जैसे ग्रन्थ की रचना की ही नहीं जा सकती। ऐसी पुस्तक समाप्त करने के पहले ही वह समय से पीछे पड़ जाएगी। यह तथ्य कई अर्थों में खेदजनक है क्योंकि पुराने जमाने के महान ग्रन्थों में एक विशिष्ट सौन्दर्य और विशालता होती थी जो हमारे जमाने की शीघ्र भगनेवाली रचनाओं में दिखाई नहीं देती, किन्तु ज्ञान की तीव्र अभिवृद्धि का यह एक अनिवार्य परिणाम है, और इसलिए इसे एक दार्शनिक दृष्टि से स्वीकार करना होगा।

यह तो विवादास्पद ही है कि पैवलाव की पद्धतियों का सम्पूर्ण मानव व्यवहार पर लागू किया जा सकता है या नहीं, पर यह तो निश्चित है कि मानव-व्यवहार के बहुत बड़े क्षेत्र पर ये लागू होती हैं और इस क्षेत्र की व्याप्ति में इन पद्धतियों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि मात्रामूलक शुद्धता के साथ वैज्ञानिक पद्धतियों को कैसे प्रयोग में लाया जाना चाहिए। पैवलाव ने यथातथ्य विज्ञान के लिए एक नया क्षेत्र जीता है और इसलिए उन्हें हमारे युग का एक महान पुरुष माना ही जाना चाहिए। जिस समस्या का सफलतापूर्वक समाधान पैवलाव ने प्रस्तुत किया है वह समस्या है जिसे अभी तक स्वेच्छाजन्य व्यवहार माना जाता था उसे वैज्ञानिक नियम के अधीन कैसे लाया जाए। एक ही जाति के दो प्राणियों की अथवा दो भिन्न अवसरों पर एक ही प्राणी की एक

१ पूर्व उल्लिखित, पृ० ४२।

ही उद्दीपन से उत्पन्न अनुक्रियाएँ भिन्न भिन्न हो सकती हैं। इस तथ्य से यह विचार उत्पन्न हुआ कि कोई ऐसी चीज है जिसे संकल्प या इच्छा कहा जाता है जो हम स्थितियों के प्रति अस्थिर और अनियमित ढंग से बिना किसी वैज्ञानिक नियमितता का पालन करते हुए अपनी अनुक्रिया को शक्ति देती है। सोपाधिक प्रतिवर्तन का अध्ययन करके पैवलॉव ने यह स्पष्ट कर दिया है कि जो व्यवहार किसी प्राणी की सहज प्रवृत्ति द्वारा निर्धारित नहीं है उसके भी अपने नियम हो सकते हैं और उसका भी उतना ही वैज्ञानिक अध्ययन विश्लेषण किया जा सकता है जितना निरुपाधिक प्रतिवर्तना द्वारा शासित व्यवहार का। जैसा कि प्रोफेसर हॉगबेन ने कहा है

'हमारी पीढ़ी में इतिहास में पहली बार पैवलॉव और उनके अनुयायियों के काम ने सफलतापूर्वक उस समस्या का समाधान प्रस्तुत किया है जिसे डा० हाल्डेन असाध्यवाद की भाषा में चेतन व्यवहार कहते हैं। इस अध्ययन ने ऐसे व्यवहार को उन स्थितियों के शोध का विषय बना दिया है जिनके अधीन नई प्रतिवर्तन-पद्धतियाँ उत्पन्न होती हैं।"[१]

जितना ही अधिक पैवलॉव की इस उपलब्धि का अध्ययन किया जाता है, उतना ही अधिक महत्वपूर्ण वह सिद्ध होती जा रही है और इसी कारण पैवलॉव को हमारे युग के महानतम व्यक्तियों में स्थान दिया जाना चाहिए।

१ लैंसलॉट हॉगबेन की पुस्तक, 'दि नेचर ऑफ लिविंग मैटर', १६३०, पृ० २५।

दूसरा अध्याय

वैज्ञानिक पद्धति की विशेषताएँ

वनानिक पद्धति का वणन अवसर किया जा चुका है और आज उसके सम्बध म कोई वहुत नई बात कहना सम्भव नही है। फिर भी यदि हम आग चलकर यह विचार करने मे सक्षम रहना चाहत हैं कि सामाय नान प्राप्त करने की और कोई दूसरी पद्धति है या नही, तो वनानिक पद्धति का विवचन कर लेना आवश्यक है।

किसी भी वनानिक नियम का निर्धारण करन मे तीन प्रमुख अवस्थाए पार करनी होती हैं पहली अवस्था है सार्थक तथ्या का प्रेक्षण, दूसरी अवस्था है एक ऐसी प्राक्कल्पना स्थापित करना जो यदि वह सही हो तो, इन तथ्यो का विश्लेषण प्रस्तुत कर सके तीसरी अवस्था है इस प्राक्कल्पना से ऐसे परिणामों का निगमन करना जो प्रेक्षण द्वारा जाचे परखे जा सक। यदि इन परिणामो का सत्यापन हो जाता है तो अस्थायी रूप से प्राक्कल्पना को सही मान लिया जाता है, यद्यपि आगे चलकर और अधिक तथ्या की खोज के परिणामस्वरूप प्राय उसका सशोधन आवश्यक होता है।

विज्ञान की वतमान स्थिति म कोई भी तथ्य और कोई भी प्राक्कल्पना एकाकी और असम्बद्ध नही है वैज्ञानिक ज्ञान की सामान्य परिधि के भीतर ही उनकी स्थिति है। किसी भी तथ्य की सार्थकता उपलब्ध ज्ञान सापेक्ष ही है। किसी भी तथ्य का विज्ञान के क्षेत्र म सार्थक कहने का अथ यह है कि वह या तो किसी सामान्य नियम की स्थापना करता है अथवा किसी सामान्य नियम का खण्डन करता है क्याकि यद्यपि विज्ञान का प्रारम्भ विशिष्ट के प्रेक्षण से होता है फिर भी तत्वत विज्ञान का सम्बध विशिष्ट से न होकर सामान्य स ही है। विज्ञान म कोई भी तथ्य एक तथ्य मात्र नही होता, बल्कि एक उदाहरण होता है। इस दृष्टि से वनानिक कलाकार से भिन्न होता है, क्याकि कलाकार यदि कभी तथ्या का देखने की कृपा करता भी है तो सम्भा वना यही है कि वह उन्ह उनकी सम्पूर्ण विशिष्टता म देखेगा। अपन चरम आदश क रूप म विज्ञान कुछ ऐसे प्रस्तावा या तक वाक्या का सकलन है जो ऊर्ध्वाधर क्रम म व्यवस्थित हैं निम्नतम प्रस्ताव विशिष्ट तथ्या से सम्बन्धित है और उच्चतम किसी सामान्य नियम स जो विश्व की हर चीज का नियमन

करता है। इस ऊर्ध्वाधर क्रम के विभिन्न स्तरों में परस्पर दोहरा सम्बन्ध है, एक ऊर्ध्वगामी और दूसरा अधोगामी और यह सम्बन्ध तर्क सगत है। ऊर्ध्वगामी सम्बन्ध का आधार है आगमन, और अधोगामी सम्बन्ध का आधार है निगमन। इसका अर्थ यह हुआ कि एक परिपूर्ण विज्ञान में हम नीचे लिखे ढंग से आगे बढ़ना चाहिए अ, ब, स, द, आदि विशिष्ट तथ्य हैं जो एक सम्भाव्य सामान्य नियम सुझाते हैं, यदि यह नियम सही हो तो ये सभी तथ्य उसके उदाहरण हैं। इसी प्रकार के कुछ अन्य तथ्य कोई दूसरा सामान्य नियम सुझाते हैं और कुछ दूसरे बाद तीसरा, चौथा आदि। ये सभी सामान्य नियम, आगमन पद्धति से, एक उच्च कोटि की सामान्यता का नियम स्थापित करते हैं और यदि वह सही हो तो ये सामान्य नियम उसके उदाहरण बन जाते हैं। प्रेक्षित विशिष्ट तथ्यों से अभी तक निर्धारित सर्वाधिक सामान्य नियम तक पहुँचने में इस प्रकार की अनेक अवस्थाएँ पार करनी होगी। इस सामान्य नियम से हम फिर तब तक निगमन पद्धति से आगे बढ़ते जाते हैं जब तक उन विशिष्ट तथ्यों तक नहीं पहुँच जाते जिनसे हमने निगमन प्रारम्भ किया था। पाठ्य-पुस्तकों में निगमन-पद्धति अपनाई जाएगी, किन्तु प्रयोगशाला में आगमनात्मक पद्धति।

इस पूर्णता के कुछ समीप पहुँचने वाला विज्ञान अभी तक केवल भौतिकी ही है। भौतिकी पर कुछ विचार करने से हम ऊपर दिए गए वैज्ञानिक पद्धति के भावसूक्ष्म विवरण को कुछ मूर्त रूप देने में सहायता मिल सकती है। जैसा कि हम देख चुके हैं गैलीलियो ने पृथ्वी के धरातल के समीप गिरते हुए पिण्डों के नियम की खोज की थी। उन्होंने यह खोज की थी कि वायु के प्रतिरोध के बावजूद गिरते हुए पिण्ड एक समान त्वरण से गिरते हैं और वह सबके लिए बराबर रहता है। अपेक्षाकृत रूप से बहुत थोड़े-से तथ्यों के आधार पर यह सामान्यीकरण निर्धारित किया गया था, अर्थात् उन गिरते हुए पिण्डों के उदाहरण के आधार पर जिनके गिरने के समय का प्रेक्षण गैलीलियो ने किया था। किन्तु बाद में इस प्रकार के कितने ही प्रयोग किए गए उन सबसे गैलीलियो के इस सामान्यीकरण की पुष्टि हुई। गैलीलियो द्वारा उपलब्ध परिणाम सामान्यता के कोटि क्रम में निम्नतम नियम था जो मात्र तथ्यों से इतना अधिक नजदीक था जितना कोई भी सामान्य नियम हो सकता था। इसी बीच केपलर ने ग्रहों की गति विधि का प्रेक्षण किया था और उनकी कक्षाओं के सम्बन्ध में अपने तीन नियम बनाए थे। ये नियम भी सामान्यता के कोटि क्रम में निम्नतम स्तर के थे। न्यूटन ने केपलर के नियमों को, गैलीलियो द्वारा प्रतिष्ठित गिरते पिण्डों के नियमों को और ज्वार भाटा के नियमों को तथा धूमकेतुओं की गति विधि के सम्बन्ध में जो कुछ ज्ञात था उस सबको एक ही नियम में समन्वित कर दिया, जिसका नाम है गुरुत्वाकर्षण का नियम, जिसने इन सब नियमों को समाहित

कर लिया । इससे भी अधिक इस नियम ने न केवल यह स्पष्ट कर दिया कि
ये सारे पूर्वगामी नियम क्या सही थे बल्कि यह भी स्पष्ट कर दिया कि
वे सब क्या पूर्णत सही नहीं थे, और एक सफल सामान्यीकरण के साथ प्राय
ऐसा ही होता है । पृथ्वी के धरातल के समीप पिण्ड पूर्णत एक समान त्वरण
के साथ नहीं गिरते जब वे धरती के समीप पहुँचते हैं तो त्वरण में थोड़ी सी
वृद्धि हो जाती है । ग्रह बिल्कुल दीर्घ वृत्तों में परिक्रमा नहीं करते, जब कभी वे
किसी दूसरे ग्रह के समीप पहुँचते हैं तब अपनी कक्षा से कुछ बाहर खिंच जाते
हैं । इस प्रकार न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का नियम पुराने सामान्यीकरणों का अति
क्रमण कर गया किन्तु यदि इन पुराने नियमों का आधार न होता तो गुरुत्वा
कर्षण के नियम की स्थापना शायद ही हो पाती । दो सौ वर्ष से अधिक समय
तक ऐसा कोई नया सामान्यीकरण नहीं उपलब्ध हो सका जो न्यूटन के गुरुत्वा
कर्षण नियम को समाहित कर लेता जैसे केपलर के नियमों को इस नियम ने
समाहित कर लिया था । और आखिरकार जब आइंस्टीन को एक ऐसे सामा
न्यीकरण की उपलब्धि हुई भी तो उसने गुरुत्वाकर्षण के नियम को एक अत्यन्त
अप्रत्याशित कोटि में रख दिया । यह देखकर सभी को आश्चर्य हुआ कि गुरुत्वा
कर्षण का नियम वास्तव में ज्यामिति का नियम है न कि पुराने अर्थों
भौतिकी का । जिस साध्य के साथ इसका सर्वाधिक सम्बन्ध है वह है पैथागो
की साध्य जिसका तात्पर्य यह है कि किसी समकोण त्रिभुज के कर्ण पर बनने
वाला वर्ग शेष दो छोटी भुजाओं पर बनने वाले वर्गों के बराबर होता है । हर
स्कूल विद्यार्थी इस साध्य की उपपत्ति सीख लेता है, किन्तु जिन लोगों ने
आइंस्टीन को पढ़ रखा है केवल वही इस साध्य को गलत सिद्ध करना सीख
पाते हैं । यूनानियों के लिए—और एक शती पहले तक आधुनिक युग के लोगों
के लिए भी—ज्यामिति एक निगमनाश्रित अध्ययन था जिसे आकारी तर्कशास्त्र,
प्रेक्षण पर आधारित अनुभवमूलक विज्ञान नहीं था । सन् १८२६ में लोबाचेव्स्की
ने इस विचार की असत्यता सिद्ध कर दी और यह दिखा दिया कि यूक्लिडीय
ज्यामिति की सत्यता केवल प्रेक्षण द्वारा ही सिद्ध की जा सकती है, तर्क द्वारा
नहीं । इस विचार ने यद्यपि शुद्ध गणित की महत्वपूर्ण नई शाखाओं को जन्म
दिया फिर भी सन् १९१५ तक—जब आइंस्टीन ने अपने सामान्य सापेक्षता
सिद्धान्त में इसे भी शामिल कर लिया—भौतिकी में इस सिद्धान्त का कोई
परिणाम नहीं निकला । अब तो ऐसा लगता है कि पैथागोरस की साध्य बिल्कुल
सत्य नहीं है, और जिस शुद्ध सत्य की ओर इस साध्य में पूर्व संकेत उपलब्ध है
उसमें गुरुत्वाकर्षण का नियम स्वयं ही उपादान अथवा परिणाम रूप में मौजूद
है । और फिर वास्तव में वह न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का नियम भी नहीं है
बल्कि एक ऐसा नियम है जिसके प्रेक्षणीय परिणाम कुछ थोड़े-से भिन्न हैं । जहाँ

आइन्सटीन का मतभेद न्यूटन से स्पष्टत दिखाई देता है, वहाँ न्यूटन के विरुद्ध आइन्सटीन ही का मत सही पाया गया है। आइन्सटीन का गुरुत्वाकर्षण नियम न्यूटन के नियम की अपेक्षा अधिक सामान्य है क्योंकि वह न केवल पदार्थ पर लागू होता है बल्कि प्रकाश पर और ऊर्जा के प्रत्येक प्रकार पर भी लागू होता है। आइन्सटीन के सामान्य गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त की उपलब्धि के लिए प्रारम्भिक पूर्वपीठिका के रूप में न केवल न्यूटन का सिद्धान्त आवश्यक था बल्कि विद्युत चुम्बकत्व का सिद्धान्त, क्वाटम विज्ञान, प्रकाश के दबाव का प्रेक्षण तथा सूक्ष्म ज्योतिषीय प्रेक्षण की भी आवश्यकता थी, जो बडी-बडी दूरबीनों और फोटोग्राफी की तकनीक की सफलता के कारण उपलब्ध हो सके हैं। इन प्रारम्भिक तैयारियों के बिना आइन्सटीन का सिद्धान्त न तो खोजा ही जा सकता था और न उसकी सत्यता सिद्ध व प्रमाणित की जा सकती थी। किन्तु जब इस सिद्धान्त को गणितीय रूप में प्रस्तुत किया जाता है तब हम गुरुत्वाकर्षण के सामान्यीकृत नियम से प्रारम्भ करते हैं और तर्कना के अन्त में उन सत्यापनीय परिणामों तक पहुँचते हैं जिनके आधार पर आगमनात्मक पद्धति से इस नियम की स्थापना की गई थी। निगमनात्मक पद्धति में शोध की कठिनाइयाँ दृष्टि से ओझल हो जाती हैं और जिस आगमन के परिणामस्वरूप महत्वपूर्ण आधार-वाक्य निर्धारित किए गए उसके लिए आवश्यक व्यापक प्रारम्भिक ज्ञान का अनुमान कर सकना भी कठिन हो जाता है। क्वाटम सिद्धान्त के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की घटना इसी तेज़ी से घटित हुई है जो सचमुच आश्चर्यजनक है। सन १६०० में पहले-पहल इस बात की खोज हुई कि कुछ ऐसे तथ्य हैं जिनके आधार पर किसी ऐसे सिद्धान्त की स्थापना आवश्यक है। और अब इस विषय का विवेचन एक नितान्त भावसूक्ष्म रूप में इस प्रकार किया जा सकता है जिसमें पाठक को शायद ही कभी इसका ध्यान भी आए कि इस विश्व की सत्ता भी है।

भौतिकी के सम्पूर्ण इतिहास में गलीलियो के ज़माने से लेकर आज तक, साधक तथ्य का महत्व बहुत ही स्पष्ट रहा है। किसी सिद्धान्त के विकास की किसी एक अवस्था में जो तथ्य साधक होते हैं, विकास की दूसरी अवस्था में साधक तथ्य उनसे बिलकुल भिन्न होते हैं। जब गलीलियो गिरते हुए पिण्डों के नियम की स्थापना कर रहे थे उस समय यह तथ्य अधिक महत्वपूर्ण था कि निर्वात में एक पंख और सीसे का एक पिण्ड दोनों समान तेज़ी से गिरेंगे, बनिस्बत इस तथ्य के कि हवा में पंख अधिक धीमी गति से गिरता है, क्योंकि गिरते हुए पिण्डों को समझने की दिशा में पहला कदम इस बात का अनुभव करना है कि जहाँ तक केवल पृथ्वी के आकर्षण का सम्बन्ध है, सभी गिरते हुए पिण्डों का त्वरण समान होता है। वायु के प्रतिरोध से उत्पन्न परिणाम को पृथ्वी के आकर्षण से भिन्न एक अतिरिक्त तथ्य समझना होगा। तात्विक बात

तो यह है कि हमेशा ऐसे तथ्यों की खोज करनी चाहिए जो किसी एक असम्बद्ध एकाकी नियम का निदर्शन करते हों, अथवा केवल ऐसे नियमों से सम्बद्ध किसी नियम का निदर्शन करते हों जिनके प्रभाव भली भांति मालूम हों। यही कारण है कि वैज्ञानिक खोज में प्रयोग इतनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। प्रयोग में परिस्थितियों को कृत्रिम रूप से सरल बना दिया जाता है ताकि किसी एक नियम का एकाकी-असम्बद्ध रूप में प्रेक्षण सम्भव हो सके। अधिकांश ठोस स्थितियों में वस्तुतः जो कुछ होता है उसकी व्याख्या के लिए तमाम प्राकृतिक नियमों की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु उन नियमों को क्रमशः एक एक करके खोजने के लिए प्रायः ऐसी परिस्थितियों की खोज करना जरूरी होता है जिनमें केवल एक ही नियम सम्बन्धित और प्रासंगिक हो। और फिर सर्वाधिक शिक्षाप्रद तत्व का प्रेक्षण बहुत कठिन हो सकता है। उदाहरण के लिए जरा सोचिए कि ऐक्स किरणों और रेडियो-सक्रियता की खोज से पदार्थ सम्बन्धी हमारा ज्ञान कितना बढ़ गया है फिर भी यदि अत्यन्त विस्तृत प्रायोगिक तकनीक न उपलब्ध होती तो ये दोनों ही हमारे लिए अज्ञात ही रह जाते। रेडियो सक्रियता की खोज तो फोटोग्राफी विज्ञान को पूर्ण बनाने की प्रक्रिया में हुई एक घटना का परिणाम है। बकरेल के पास फोटो की कुछ अत्यन्त सूक्ष्म ग्राही प्लेटें थीं जिनका वह उपयोग करना चाहता था किन्तु चूंकि मौसम खराब था इसलिए उसने इन प्लेटों को एक अंधेरी अल्मारी में रख दिया, जिसमें संयोगवश कुछ यूरेनियम भी रखा हुआ था। जब प्लेटें बाहर निकाली गईं तो देखा गया कि पूर्ण अंधकार होने पर भी प्लेटों में यूरेनियम का फोटो आ गया था। इस संयोग के कारण ही इस बात की खोज हो सकी कि यूरेनियम रेडियो ऐक्टिव है। संयोगवश आ गया यह फोटोग्राफ सार्थक तथ्य का एक दूसरा उदाहरण है।

भौतिकी के क्षेत्र से बाहर, निगमन का उपयोग बहुत कम होता है और इसके विपरीत प्रेक्षण का, और प्रेक्षण पर प्रत्यक्षतः आधारित नियमों का प्रयोग बहुत अधिक होता है। अपनी विषय वस्तु की सरलता के कारण अन्य किसी विज्ञान की अपेक्षा भौतिकी एक उच्च स्तर पर पहुँच चुकी है। इस बात में तो जहाँ तक मैं समझता हूँ, कोई सन्देह नहीं किया जा सकता कि सभी विज्ञानों का आदर्श एक ही है किन्तु इस बात में तो सन्देह किया जा सकता है कि मानव क्षमता कभी भी शरीर क्रिया विज्ञान को उदाहरण के लिए उतना पूर्ण निगमनात्मक शास्त्र बना सकेगी जितना पूर्ण सैद्धान्तिक भौतिकी आदि हैं। शुद्ध भौतिकी में भी परिकलन की कठिनाइयाँ बहुत जल्दी ही साथ असाध्य हो जाती हैं। न्यूटनीय गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त में यह परिकलन असम्भव था कि तीन पिण्ड अपने पारस्परिक आकर्षण के अधीन कैसे गतिशील होंगे, इसका अपवाद केवल वही स्थिति थी जब उनमें से एक पिण्ड शेष दो की अपेक्षा बहुत अधिक बड़ा

है, और उसमें भी सैद्धांतिक परिशुद्धता के साथ यह परिकलन असम्भव है कि हो। आइंसटीन का सिद्धान्त न्यूटन के सिद्धान्त की अपेक्षा बहुत अधिक जटिल केवल दो पिण्ड भी अपने पारस्परिक आकर्षण के अधीन किस प्रकार गतिशील होंगे, यद्यपि व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए काफी अच्छा परिकलन सम्भव है। भौतिकी के लिए यह सौभाग्य की बात है कि औसत निकालने की पद्धतियाँ उपलब्ध हैं जिनके द्वारा बड़े-बड़े पिण्डों के व्यवहार का परिकलन शुद्ध सत्य से काफी निकट सीमा तक किया जा सकता है, यद्यपि पूर्णतः परिशुद्ध सिद्धान्त मानवीय शक्तियों से नितान्त परे है।

यद्यपि यह एक विरोधाभास मालूम हो सकता है, फिर भी सम्पूर्ण यथार्थ विज्ञान सन्निकटन के विचार से अभिभूत है। जब कभी कोई व्यक्ति आपसे यह कहता है कि किसी भी वस्तु या तथ्य के सम्बन्ध में वह यथार्थ सत्य जानता है, तो आपका यह अनुमान कर लेना बिल्कुल निरापद होगा कि वह एक अयथार्थवादी मनुष्य है। विज्ञान में सावधानीपूर्वक किए गए प्रत्येक परिमापन में सम्भाव्य भूल की स्थिति सर्वदा स्वीकार की जाती है। यह 'सम्भाव्य भूल' एक तकनीकी शब्द है जिसका अपना एक शुद्ध स्पष्ट अर्थ होता है। इसका अर्थ है भूल की वह मात्रा जिसका वास्तविक भूल से अधिक होना उतना ही सम्भव है, जितना सम्भव उससे कम होना है। जिन विषयों में कुछ विशिष्ट रूप से परिशुद्ध ज्ञान उपलब्ध है उनकी एक यह विशेषता है कि उनके सम्बन्ध में प्रत्येक प्रेक्षणकर्ता यह स्वीकार कर लेता है कि सम्भव है वह गलती कर रहा हो, और यह भी जानता है कि लगभग कितनी गलती वह कर रहा होगा।[1] जिन मामलों में सत्य का निर्धारण सम्भव नहीं

[1] जहाँ कहीं भी सावधानीपूर्वक परिमापन सम्भव है, वहाँ विज्ञान के क्षेत्र में काम करने वाले लोगों की सतर्क अभिवृत्ति का नमूना नीचे लिखे उद्धरण में मिल जाता है जो 'नेचर' (७ फरवरी १९३१) से लिया गया है

ग्रहण का घूर्णन काल—इस अवधि में किए गए दो सर्वाधिक विश्वसनीय निर्धारण हैं—प्रोफेसर लावेल और स्लाइफर द्वारा सन १९३१ में किया गया निर्धारण और श्री एल० कैम्पबेल द्वारा सन १९१७ में किया गया निर्धारण। इनमें से पहला निर्धारण स्पेक्ट्रमी थी और दूसरा निर्धारण प्रकाशीय विभिन्नता द्वारा उपलब्ध हुआ था। परिणाम व्यावहारिक दृष्टि से समरूप ही थे, क्रमशः दस घण्टे पचास मिनट और दस घण्टे उनचास मिनट। किन्तु आगे और अधिक खोज करने के लिए फिर भी काफी गुंजाइश समझी गई थी, क्योंकि स्पेक्ट्रमी पद्धति में निर्दिष्ट सम्भाव्य भूल सत्रह मिनट की थी। और अन्य विभिन्न प्रेक्षकों द्वारा प्रकाशीय विभिन्नता की पुष्टि नहीं हो सकी थी। फिर भी हो सकता है कि यह भूल अन्य की अवनति के कारण हुई हो। दिसम्बर महीने के (Pub Ast Soc Pac) पत्र में मन्जी मूर और मैंजिल द्वारा किए गए एक नए स्पेक्ट्रमी निर्धारण का विवरण दिया गया है। इन्होंने लावेल और स्लाइफर की अपेक्षा अधिक उच्चकोटि के परिक्षेपण का प्रयोग किया, इसके अलावा वरुण का विषुवद्वृत्त ... इन लोगों द्वारा मापा गया माध्य दस घण्टे पचास मिनट ... के अधिक समीप है।

थी बोर का सिद्धान्त प्रगति के मार्ग में एक आवश्यक पड़ाव था, फिर भी वस्तुत अब उसे त्यागा जा चुका है। सच्चाई तो यह है कि पर्याप्त भावसूक्ष्म प्राक्कल्पनाएँ निर्धारित कर सकना मनुष्य के लिए सम्भव नहीं है कल्पना हमेशा तर्क के क्षेत्र में दखल देती है और उसी के कारण लोग ऐसी घटनाओं के मानस चित्र खींच लेते हैं जिन्हें देखा जा सकना तत्वतः असम्भव है। उदाहरण के लिए, अणु-सम्बन्धी श्री बोर के सिद्धान्त में एक अत्यन्त भावसूक्ष्म घटक था जिसका सत्य होना बहुत सम्भव था किन्तु यह भावसूक्ष्म तत्व ऐसे कल्पना मूलक विवरणों में गुंथा हुआ था जिसका कोई आगमनात्मक औचित्य या आधार नहीं था। हम उसी विश्व के मानस चित्र बना सकते हैं जिसे हम देखते हैं, किन्तु भौतिकी का विश्व एक भावसूक्ष्म विश्व है जो देखा नहीं जा सकता। इसी कारण किसी ऐसी प्राक्कल्पना को भी निश्चित रूप से सत्य नहीं माना जा सकता जिसमें सम्पूर्ण ज्ञात प्रासंगिक तथ्यों का सूक्ष्मतम परिशुद्ध विश्लेषण उपलब्ध हो, क्योंकि प्रेक्षणीय तत्वों के सम्बन्ध में उस प्राक्कल्पना से निर्धारित किए जानेवाले निगमनों के लिए तर्कसंगत ढंग से उसका कोई अत्यन्त भावसूक्ष्म पहलू ही सम्भवत आवश्यक होता है।

सम्पूर्ण वैज्ञानिक नियमों का आधार आगमन होता है, जिस पर यदि तात्विक ढंग से विचार किया जाए तो वह एक सन्देहास्पद और किसी भी निश्चय के निर्धारण में उत्तम पद्धति सिद्ध होती है। मोटे तौर से आगमनात्मक तर्क कुछ इस प्रकार का होता है यदि कोई प्राक्कल्पना सत्य है तो अमुक-अमुक प्रकार के तथ्य प्रेक्षणीय होंगे अब चूंकि वे तथ्य प्रेक्षणीय पाए गए हैं, इसलिए प्राक्कल्पना सम्भवत सत्य है। इस प्रकार के तर्क में परिस्थितियों के अनुसार भिन्न भिन्न कोटि में प्रामाण्यता सम्भव होगी। यदि यह सिद्ध किया जा सके कि प्रेक्षित तथ्यों के साथ अन्य किसी प्रकार की प्राक्कल्पना की सगति नहीं बैठती तो हम एक निश्चय पर पहुँच सकते हैं किन्तु ऐसा शायद कभी सम्भव नहीं है। सामान्य रूप से सम्पूर्ण सम्भाव्य प्राक्कल्पनाओं को सोच लेने का कोई तरीका नहीं है, अथवा यदि ऐसा तरीका है भी तो एक से अधिक प्राक्कल्पनाएँ लिए गए तथ्यों के साथ सगत पाई जाएँगी। ऐसी सूरत में वैज्ञानिक सबसे सरल प्राक्कल्पना को एक व्यावहारिक प्राक्कल्पना के रूप में स्वीकार कर लेता है, अधिक जटिल प्राक्कल्पनाओं की ओर वह तभी मुड़ता है जब नए तथ्यों द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि सबसे सरल प्राक्कल्पना अपर्याप्त है। अगर आपने बिना पूँछ वाली बिल्ली कभी न देखी हो तो इस तथ्य का विवरण देने वाली सबसे सरल प्राक्कल्पना यह होगी 'सभी बिल्लियाँ के पूछ होती है।' किन्तु जिस दिन पहले पहल आप बिना पूछ वाली बिल्ली देख लेंगे उस दिन आप एक अधिक जटिल प्राक्कल्पना स्वीकार करने के लिए मजबूर हो जाएंगे। जो व्यक्ति

यह तर्क करता है कि चूंकि जितनी भी बिल्लियाँ उसने देखी हैं उन सबके पूँछें हैं इसलिए सभी बिल्लियों के पूँछें होती हैं—वह व्यक्ति उस पद्धति का प्रयोग करता है जिसे 'सरल गणना द्वारा आगमन' कहा जाता है। तर्क की यह पद्धति बहुत ही खतरनाक है। अपने अच्छे रूपों में आगमन इस तथ्य पर आधारित है कि हमारी प्राक्कल्पना ऐसे परिणामों को प्रतिष्ठित करती है जो सत्य सिद्ध होते हैं, किन्तु जो, यदि उनका प्रेक्षण न किया गया हो तो, बहुत ही असम्भाव्य मालूम होंगे। यदि आपकी भेंट किसी ऐसे आदमी से हो जिसके पास पासों की एक ऐसी जोड़ी हो जिसमें हमेशा बारह पड़ते हों तो सम्भव है इसका कारण उस व्यक्ति का भाग्यशाली होना हो, किन्तु एक दूसरी प्राक्कल्पना भी है जो प्रेक्षित तथ्यों को इतना आश्चर्यजनक नहीं रहने देती। इसलिए अच्छा यही होगा कि आप इस दूसरी प्राक्कल्पना को अपनाएँ। उत्तम कोटि के सभी आगमनों में प्राक्कल्पना द्वारा जिन तथ्यों का कारण प्रस्तुत किया जाता है वे पूर्वत असम्भाव्य होते हैं और तथ्य जितने ही अधिक असम्भाव्य होंगे, उनका कारण प्रस्तुत करने वाली प्राक्कल्पना उतनी ही अधिक सम्भाव्य हो जाएगी। जैसा हम पहले कह चुके हैं, परिमापन का यही लाभ है। यदि किसी आकार वाली चीज का आकार ठीक वैसा ही पाया जाता है जैसा आपकी प्राक्कल्पना में उसे स्थापित किया गया है, तो आप महसूस करेंगे कि आपकी प्राक्कल्पना में कुछ-न-कुछ सत्य अवश्य है। सामान्य बुद्धि से तो यह बात बिल्कुल स्पष्ट है, किन्तु तर्क के क्षेत्र में इसमें कुछ कठिनाइयाँ पैदा हो जाती हैं। किन्तु इस बात पर अगले अध्याय से पहले हम अभी विचार नहीं करेंगे।

वैज्ञानिक पद्धति की एक विशिष्टता अभी शेष है जिसके सम्बन्ध में कुछ चर्चा अवश्य करनी चाहिए। यह विशेषता है विश्लेषण की। सामान्यत वैज्ञानिकों द्वारा यह कल्पना कर ली जाती है, कम-से-कम एक कामचलाऊ प्राक्कल्पना के रूप में, कि वस्तुत घटित होने वाली कोई भी यथार्थ घटना कई एक कारणों का परिणाम होती है जिनमें से प्रत्येक कारण यदि अलग अलग होता तो घटित घटना से कुछ भिन्न ही परिणाम निकलते। वह यह भी मान लेते हैं कि पृथक्-पृथक् कारणों के परिणामों प्रभावों को जान लेने पर ही सम्यक् परिणाम का परिकलन किया जा सकता है। इसके सरलतम उदाहरण यान्त्रिकी में पाए जाते हैं। चन्द्रमा पर पृथ्वी और सूर्य दोनों के ही आकर्षण का प्रभाव पड़ता है। यदि केवल पृथ्वी का ही आकर्षण सक्रिय होता तो चन्द्रमा की कक्षा कुछ और ही होती, और यदि केवल सूर्य का ही आकर्षण काम करता तो उसकी कक्षा कुछ दूसरी ही होती किन्तु चन्द्रमा की वास्तविक कक्षा का परिकलन तभी सम्भव हो पाता है जब हम पृथ्वी और सूर्य दोनों के आकर्षणों द्वारा उत्पन्न प्रभावों को जान लेते हैं। जब हम यह मालूम हो जाता है कि पिण्ड निर्वात में कैसे गिरते हैं, और

जब वायु के प्रतिरोध का नियम भी हम मालूम हो जाता है तब हम यह परिकलन कर सकते है कि हवा म पिण्ड कसे गिरेंग। यह सिद्धान्त विज्ञान की क्रिया विधि के लिए कुछ अशा म अनिवाय है कि फुटकर नमित्तिक नियमा को इस प्रकार अलग अलग किया जा सकता है और फिर उन्हे एक म सयुक्त किया जा सकना है क्योकि हर बात का एक साथ विचार कर सकना अथवा फुटकर नमित्तिक नियमा का निर्धारण कर सकना, तब तक असम्भव है जब तक उन्ह एक एक करके पृथक न किया जा सके। फिर भी यह तो कहना ही पडेगा कि यह पूवानुमान कर लेने का कोई कारण नही है कि दो कारणो के पृथक पृथक सक्रिय होने से उत्पन्न परिणामा प्रभावा के आधार पर उस परिणाम प्रभाव का परिकलन किया जा सकेगा जो उनके एक साथ सक्रिय होने पर उत्पन्न होगा और आधुनिकतम भौतिकी म यह सिद्ध हो गया है कि इस सिद्धान्त म उतनी सत्यता नहीं है जितनी पहले मानी जाती थी।[1] उपयुक्त परिस्थितिया के लिए यह एक व्यावहारिक और निकट सत्य सिद्धान्त अवश्य है किन्तु इसे इस विश्व का सामान्य गुणधम नही माना जा सकता। इसम सन्देह नही कि जहा कही यह सिद्धान्त असफल हो जाता है वहा विज्ञान का काय बहुत कठिन हो जाता है किन्तु अभी जहा तक दृष्टि जाती है, इसम सत्य की इतनी पयाप्त मात्रा अवश्य पाई जाती है कि एक प्राक्कल्पना के रूप म इसका प्रयोग किया जा सके। अत्यधिक उच्च स्तर के और सूक्ष्म परिकलना म बशक इसका उपयोग नही किया जा सकता।

---

१ उदाहरण के लिए देखिए, डिरैक की पुस्तक, 'दि प्रिंसिपुल्स ऑफ क्वन्टम मेकैनिक्स', पृष्ठ १३०।

तीसरा अध्याय

वैज्ञानिक पद्धति की परिसीमाएं

जो कुछ भी ज्ञान हमें प्राप्त है वह या तो विशिष्ट तथ्यों का ज्ञान है अथवा वैज्ञानिक ज्ञान है। एक अर्थ में इतिहास और भूगोल के विवरण विज्ञान के क्षेत्र से बाहर हैं। कहने का मतलब यह है कि विज्ञान में उनकी पूर्व कल्पना कर ली गई और उन्हीं के आधार पर विज्ञान का ढांचा खड़ा किया गया है। एक पार-पत्र में जिस प्रकार की सूचनाएं मांगी जाती हैं जैसे नाम, जन्म तिथि, पितामह की आंखों का रंग आदि वे सब ठोस तथ्य हैं। सीज़र और नेपोलियन का विगत अस्तित्व, धरती और सूर्य तथा अन्य आकाशीय पिण्डों का वर्तमान अस्तित्व भी इसी प्रकार के ठोस तथ्य माने जा सकते हैं। मतलब यह है कि हममें से अधिकांश लोग इन्हें ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लेते हैं किन्तु शुद्ध अर्थों में इन सभी तथ्यों में ऐसे अनुमान निहित हैं जो सत्य हो भी सकते हैं और नहीं भी। इतिहास पढ़ने वाला कोई विद्यार्थी यदि नेपोलियन के अस्तित्व पर विश्वास करने से इन्कार कर दे तो शायद उसे सजा दी जाएगी और एक परानुभवप्रामाण्यवादी के लिए यही तथ्य इस बात का पर्याप्त प्रमाण हो जाएगा कि नेपोलियन जैसा कोई आदमी वास्तव में था। किन्तु यदि विद्यार्थी इस प्रकार के प्रामाण्य को मानने वाला न हो, तो वह यही सोचेगा कि यदि उसके अध्यापक के पास नेपोलियन के अस्तित्व में विश्वास करने का कोई उपयुक्त कारण होता तो वह कारण स्पष्ट कर दिया गया होता। मेरा विश्वास है कि इतिहास के बहुत कम ऐसे अध्यापक होंगे जो यह सिद्ध करने के लिए कोई अच्छा प्रभावपूर्ण तर्क दे सकें कि नेपोलियन वास्तव में एक पौराणिक कल्पना मात्र नहीं था। मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि ऐसे तर्क हैं ही नहीं, मैं केवल यह स्पष्ट कर रहा हूं कि अधिकांश लोगों को ऐसे तर्कों का ज्ञान ही नहीं है। स्पष्ट है कि यदि अपने अनुभव से बाहर की किसी बात पर आप विश्वास करने जा रहे हैं, तो उस पर विश्वास करने के लिए कोई-न-कोई कारण होना चाहिए। प्रायः यह कारण केवल आप्तत्व होता है। जब कैम्ब्रिज में पहले-पहल प्रयोगशालाएं स्थापित करने का प्रस्ताव किया गया तब गणितज्ञ टाड्हंटर ने यह आपत्ति उठाई थी कि विद्यार्थियों द्वारा प्रयोग की प्रक्रियाएं देखना अनावश्यक है क्योंकि प्रयोगों से निकलने वाले परिणामों को अध्यापकों द्वारा ही प्रमाणित किया जा सकता है जिनमें से प्रायः सभी उच्चतम

चरित्र वाले व्यक्ति हैं और अधिकांश इंग्लैंड के चर्च के पादरी हैं। टाइट्लर के विचार से आप्त अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत तर्क ही पर्याप्त होना चाहिए, किन्तु हम सभी जानते हैं कि कितने अधिक अवसरों पर आप्त अधिकारी गलत सिद्ध हो चुके हैं। यह सही है कि हममें से अधिकांश लोगों को अपने अधिकांश ज्ञान के लिए अनिवार्यतः आप्त अधिकारियों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। ह्वान अंतरीप के अस्तित्व को आप्तत्व के प्रमाण पर ही हम स्वीकार कर लेते हैं और स्पष्टतः यह असम्भव है कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति भूगोल के तथ्यों का सत्यापन कर सके, किन्तु यह आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है कि सत्यापन के अवसर और उसकी सुविधा होनी चाहिए और यह भी स्वीकार किया जाना चाहिए कि कभी-कभी सत्यापन आवश्यक होता है।

हम इतिहास की ओर लौटें—जैसे जैसे हम अतीत युगों की ओर बढ़ते हैं वैसे वैसे संदेह की मात्रा बढ़ती जाती है। क्या पयागोरस नाम का व्यक्ति सचमुच था? शायद रहा होगा। क्या रोमोल्स था? शायद नहीं। क्या रेमस था? निश्चय ही नहीं। किन्तु नेपोलियन के अस्तित्व और रोमोल्स के अस्तित्व के प्रमाणों के बीच केवल मात्रा का ही अन्तर है। शुद्ध अर्थों में न तो नेपोलियन के अस्तित्व को और न रोमोल्स के अस्तित्व को एक अनिवार्य तथ्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि दो में से कोई भी हमारे प्रत्यक्ष अनुभव में नहीं आता।

क्या सूर्य का अस्तित्व है? अधिकांश लोग कहेंगे कि सूर्य तो हमारे प्रत्यक्ष अनुभव में आता है यद्यपि नेपोलियन उस अर्थ में हमारे प्रत्यक्ष अनुभव में नहीं आता किन्तु ऐसा सोचने में वे भूल ही करते हैं। सूर्य की दूरी हमसे दिशा-मूलक दूरी है और नेपोलियन की दूरी काल-मूलक दूरी है। नेपोलियन की भाँति ही सूर्य का ज्ञान भी हमें उसके प्रभावों द्वारा ही होता है। लोग कहते हैं कि वे सूर्य को देखते हैं किन्तु इसका अर्थ केवल यही है कि हमारे और सूर्य के बीच में जो नौ करोड़ तीस लाख मील की दूरी है उसे पार करके कोई चीज हमारे पास तक आती है और हमारे दृष्टिपटल पर, हमारी दृक् तंत्रिका पर और हमारे मस्तिष्क पर एक प्रभाव डालती है। यह प्रभाव जो हमारे ऊपर उस स्थान पर पड़ता है जहाँ कहीं हम होते हैं निश्चित रूप से उस सूर्य के साथ एकरूप नहीं माना जा सकता जो ज्योतिर्विदों की भाषा में सूर्य है। सच तो यह है कि यही प्रभाव अन्य उपायों द्वारा भी उत्पन्न किया जा सकता है। सिद्धान्ततः पिघली हुई धातु का जलता हुआ गोला ऊपर आकाश में एक ऐसी स्थिति में लटकाया जा सकता है जो किसी प्रेक्षक को ठीक सूर्य जैसा मालूम हो। प्रेक्षक के ऊपर पड़ने वाला यह प्रभाव सूर्य द्वारा उत्पन्न होने वाले प्रभाव से अभेदनीय—नितान्त एकरूप—बनाया जा सकता है। इसलिए सूर्य भी, हम जो

कुछ देखते है उसके आधार पर निकाला हुआ एक अनुमान ही है और वस्तुत ज्योति का वह पिण्ड नही है जिसका हम तुरत आभास होता है।

यह तथ्य विज्ञान की प्रगति का ही सूचक है कि स्वीकृत आधारभूत तथ्य रूप मे पाई जाने वाली बाता की सख्या कम होती जा रही है और अधिकाधिक बातें अनुमान पर आधारित सिद्ध हो रही है। बेशक अनुमान जान बूझकर नही किए गए हाँ जो लोग दार्शनिक सशयवाद म दीक्षित हो चुके है उनकी बात दूसरी है। फिर भी ऐसा नही समझना चाहिए कि अनायास किए गए अनुमान का मान्य होना आवश्यक ही है। शीशे के सामने आन पर बच्चे सोचते हैं कि शीशे के दूसरी ओर कोई दूसरा बच्चा है, और यद्यपि उनका यह निष्कर्ष तार्किक प्रक्रिया द्वारा नही निर्धारित होता, फिर भी निष्कर्ष गलत तो होता ही है। हमारे तमाम अनायास उपलब्ध अनुमान वस्तुत शैशवावस्था मे अर्जित किए गए सोपाधिक प्रतिवर्तन ही होते हैं और तार्किक ढग से परखे जाने पर उनकी यथार्थता अत्यन्त सन्देहास्पद सिद्ध होती है। अपनी ही आवश्यकताओ से विवश होकर भौतिकी को इन निराधार पूर्वाग्रहो मे से कुछ पर विचार करना पडा है। एक सीधा सादा आदमी तो यह सोचता है कि पदार्थ ठोस होता है लेकिन भौतिकी का विद्वान तो यही सोचता है कि पदार्थ तो शून्य या अवस्तुता म तरगित एक प्रायिकता-तरग है। सक्षेप म वह तो किसी स्थानगत पदार्थ की परिभाषा यह की जा सकती है—उस स्थान पर कोई भूत दिखाई पडने की सम्भावना है। पर इस समय मैं इन तत्वमीमासीय विवेचनो से अभी नही उलझना चाहता, इस समय हमारा सम्बन्ध वैज्ञानिक पद्धति के लक्षणो से है जिनके कारण इन विवेचनो की आवश्यकता पदा हुई। पिछले कुछ वर्षों म वैज्ञानिक पद्धति की परिसीमाएँ जितना अधिक स्पष्ट हुई है उतना पहले कभी नही हुई थी। भौतिकी के क्षेत्र म य परिसीमाएँ सबसे अधिक स्पष्ट हुई हैं और भौतिकी सभी विज्ञानो स अधिक प्रगतिशील है अन्य विज्ञानो पर तो अभी तक इन परिसीमाओ का कोई भी प्रभाव नही पडा है। फिर भी, चूकि प्रत्येक विज्ञान का सैद्धान्तिक लक्ष्य भौतिकी म विलीन हो जाना ही है इसलिए भौतिकी के क्षेत्र म जो शकाएँ और जो कठिनाइयाँ स्पष्ट हो चुकी हैं उनको यदि सामान्य रूप से सम्पूर्ण विज्ञान पर हम लागू करें तो शायद गलत नही होगा।

वैज्ञानिक पद्धति की परिसीमाओ को तीन वर्गों म सकलित किया जा सकता है—(१) आगमन की मान्यता-सम्बन्धी सशय (२) अनुभूत के आधार पर अननुभूत के सम्बन्ध म अनुमिति के निर्धारण म कठिनाई और (३) यह तथ्य कि अननुभूत के सम्बन्ध म अनुमिति की सम्भाव्यता स्वीकार कर लें तो भी ऐसा अनुमान अत्यत भावसूक्ष्म होगा और इसलिए उससे उतनी जानकारी नही प्राप्त हो सकती जितनी सामान्य भाषा का प्रयोग करने पर उसम प्राप्त होनी

जान पडती है।

(१) आगमन—अन्तिम रूप मे सभी आगमनात्मक तर्क निम्नलिखित सूत्र मे समाहित हो जाते हैं—'यदि यह सत्य है, तो वह सत्य है अब चूंकि वह सत्य है इसलिए यह भी सत्य है।" इसमे सन्देह नही कि यह तर्क सदोष है। मान लीजिए मैं यह कहता हूं, "अगर रोटी एक पत्थर है और पत्थर पोषक होते है तो यह रोटी मेरा पोषण करेगी, चूंकि यह रोटी मेरा पोषण करती ही है, इसलिए यह एक पत्थर है और पत्थर पोषक होते है।' यदि मैं ऐसा तर्क पेश करूँ तो निश्चय ही मुझे मूर्ख समझा जाना चाहिए फिर भी जिन तर्कों पर सम्पूर्ण वैज्ञानिक नियम आधारित हैं उनसे इस तर्क मे कोई मौलिक भेद न होगा। विज्ञान के क्षेत्र मे हम हमेशा यह तर्क करते हैं कि चूंकि प्रेक्षित तथ्य कुछ निश्चित नियमो के अनुवर्ती हैं इसलिए उसी क्षेत्र के अन्य तथ्य भी उन्ही नियमो के अनुवर्ती होगे। बाद मे हम इसकी परख या इसका सत्यापन एक सीमित या व्यापक क्षेत्र मे कर सकते हैं, लेकिन इसका व्यावहारिक महत्व तो हमेशा उन्ही क्षेत्रो के सम्बन्ध मे रहता है जिनकी जाँच-परख न की जा सकी हो। उदाहरण के लिए हमने स्थैतिकी के नियमो का सत्यापन असख्य मामलो मे कर लिया है और अब उन नियमो का प्रयोग हम एक पुल बनाने मे करते है लेकिन पुल के सम्बन्ध मे इन नियमो का सत्यापन तब तक नही हो पाता जब तक पुल बनकर खडा नही हो जाता। इन नियमो का महत्व तो इस बात मे है कि पुल के बन कर खडे होने से पहले ही इस बात की भविष्यवाणी करने की शक्ति हम इन नियमो से मिलती है कि पुल टिकाऊ होगा। यह समझ सकना तो आसान है कि हम ऐसा क्यो सोचते है कि पुल टिकाऊ होगा, यह तो पवलाव के सोपाधिक प्रतिवर्तना का एक उदाहरण मात्र है जिनके कारण हम उन सयोजना की आशा करते हैं जिनकी अनुभूति पहले हम प्राय हो चुकी होती है। किन्तु यदि आपको रेल पर कोई पुल पार करना पडे तो केवल यह जानकर आपको कोई सात्वना न मिलेगी कि इजीनियर की नजरो मे यह पुल भी एक अच्छा पुल है। महत्व पूर्ण बात तो यह है कि पुल सचमुच अच्छा होना चाहिए, और इसके लिए यह जरूरी है कि प्रेक्षित तथ्यो से उपलब्ध स्थैतिकी के नियमो के आधार पर अप्रेक्षित तथ्यो के सम्बन्ध मे उन्ही नियमो का आगमन मान्य हो।

यह दुर्भाग्य की बात है कि अभी तक किसी ने भी इस प्रकार की अनुमिति को ठीक मान लेने का कोई प्रामाणिक कारण नही प्रस्तुत किया। लगभग २०० वर्ष पहले ह्यूम ने आगमन के सम्बन्ध मे सन्देह व्यक्त किए थे। उन्होने तो अधिकांश अन्य बातो पर भी सन्देह व्यक्त किए थे। उस समय दार्शनिक लोग उनसे क्षुब्ध हुए थे और उनकी बातो का खण्डन करने के लिए तर्कों की ईजाद की थी जो अपनी नितान्त अस्पष्टता के कारण ही लोगो की नजर मे

सही बन गए थे। सच तो यह है कि काफी लम्बे अरसे तक दार्शनिकों ने अपने तर्कों को अस्पष्ट बनाए रखने में पूरी सावधानी बरती, क्योंकि अन्यथा हर व्यक्ति यह समझ जाता कि ह्यूम के तर्कों का जवाब देने में वे लोग असफल रहे हैं। इस प्रकार की तत्वमीमांसा गढ़ लेना एक आसान बात है जिसके परिणाम-स्वरूप आगमन को मान्य सिद्ध किया जा सके, और अनेक लोगों ने ऐसा किया भी है किन्तु उस तत्वमीमांसा के मनोरंजक होने के अलावा ऐसा कोई कारण इन लोगों ने नहीं प्रस्तुत किया कि उनकी तत्वमीमांसा पर विश्वास क्यों किया जाए। उदाहरण के लिए बर्गसाँ की तत्वमीमांसा निस्सन्देह मनोरंजक है। इस संसार को तीव्र विभेदों से मुक्त एकता के रूप में देखने की क्षमता इस तत्व-मीमांसा से हमें प्राप्त होती है उसके अनुसार यह संसार कुछ अस्पष्ट रूप से आनन्ददायी भी मालूम होता है किन्तु ज्ञान की खोज में अपनाई जाने वाली तकनीक में इसे शामिल नहीं किया जा सकता। आगमन पर विश्वास करने के लिए मान्य आधार हो सकते हैं, और तथ्यतः हममें से प्रत्येक को विवश होकर उस पर विश्वास करना ही पड़ता है, किन्तु यह बात स्वीकार करनी ही पड़ेगी कि सिद्धान्ततः आगमन तर्कशास्त्र की एक ऐसी समस्या है जिसका समाधान नहीं हो सका। फिर भी, चूँकि यह सन्देह व्यावहारिक दृष्टि से हमारे प्रायः सम्पूर्ण ज्ञान को प्रभावित करता है इसलिए हम इसको नजर-अन्दाज कर सकते हैं और व्यावहारिक दृष्टि से यह मान सकते हैं कि आगमनात्मक प्रक्रिया उप-युक्त सावधानी और बचाव के साथ स्वीकार की जा सकती है।

(२) अननुभूत के सम्बन्ध में अनुमितियाँ—जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, तथ्यतः अनुभूत बातें उनकी अपेक्षा बहुत कम हैं जिनके अनुभूत होने की कल्पना लोग स्वभावतः करते हैं। उदाहरण के लिए, आप कह सकते हैं कि आप अपने मित्र श्री जोन्स को सड़क पर अकेले टहलते हुए देख रहे हैं किन्तु ऐसा कहना उस सीमा से बहुत आगे बढ़ जाना है जिस सीमा तक वस्तुतः इस सम्बन्ध में कुछ कहने का आपको अधिकार है। आपको तो एक स्थिर पृष्ठभूमि में चलती फिरती रंगीन धब्बों की क्रमागत शृंखला मात्र दिखाई देती है। ये धब्बे पव-लाव के सोपाधिक प्रतिवर्तन द्वारा आपके मस्तिष्क में 'जोन्स' शब्द की याद दिला देते हैं और इसीलिए आप कहते हैं कि आप जोन्स को देख रहे हैं किन्तु दूसरे लोग अपनी-अपनी खिड़कियों से देखने पर सन्दर्श नियमों के कारण विभिन्न कोणों से कुछ और ही देखेंगे इसलिए यदि ये सभी लोग जोन्स को ही देख रहे हैं तो जोन्स भी उतने ही भिन्न भिन्न प्रकार के होंगे जितने दर्शक हैं, और यदि वास्तविक जोन्स केवल एक ही है तो वह किसी की भी दृष्टि में नहीं आ रहा। यदि एक क्षण के लिए हम भौतिकी द्वारा दिए जाने वाले विवरण को सत्य मान लें तो जिसे आप 'जोन्स को देखना' कहते हैं उसकी व्याख्या कुछ निम्नलिखित

शब्दावली में की जाएगी प्रकाश के छोटे छोटे पैकट, जिन्हें 'प्रकाश क्वाटम' कहा जाता है, सूरज से निकलते हैं और इनमें से कुछ उस क्षेत्र में पहुँचते हैं जहा एक विशिष्ट प्रकार के अणु हैं जिनसे जोन्स के चेहरे का, उसके हाथों और कपडो का निर्माण हुआ है। इन अणुओं का अपने-आप कोई अस्तित्व नहीं है, यह तो सम्भाव्य घटनाओं के सारसंग्रह की अप्रत्यक्ष अभिव्यक्ति मात्र हैं। जोन्स के अणुओं के पास पहुँचने पर कुछ प्रकाश-क्वाटमों की आंतरिक व्यवस्था बदल जाती है—उसमें उलट फेर हो जाता है। इसीलिए जोन्स धूप से झुलसता है और विटामिन डी० का निर्माण होता है। कुछ दूसरे प्रकाश क्वाटम परावर्तित होते हैं और इनमें से कुछ हमारी आखो मे प्रवेश करते हैं जहा पहुँचकर वे शलाका और शकु मे एक जटिल गडबडी पैदा करते हैं। इस गडबडी के परिणामस्वरूप दृक तन्त्रिका मे एक धारा प्रवाहित होती है। मस्तिष्क में इस धारा के पहुँचने पर वह घटना घटित होती है जिसे आप जोन्स को 'देखना' कहते हैं। इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'जोन्स को देखने की क्रिया' के साथ जोन्स का सम्बन्ध बहुत ही दूर का सम्बन्ध है—आकस्मिक और अप्रत्यक्ष सम्बन्ध है। और इस सारी प्रक्रिया मे जोन्स फिर भी रहस्य से आवृत बना रहता है। हो सकता है वह अपने भोजन के बारे में सोच रहा हो, या अपनी उस निवेशित पूँजी के बारे में सोच रहा हो जो बर्बाद हो गई अथवा अपने खोए हुए छाते के बारे में सोच रहा हो। ये विचार ही तो जोन्स हैं, किन्तु आप जो कुछ देखते हैं वह ये विचार तो नहीं हैं। यह कहना कि आप जोन्स को देख रहे हैं इस कथन की अपेक्षा अधिक सही नहीं होगा कि—यदि फुटबाल की चारदीवारी से उछलकर कोई गेंद सिर में लगने पर आप कहें—दीवार मेरे सर से टकरा गई। दोनों बातें सचमुच एक-दूसरे के बिल्कुल अनुरूप हैं।

इसलिए वास्तव में हम कभी भी उस चीज को नहीं देखते जिसके सम्बन्ध में हम सोचते हैं कि हम उसे देख रहे हैं। तो फिर जिसके बारे में हम यह सोचते हैं कि हम उसे देख रहे हैं, यद्यपि वास्तव में हम उसे देख नहीं पाते, उसके अस्तित्व को मानने का क्या कोई कारण है? विज्ञान को हमेशा इस बात का गर्व रहा है कि वह आनुभविक है और केवल उसी बात पर विश्वास करता है जिसका सत्यापन किया जा सकता है। अब स्थिति यह है कि जिन घटनाओं को आप 'जोन्स को देखना' कहते हैं उनका सत्यापन स्वयं अपने भीतर तो कर सकते हैं किन्तु स्वयं जोन्स का सत्यापन आप नहीं कर सकते। आप उन स्वरों को सुन सकते हैं जिन्हें आप जोन्स द्वारा कही गई बातें कहते हैं उस स्पर्श का अनुभव कर सकते हैं जिसे आप अपने साथ जोन्स का टकराना कहते हैं। यदि पिछले कुछ दिनों से जोन्स ने स्नान न किया हो तो आपको घ्राण-संवेदन की अनुभूति हो सकती है जिसका उद्गम आप जोन्स को मानते हैं। यदि यह तर्क

आपका जँचा हो तो आप उसके साथ इस ढग से बात कर सकते है जैसे कि वह कहीं दूर टेलीफोन से आपके साथ बात कर रहा हो और कह सकते हैं, "क्हो भाई, तुम्ही हो न ?" और उत्तर म आपको यह सुनना पड सकता है, "हा बेवकूफ, क्या तू मुझे देख भी नही सकता ?" किन्तु यदि आप इन तर्कों को जोन्स के वहा मौजूद होने का प्रमाण मान ले तो फिर आप तर्क के वास्तविक उद्देश्य को समझे ही नहीं। तथ्य यह है कि जोन्स तो एक सुविधाजनक प्राक्कल्पना है जिसके द्वारा आप अपने कुछ संवेदना को सबन्धित कर सकते हैं किन्तु उनको एकत्र सकलित रखने वाली चीज उनका प्राक्कल्पित सामान्य उदगम नही है बल्कि कुछ अनुरूपताएं और आकस्मिक सादृश्य हैं जो उनमे परस्पर पाए जाते हैं। उनके सामान्य उद्गम के काल्पनिक होने पर भी ये अनुरूपताएँ और सादृश्य कायम रहते हैं। जब सिनेमा मे आप किसी व्यक्ति को परदे पर देखते हैं, तब आप जानते हैं कि स्टेज से बाहर होने पर उस व्यक्ति का वहाँ अस्तित्व नही है, यद्यपि आप मान लेते हैं कि मूलत एक व्यक्ति था जिसका अस्तित्व बराबर विद्यमान था। किन्तु आप ऐसी कल्पना करते क्यो हैं ? जोन्स उस आदमी की तरह क्यो नहीं हो सकता जिसे आप सिनेमा मे देखते हैं ? यदि आप जोन्स से ऐसी बात कह तो वह आपसे नाराज हो सकता है, लेकिन इस बात को गलत सिद्ध करने के लिए उसके पास कोई ताकत नही है, क्योकि जिस समय आपको उसकी अनुभूति नही हो रही उस समय वह जो कुछ कर रहा है उसकी अनुभूति वह आपको नही दे सकता।

क्या इस बात को सिद्ध करने का कोई उपाय है कि जिन घटनाओ की अनुभूति स्वय आपको होती है उनके अलावा और घटनाए भी होती हैं ? यह प्रश्न कुछ भावात्मक अभिरुचि वाला प्रश्न है, किन्तु आधुनिक युग का सैद्धांतिक आधुनिक भौतिक विज्ञानी इसे कोई महत्व नही देगा। वह तो कहेगा, 'मेरे सूत्रो का उद्देश्य मेरे संवेदना को परस्पर सम्बन्धित करने वाले नैमित्तिक नियम उपलब्ध करना है। इन नैमित्तिक नियमो की अभिव्यक्ति मे मैं प्राक्कल्पित सत्ताओ का उपयोग कर सकता हूँ, किन्तु यह प्रश्न कि ये सत्ताएँ प्राक्कल्पित से कुछ अधिक भी हैं या नही, व्यर्थ ही है, क्योकि यह सम्भाव्य सत्यापन के क्षेत्र से बाहर है।" जरा कोचने पर, वह अन्य भौतिक विज्ञानियो के अस्तित्व को स्वीकार कर सकता है क्योकि वह उनके द्वारा उपलब्ध परिणामो का प्रयोग करना चाहता है और भौतिक विज्ञानियो का अस्तित्व स्वीकार कर लेने पर नम्रता के साथ अन्य विज्ञानो के विद्यार्थियो का अस्तित्व भी उससे स्वीकार कराया जा सकता है। वस्तुत सादृश्य के आधार पर वह यह सिद्ध करने के लिए एक तर्क बना सकता है कि जिस प्रकार उसका शरीर उसके विचारो से सम्बन्धित है, उसी प्रकार उसके शरीर से मिलते-जुलते अन्य शरीर भी सम्भवत विचारो

से सम्बधित हैं। प्रश्न किया जा सकता है कि इस तक म कितना बल है, किन्तु यदि इसे स्वीकार कर लिया जाए तो भी इमसे यह निष्कष तो नही निकाला जा सकता कि सूय और तारा का अस्तित्व है अथवा किसी भी निर्जीव पदाथ का अस्तित्व है। वस्तुत हम बकले की मायता को स्वीकार करने की स्थिति म पहुँच जात हैं जिसके अनुसार केवल विचारो का ही अस्तित्व है। बकले ने इस विश्व की और शरीरो के स्थायित्व की रक्षा उनको ईश्वर के विचार मानकर की थी, किन्तु यह ता केवल अभिलाषा की पूर्ति थी, तकसगत विचारणा नही। फिर भी चूकि बकले एक पादरी भी थे और आयरलण्डवासी भी, इसलिए हम उनकी मायता पर कठोर आघात नही करना चाहिए। तथ्य तो यह है कि विज्ञान का प्रारम्भ मतायन की भावा म अत्यधिक 'प्राणि श्रद्धा से हुआ था जो वास्तव म सोपाधिक प्रतिवतन के सिद्धात के अनुसार विचार-प्रमुख है। इसी विश्वास ने भौतिक विज्ञानियो का पदाथ जगत मे विश्वास करने की क्षमता दी। बाद म धीरे धीरे वे इसके प्रति विश्वासघाती हो गए, जसे राजा महाराजाओ के इतिहास का अध्ययन करके लोग गणतत्रवादी बन गए। हमारे युग क भौतिक विज्ञानी अब पदाथ पर विश्वास नही करते। फिर भी यदि एक व्यापक और विविधतापूण बाह्य ससार उपलब्ध हो तो अपने-आपम भौतिक विज्ञानियो का यह अविश्वास कोई अधिक हानि करने वाला नही है किन्तु दुर्भाग्य स भौतिक विज्ञानियो ने अपार्थिव बाह्य ससार मे विश्वास करने का कोई कारण भी हम नही बताया।

समस्या वास्तव म तत्वत भौतिक विज्ञानी की समस्या नही है बल्कि तकशास्त्री की समस्या है। सार रूप म यह एक सरल सी समस्या है अथात क्या कभी भी परिस्थितियाँ एसी होती हैं जो हम कुछ ज्ञात घटनाओ क आधार पर यह अनुमान करने की क्षमता दे सकें कि कोई अय घटना घटित हुई है, घटित हो रही है अथवा घटित होगी ? अथवा यदि हम निश्चयपूवक इस प्रकार का कोई अनुमान नहा कर सकत तो क्या पर्याप्त सम्भाव्यता के साथ एसा अनुमान किया जा सकता है या कम-से-कम ५० प्रतिशत स कुछ अधिक सम्भाव्यता के साथ ऐसा अनुमान किया जा सकता है ? यदि इस प्रश्न का उत्तर अस्ति वाची हो तो जिन घटनाओ के घटित होन का अनुभव हमने स्वय नही किया उनके घटित होने पर विश्वास करना न्याय सगत होगा और वास्तव म हम सभी ऐसा विश्वास करत ही हैं। किन्तु यदि उत्तर नकारात्मक हो तो फिर हमारा यह विश्वास कभी न्याय सगत नही हो सकता। तकशास्त्रियो ने इस प्रश्न का उसके इस सरल रूप म विवेचन शायद ही कभी किया हो, और मुझ इस प्रश्न का कोई स्पष्ट उत्तर ज्ञात नही है। जब तक इस प्रश्न का कोई उत्तर नही उपलब्ध होता तब तक तो यह प्रश्न बना ही रहेगा और बाह्य विश्व म हमारा

विश्वास एक प्राणि श्रद्धा मात्र बना रहेगा।

(३) भौतिकी की भाव-सूक्ष्मता—हम यह मान भी लें कि सूर्य, तारे और यह सामान्य भौतिक विश्व हमारी कल्पना की सृष्टि अथवा हमारे समीकरणो के सुविधाजनक गुणाक नहीं हैं, फिर भी उनके बारे म जो कुछ भी कहा जा सकता है वह असामान्य रूप से भाव-सूक्ष्म ही है और भौतिक विज्ञानियो द्वारा उसे समझाने के प्रयत्न म प्रयुक्त भाषा से व जितना भाव सूक्ष्म मालूम होते है उससे कही अधिक भाव सूक्ष्म हैं। जिस देश और काल की विवेचना भौतिक विज्ञानी करते हैं वह हमारे अनुभव का देश-काल नहीं है। सौर परिवार के चार्टों म जो विन्यात्मक दीर्घ वृत्त दिए रहते हैं, ग्रहो की कक्षाओ का उनसे कोई साम्य नहीं मिलता—केवल कुछ अत्यत अमूर्त गुणो के साम्य को छोडकर। हमारे अनुभव म सान्निध्य का जो सम्बन्ध घटित होता है उसे भौतिक ससार के पिण्डो पर भी लागू करना सम्भव है किन्तु हमारे अनुभव म जो अन्य सम्बन्ध आते हैं उनका अस्तित्व भौतिक ससार मे अभी तक नहीं ज्ञात हो सका। अधिक-से-अधिक जो कुछ जाना जा सकता है—और वह भी अत्यन्त आशावादी दृष्टिकोण से—वह यही है कि भौतिक ससार म कुछ ऐसे सम्बन्ध हैं जिनमे कुछ ऐसे अमूर्त तर्कसगत लक्षण पाए जाते हैं जो हमारे अपने ज्ञात सम्बन्धो के भी गुण हैं। ये समान लक्षण वही हैं जिनकी अभिव्यक्ति गणितीय माध्यम से की जा सकती है, ये लक्षण ऐसे नहीं हैं जो इन सम्बन्धो को अन्य सम्बन्धो से कल्पनामूलक विभेदो के आधार पर पृथक करते हो। उदाहरण के लिए इसी बात को लीजिए कि एक ग्रामोफोन के रेकार्ड और उस रेकार्ड से बजने वाले सगीत के बीच कौनसे सामान्य गुण हैं। दोनो म कुछ सरचनात्मक गुणो का साम्य है जिन्हे भाव-सूक्ष्म शब्दावली मे व्यक्त किया जा सकता है, किन्तु दोनो के बीच उन गुणो का साम्य नहीं है जो हमारी इन्द्रियो के लिए प्रत्यक्ष हो। अपने सरचनात्मक साम्य गुण के कारण दोनो एक दूसरे का कारण बन सकते हैं। इसी प्रकार हमारे सवेद्य ससार की सरचना का सहभागी भौतिक ससार, सरचना के अलावा अन्य किसी बात म साम्य न रखते हुए भी, हमारे सवेद्य ससार का कारण बन सकता है। इसलिए भौतिक ससार के सम्बन्ध म हम अधिक से अधिक ऐसे ही गुणो का जान सकते हैं जो ग्रामोफोन के रेकार्ड और उससे बजने वाले सगीत के बीच सामान्य हैं ऐसे गुणो को नहीं जान सकते जो उन्हे एक दूसरे से पृथक करते हो। भौतिकी वास्तव म जिस बात की स्थापना करती है उसके व्यक्त करने के लिए सामान्य भाषा नितान्त अनुपयुक्त है क्योंकि दैनिक जीवन के शब्द पर्याप्त रूप म भाव-सूक्ष्म नहीं होते। भौतिक विज्ञानी जितनी सूक्ष्म अभिव्यक्ति चाहता है, केवल गणित और गणितीय तर्क शास्त्र की भाषा द्वारा ही वह सम्भव है। जैसे ही अपने प्रतीको को वह शब्दो म अभिव्यक्त

करता है वैसे ही अनिवार्यत वह कुछ-न-कुछ अत्यधिक मूर्त या ठोस बात कह जाता है, और उसके पाठकों पर एक ऐसी कल्पना-सम्भव और भाव-ग्राह्य बात का प्रभाव प्रभाव पड़ता है जो उस बात की अपेक्षा कहीं अधिक आनन्ददायक और दैनंदिन होती है जिसे व्यक्त करने का वह प्रयत्न करता है।

अनेक लोगों को भाव सूक्ष्मता से तीव्र घृणा है। इसका कारण, मेरे विचार से, मुख्यत इसकी बौद्धिक कठिनाई है, किन्तु चूंकि वे लोग इस कारण को प्रकट नहीं करना चाहते, इसलिए अनेक प्रकार के अन्य कारण गढ़ लेते हैं जो काफी प्रतिष्ठापूर्ण मालूम होते हैं। उनका कहना है कि सम्पूर्ण वास्तविकता मूर्त होती है और भावसूक्ष्मता की ओर बढ़ने में हम उसे छोड़ देते हैं जो तात्विक होता है। वे कहते हैं कि सभी प्रकार की अमूर्तता मिथ्याकरण है और जैसे ही आप किसी वास्तविकता का कोई पहलू छोड़ते हैं वैसे ही केवल शेष पहलुओं के आधार पर तर्क करने के कारण तर्काभास के दोषी हो जाते हैं। इस प्रकार का तर्क करने वाले लोग वास्तव में उन विषयों से सम्बन्धित हैं जिनका विज्ञान से कोई सम्बन्ध नहीं है। उदाहरण के लिए सौंदर्य-बोध की दृष्टि से अमूर्तीकरण पूर्णत भ्रामक हो सकता है। ग्रामोफोन का रेकार्ड सौन्दर्य बोध की दृष्टि से शून्य होता है, जबकि उससे निकलने वाला संगीत अत्यन्त सुन्दर हो सकता है, सृष्टि का इतिहास महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत करने वाले कवि की कल्पना-दृष्टि में भौतिकी द्वारा उपलब्ध अमूर्त ज्ञान सन्तोषप्रद नहीं हो सकता। भगवान ने जब अपनी सृष्टि पर दृष्टि डाली तब उन्हें जो कुछ दिखाई दिया, और अच्छा दिखाई दिया, कवि उसी को जानना चाहता है, उसे उन सूत्रों से सन्तोष नहीं मिल सकता जिनमें भगवान की सृष्टि के विभिन्न भागों के पारस्परिक सम्बन्धों के भाव सूक्ष्म तक सगत गुण धर्म बनाए गए हों। किन्तु वैज्ञानिक विचार इससे भिन्न होता है। तत्वत वैज्ञानिक विचार शक्तिमूलक विचार होता है—ऐसा विचार जिसका प्रयोजन, चेतन या अचेतन रूप में उस विचार के स्वामी को शक्ति देना होता है। शक्ति एक नैमित्तिक संकल्पना है, और किसी भी पदार्थ पर शक्ति प्राप्त करने के लिए केवल उन नैमित्तिक नियमों को समझना जरूरी होता है जिनके वशवर्ती वह पदार्थ हो। यह तत्वत एक अमूर्त विषय है और अप्रासंगिक विवरणों को हम अपने दृष्टि पथ से जितना ही अल्प हटा सकेंगे उतना ही अधिक शक्तिवान हमारे विचार होते जाएँगे। आर्थिक क्षेत्र में भी यही बात प्रदर्शित की जा सकती है। एक किसान अपने खेत के हर कोने को भली भाँति जानता है गेहूँ के सम्बन्ध में एक ठोस जानकारी रखता है और फलत बहुत कम पैसा पैदा कर पाता है, उसके गेहूँ को दूर बाजार में ले जाने वाली रेलवे कम्पनी गेहूँ के सम्बन्ध में कुछ अधिक भावसूक्ष्म ढंग से सोचती है और अधिक पैसा पैदा करती है, श्रेष्ठि-चत्वर या स्टाक-एक्सचेंज में

जोड-तोड करने वाले सट्टेबाज को गेहूँ के सम्बन्ध म उसका शुद्ध अमूत पहलू ही मालूम रहता है कि उसका भाव गिर या चढ सकता है और वह गेहूँ की ठोस वास्तविकता से उतनी ही दूर होता है जितनी दूर भौतिक विज्ञानी, पर आर्थिक क्षेत्र म अन्य सभी सम्बन्धित लोगो की अपेक्षा वह सबसे अधिक पैसा बनाता है और सबसे अधिक शक्तिवान होता है। यही बात विज्ञान पर भी लागू होती है, यद्यपि वैज्ञानिक जिस शक्ति की खोज करता है वह उस शक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक दुर्गम्य और अवयक्तिक होती है जिसके लिए स्टाक-एक्सचेंज म जोड-तोड की जाती है।

आधुनिक भौतिकी की आत्यतिक अमूतता उसे दुरूह बना देती है किन्तु जो लोग उसे समझ सकते हैं उन्हें इस ससार के सम्यक स्वरूप का, उसकी सरचना और उसके यात्रिक विन्यास का भाव बोध उपलब्ध कराती है, जो सम्भवत किसी अन्य कम अमूत उपकरण से उपलब्ध न हो सकता। अमूत विचारणाओ का प्रयोग करने की शक्ति ही बुद्धि का तत्व है, और अमूत विचारणाओ म होने वाली प्रत्येक वद्धि से विज्ञान की बौद्धिक विजयो की प्रतिष्ठा बढती जाती है।

चौथा अध्याय

वैज्ञानिक तत्वमीमांसा

यह एक अदभुत बात है कि जब सडक पर चलने वाला सामान्य व्यक्ति विज्ञान पर पूर्णत विश्वास करने लगा है तब प्रयोगशाला म काम करने वाला व्यक्ति अपना विश्वास खोने लगा है। जब मैं युवक था उन दिनो अधिकाश भौतिक विज्ञानियो को इस बात म रच मात्र भी सन्देह नही था कि भौतिकी के नियम हमे पिण्डो की गतिशीलता के बारे म यथार्थ ज्ञान देते हैं और भौतिक ससार वास्तव म उसी प्रकार की सत्ताओ से बना है जो भौतिक विज्ञानी के समीकरणो मे मिलते हैं। यह सही है कि दार्शनिक लोग इस विचार के सम्बध मे अपने सन्देह बर्कले के समय से ही व्यक्त करते चले आए हैं किन्तु चकि उनकी आलोचना कभी भी विज्ञान की व्यापक प्रक्रिया पद्धति के किसी एक तथ्य विशेष से सम्बद्ध नही हो पाई इसलिए वज्ञानिक लोग उसकी अवहेलना कर सकते थे और वास्तव म उन्होने यही किया भी। आजकल तो स्थिति बिलकुल भिन्न हो गई है भौतिक विज्ञान के दर्शन के सम्बध म क्रान्तिकारी विचार स्वय भौतिक विज्ञानियो द्वारा प्रस्तुत किए गए है और ये विचार सावधानी-पूर्वक किए गए प्रयोगो के परिणाम हैं। भौतिकी का नया दर्शन अभी बहुत विनम्र और तुतलाता हुआ सा है जबकि प्राचीन दर्शन शास्त्र बहुत ही गर्वीला और अधिनायकी वृत्ति वाला था। मैं समझता हूँ कि भौतिक नियमो म विश्वास तिरोहित हो जाने के कारण जो रिक्तता आ गई है उसे प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपनी सामर्थ्य क अनुसार भरा जाना स्वाभाविक ही है और यह भी स्वाभाविक ही है कि इसके लिए वह उस निराधार विश्वास के अवशेषो का प्रयोग करे जिसके विकास के लिए पहले कोई अवसर ही नही था। पुनर्जागरण काल म जब कैथोलिक विश्वास की सबलता क्षीण हो गई तब उसका स्थान ज्योतिष और प्रेतविद्या ने ग्रहण करने की कोशिश की और इसी प्रकार हम यह आशा करनी ही चाहिए कि वैज्ञानिक विश्वास क्षीण होने पर वज्ञानिक युग के पूर्ववर्ती अन्धविश्वासो का फिर स प्रचलन होगा।

जब तक हम काफी बारीकी से इसकी जाँच परख नही करते कि वैज्ञानिक का वास्तविक तात्पर्य क्या है तब तक ऐसा लगता है कि वह ज्ञान का एक अधिकाधिक प्रभावपूर्ण भण्डार हमारे सामने प्रस्तुत कर रहा है। यह बात

विशेष रूप से ज्योतिष पर लागू होती है। सभी लोग जानते हैं कि आकाशगंगा हमारे पड़ोसी सभी तारों से मिलकर बनी है। प्रकाश प्रति सैकण्ड १,८६,००० मील की रफ्तार से चलता है, एक वर्ष में इस रफ्तार से वह जितनी दूरी तय करता है उसे एक प्रकाश-वर्ष कहा जाता है, सबसे अधिक नजदीक तारे की दूरी लगभग चार प्रकाश वर्ष है आकाशगंगा में स्थित सबसे अधिक दूर तारे की दूरी लगभग दो सौ बीस हजार प्रकाश वर्ष है। दूरबीनों से तारों के लगभग दो सौ परिवार देखे जाते हैं जिनमें से प्रत्येक आकाशगंगा के समान है और उनमें से कुछ दस करोड़ प्रकाश वर्षों से भी अधिक दूर हैं। इस प्रकार इस विश्व का आकार बहुत व्यापक है किन्तु उसे असीम नहीं माना जाता। ऐसी कल्पना की जाती है कि यदि आप एक सीधी रेखा में आगे बढ़ते चले जाएँ तो अन्ततः आप अपने प्रस्थान बिंदु पर वापस लौट आएँगे, जैसे पृथ्वी का चक्कर लगाने वाला जहाज वापस लौट आता है। फिर भी यह सोचने का कुछ कारण है कि यह विश्व निरंतर वर्धमान है जैसे साबुन का बुलबुला अंदर हवा भरी जाने पर फैलता जाता है। एक प्रतिष्ठित ज्योतिषी, आर्थर हास का कहना है कि किसी समय प्राचीन काल में, जिसकी दूरी हमने जनन नहीं है इस विश्व की त्रिज्या एक अरब बीस करोड़ प्रकाश वर्ष थी किन्तु विश्व की त्रिज्या प्रति एक अरब चालीस करोड़ वर्षों में दूनी हो जाती है अथात अनेक धातुओं की आयु से भी कम समय में सूर्य की आयु के खगोलीय अनुमानों की तो कोई बात ही नहीं है ('नेचर', ७ फरवरी १९३१)। यह बात बहुत भावपूर्ण मालूम होती है—किन्तु वैज्ञानिक लोग स्वयं इस बात को किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं करते—कि जिन बड़ी-बड़ी संख्याओं का विवेचन वे करते हैं उनमें कोई वस्तुनिष्ठ यथार्थता भी है। मेरे कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि वे लोग जिन नियमों की स्थापना कर रहे हैं उन्हें असत्य मानते हैं मेरा मतलब तो यह है कि इन नियमों की एक ऐसी व्याख्या भी सम्भव है जिसके द्वारा खगोलीय अन्तरिक्ष के इस भवन को मात्र गौण सकल्पनाओं में परिणत किया जा सकता है जो ऐसे परिकल्पना में उपयोगी होगी जिनके द्वारा हम एक यथार्थ घटना को दूसरी के साथ सम्बन्धित करते हैं। कभी-कभी ऐसा भी प्रतीत हो सकता है कि ज्योतिषी लोग मानो उन्हीं घटनाओं को वास्तविक रूप में अपने अध्ययन का विषय समझते हैं जो ज्योतिषियों के प्रेक्षण का विषय होती हैं।

जो पाठक यह जानना चाहते हों कि वैज्ञानिक विश्वास क्या और कम क्षीण होता जा रहा है, उनके लिए एडिंग्टन लिखित 'द नेचर ऑफ द फिजिकल वर्ल्ड' शीर्षक भाषणों को पढ़ने से बढ़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है। इन भाषणों में उसे मालूम होगा कि भौतिकी तीन विभागों में विभाजित है।

पहले विभाग म चिरसम्मत भौतिकी के सभी नियम शामिल हैं, जैसे ऊर्जा और सवेग का सरक्षण तथा गुरुत्वाकर्षण का नियम। प्राफेसर एडिंग्टन क अनुसार य सभी नियम सार रूप म परिमापन की परम्पराओ के अतिरिक्त और कुछ नही हैं, यह ठीक है कि इनम जिन नियमा की अभिव्यक्ति की गई है व सार्वभौम हैं लेकिन उसी प्रकार सार्वभौम तो यह नियम भी है कि एक गज मे तीन फीट होते हैं, और यह नियम भी एडिंग्टन क अनुसार प्रकृति की गतिविधि का वैसा ही अभिसूचक है। भौतिकी का दूसरा विभाग बडे-बडे समुच्चया और सयोग-सम्बन्धी नियमा से सम्बन्धित है। इस विभाग म यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है कि अमुक-अमुक घटना असम्भव है, बल्कि केवल यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है कि वह अत्यधिक अप्रायिक है। भौतिकी का तीसरा विभाग, जो सर्वाधिक आधुनिक है, क्वाण्टम सिद्धान्त है और यही विभाग सबसे अधिक परेशानी पदा करने वाला है क्योंकि यह ऐसा सिद्ध करता हुआ प्रतीत होता है कि कारणता के जिस नियम म अभी तक विज्ञान वस्तुत विश्वास करता आया है उस व्यक्तिगत इलेक्ट्रानो क क्रिया-कलापो पर नही लागू किया जा सकता। इन तीनो ही विषयो के सम्बन्ध म मैं क्रमश कुछ शब्द कहूँगा।

चिरसम्मत भौतिकी म ही प्रारम्भ करें। जसा सभी लोग जानते हैं न्यूटन क गुरुत्वाकर्षण क नियम को आइन्स्टीन द्वारा कुछ सशोधित किया गया और प्रयोगो द्वारा इस सशोधन की पुष्टि भी हो गई। किन्तु यदि एडिंग्टन का दृष्टिकोण सही है तो इस प्रयोगिक पुष्टि म वह सार्थकता नहीं है जो स्वभावत लोग उसम देखते हैं। पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा के सम्बन्ध म गुरुत्वाकर्षण का नियम तीन सम्भव मत प्रतिपादित करता है, एडिंग्टन इन तीनो पर विचार करके एक चौथा दृष्टिकोण इस आशय का प्रस्तुत करते हैं कि 'पृथ्वी जसे चाहती है वस परिक्रमा करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि पृथ्वी की गति विधि के सम्बन्ध म गुरुत्वाकर्षण का नियम हम वस्तुत कुछ भी नही बताता। एडिंग्टन इस बात को स्वीकार करते हैं कि इस दृष्टिकोण म विरोधाभास है किन्तु वह कहते हैं

"इस विरोधाभास की कुजी यह है कि भौतिक जगत क पदार्थों के आचरण क सम्बन्ध म हम जो भी विवरण प्रस्तुत करते हैं उसम हम स्वय हमारी इन्द्रियाँ और हमारी अभिरुचि का आरोपित करने वाली चीजें जितना अधिक प्रभाव डालती हैं उसका भान भी हम नहीं होता। और इसलिए हमारी इन्द्रियो के चश्मे स देखने पर कोई पदार्थ एक अत्यन्त विशिष्ट और उल्लेखनीय ढग से आचरण करता हुआ प्रतीत हो सकता है, किन्तु किसी दूसरे प्रकार की इन्द्रियो क चश्म स देखने पर उसक व्यवहार म एसी कोई बात नहीं दिखाई द

सकती जो विशिष्ट और विचारणीय हो।"

मुझे यह बात स्वीकार कर ही लेनी चाहिए कि यह दृष्टिकोण मुझे बहुत ही दुरूह प्रतीत होता है। एडिंग्टन के प्रति सम्मान के कारण मैं यह नहीं कह सकता कि यह विचार असत्य है किन्तु उनके तर्क में विभिन्न बातें ऐसी हैं जिनका अनुगमन करने में, जिनको समझने में, मुझे कठिनाई प्रतीत होती है। निस्सन्देह क्वांटम सिद्धान्त से हम जिन व्यावहारिक परिणामों का निगमन करते हैं वे सब औपचारिक भौतिकी के क्षेत्र से बाहर हैं, जैसे उदाहरण के लिए, यह निष्कर्ष कि सूर्य का प्रकाश हमें कुछ विशिष्ट समयों में दिखाई देगा और कुछ अन्य समयों में नहीं दिखाई देगा। फिर भी मैं यह आशंका प्रकट करने के लिए विवश हूँ कि एडिंग्टन के हाथों में पहुँचकर औपचारिक भौतिकी जरूरत से कुछ बहुत अधिक औपचारिक हो गई है और एडिंग्टन द्वारा की गई व्याख्या में उसे जितना महत्व दिया गया है उसमें कुछ अधिक महत्व देना भी असम्भव न होगा। बात जैसी भी हो, हमारे युग का यह एक महत्वपूर्ण लक्षण है कि वैज्ञानिक सिद्धान्त के एक अग्रणी व्याख्याता ने इतना विनम्र अभिमत प्रस्तुत किया है।

अब मैं भौतिकी के सांख्यिकीय अंश को लेता हूँ जिसका सम्बन्ध बड़े-बड़े समुच्चयों के अध्ययन से है। बड़े-बड़े समुच्चय प्रायः ठीक उसी प्रकार का व्यवहार करते हैं जिसकी कल्पना क्वांटम सिद्धान्त के आविष्कार से पहले की गई थी, और इसलिए उनके सम्बन्ध में पुरानी भौतिकी बहुत कुछ ठीक ही है। फिर भी एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण नियम है जो केवल सांख्यिकीय ही है यह नियम है ऊष्मागति विज्ञान का दूसरा नियम। मोटे तौर से इस नियम को इन शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है कि यह संसार निरन्तर अधिकाधिक अव्यवस्थित होता जा रहा है। एडिंग्टन इसका उदाहरण ताश के पत्तों से देते हैं ताश बनाने वाले के यहाँ से पत्ते अपने क्रम में ठीक-ठीक रखे हुए भली भाँति व्यवस्थित रूप में बाहर आते हैं जब आप पत्तों को बाँटते हैं तब उनकी व्यवस्था नष्ट हो जाती है, और यह असम्भाव्यता की पराकाष्ठा वाली बात है कि ताश के ये पत्ते फिर कभी स्वतः पूर्ण रूप से अपनी पूर्व-व्यवस्थित स्थिति में आ सकें। अतीत और भविष्य के बीच का अन्तर कुछ इसी प्रकार का अन्तर है। सैद्धान्तिक भौतिकी के शेष भाग में हम ऐसी प्रक्रियाओं का अध्ययन करते हैं जो प्रतिवर्ती होती हैं, अर्थात् इस भाग में भौतिकी के नियम यह सिद्ध करते हैं कि किसी पदार्थ का किसी समय की अपनी 'अ' अवस्था से किसी दूसरे समय 'ब' अवस्था में गुजरना सम्भव है और इन्हीं नियमों के अनुसार इसका प्रतिवर्ती संक्रमण भी उतना ही सम्भव है। किन्तु जहाँ ऊष्मागति विज्ञान का दूसरा नियम आ जाता है वहाँ यह बात नहीं लागू होता। प्रोफेसर एडिंग्टन इस नियम का

निरूपण इस प्रकार करते हैं—"जब कभी कोई ऐसी घटना घटित होती है जिसे मिटाया नहीं जा सकता, तब उसका कारण किसी ऐसे अनियमित तत्व की उपस्थिति में खोजा जा सकता है जो ताश के पत्तों को बाटने की क्रिया से मिलता जुलता है।' भौतिकी के अधिकांश नियमों से भिन्न रूप में यह नियम केवल सम्भाव्यताओं से ही सम्बन्धित है। हम इस पहले वाले उदाहरण को ही लें निस्सन्देह यह सम्भव है कि यदि आप ताश के पत्तों को काफी लम्बे अरसे तक बाटते रहें तो संयोगवश पत्ते अपनी पूर्व व्यवस्था में आ भी सकते हैं। बात बहुत अनहोनी सी है किन्तु करोड़ों अणुओं के संयोगवश व्यवस्थित क्रम में आ जाने की अपेक्षा तो यह बहुत कम अनहोनी है। प्रोफेसर एडिंग्टन निम्नलिखित उदाहरण देते हैं—मान लीजिए एक बड़े बरतन को बीच में कोई विभाजक लगा कर दो बराबर भागों में बाँट दिया गया, और कल्पना कीजिए कि एक भाग में हवा है जबकि दूसरा भाग निर्वात है। फिर विभाजक में एक द्वार खोल दिया जाता है और समूचे बरतन में हवा बराबर फैल जाती है। हो सकता है भविष्य में कभी संयोगवश वायु के अणु अपनी अनियमित गतिविधि में फिर विभाजित हिस्से में उसी रूप में एकत्र हो जाएँ जिस रूप में विभाजन से पहले थे। यह सम्भव नहीं है केवल असम्भाव्य है किन्तु यह अत्यधिक असम्भाव्य है।' यदि मैं अपनी अँगुलियों को अनियमित रूप से यों ही बेकार अपने टाइपराइटर की कुंजियों पर घूमने दूँ तो मेरी इस क्रिया में हो सकता है, कोई सार्थक वाक्य टाइप हो जाय। बन्दरों की एक फौज यदि टाइपराइटरों पर अँगुलियाँ चलाती रहे तो हो सकता है कि ब्रिटिश म्यूजियम में रखी सारी पुस्तकें टाइप कर डालें। उनके द्वारा ऐसा किए जाने की सांयोगिक सम्भावना अणुओं के अपनी पूर्वावस्था में बरतन के आधे हिस्से में वापस आने की सम्भावना से निश्चित रूप से कुछ अधिक है।"

इसी प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं, जैसे गिलास के साफ पानी में अगर आप स्याही की एक बूँद टपका दें तो धीरे धीरे वह पूरे पानी में फैल जाएगी। हो सकता है कि संयोगवश बाद में वह स्याही फिर एक बूँद के रूप में एकत्र हो जाए लेकिन अगर ऐसा हो जाता है तो हम उसे निश्चय ही एक अद्भुत अनहोनी घटना मानेंगे। जब एक गर्म पिण्ड और एक ठण्डा पिण्ड एक-दूसरे के सम्पर्क में रख दिए जाते हैं तो गर्म पिण्ड ठण्डा पड़ने लगता है और ठण्डा पिण्ड तब तक गर्म होता जाता है जब तक दोनों पिण्डों का तापमान एक नहीं हो जाता और सभी लोग इस बात को जानते हैं किन्तु यह भी केवल सम्भाव्यता का एक नियम है। यह भी हो सकता है कि पानी से भरा जो बरतन आग पर रखा हो उसका पानी खौलने के बजाय जम जाए इसको भी भौतिकी के किसी भी नियम द्वारा असम्भव सिद्ध नहीं किया गया, ऊष्मागतिकी विज्ञान

के दूसरे नियम द्वारा इसे भी केवल अत्यधिक असम्भाव्य सिद्ध किया गया है। सामान्य रूप से इस नियम में यह कहा गया है कि यह विश्व लोक-तन्त्र की ओर प्रवृत्तिशील है और जब लोकतन्त्र की स्थिति उपलब्ध हो जाएगी तब यह विश्व और कुछ अधिक उपलब्ध करने में अक्षम हो जाएगा। ऐसा लगता है कि इस संसार की रचना किसी अनन्त अतीत में नहीं की गई थी और उस समय यह आज की अपेक्षा कहीं अधिक असमानताओं से भरा हुआ था, किन्तु सृष्टि के क्षण से यह निरन्तर अवनतिशील रहा है और यदि फिर से इसका विलय नहीं हो जाता तो अन्ततः व्यावहारिक दृष्टि से इसकी गति अवरुद्ध हो जाएगी। प्रोफेसर एडिंग्टन को, किसी कारणवश इस जगत के विलय की बात पसन्द नहीं आती, वे इस विचार को पसन्द करते हैं कि सृष्टि का यह नाटक केवल एक बार खेला जाना है। इस तथ्य के बावजूद कि अन्त में इस नाटक की परिणति खेद और अवसादपूर्ण युगों में होनी है और सारा दर्शक समाज इस अवधि में क्रमशः चिरनिद्रा में लीन हो जाएगा, एडिंग्टन को यही विचार अधिक पसन्द है।

क्वान्टम सिद्धान्त, जिसका सम्बन्ध केवल परमाणुओं और इलेक्ट्रोनों से है, अभी तक तीव्र विकास की स्थिति में है और अपने अन्तिम स्वरूप से शायद अभी बहुत दूर है। हीज़ेनबर्ग, श्रॉडिंगर तथा अन्य लोगों के हाथों में यह सिद्धान्त जितना विक्षोभकारी और क्रान्तिकारी बन गया है उतना आपेक्षिकता का सिद्धान्त कभी भी नहीं रहा। प्रोफेसर एडिंग्टन ने हाल ही में हुए इसके विकास की व्याख्या ऐसे ढंग से की है जो अगणितज्ञ पाठक के लिए भी इतनी सुबोध है जितना सुबोध होना मैंने सम्भव नहीं समझा था। न्यूटन के समय से जिन पूर्वाग्रहों द्वारा भौतिकी का नियमन किया गया है उनके लिए यह व्याख्या अत्यन्त विक्षोभकारी है। इस दृष्टि से सबसे सर्वाधिक कष्टकारी बात यह है कि जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कारणता की सार्वभौमता पर इसने प्रश्न-चिह्न लगा दिया है। इस समय स्वीकृत अभिमत यह है कि शायद परमाणुओं में स्वतन्त्र संकल्प शक्ति की कुछ मात्रा विद्यमान है, जिसके परिणामस्वरूप सिद्धान्त के क्षेत्र में भी उनका आचरण पूर्णतः नियमाधीन नहीं है। और फिर जिन कुछ बातों को कम-से-कम सिद्धान्त रूप में हमने निश्चित मान लिया था अब वे कतई निश्चित नहीं रह गई। एक सिद्धान्त है जिसे अनिश्चयता का सिद्धान्त कहा जाता है। इस सिद्धान्त की स्थापना है "किसी कण की किसी समय या तो स्थिति की उपलब्धि रह सकती है या फिर वेग की, किन्तु शुद्ध अर्थों में दोनों की उपलब्धि एक साथ नहीं हो सकती।" इसका अर्थ यह हुआ कि यदि आप यह जानते हैं कि आप कहाँ हैं तो आप यह नहीं बता सकते कि आप कितनी तेजी से गतिमान हैं और यदि आप यह जानते हैं कि कितनी

तेजी से आप गतिशील हैं तो फिर आप यह नहीं बता सकते कि आप कहां हैं। यह स्थापना परम्परागत भौतिकी की जड को ही काट देती है, जिसमें स्थिति और वेग दोनों ही आधारभूत स्वीकृत थे। कोई इलेक्ट्रॉन तभी दिखाई देता है जब उसमें प्रकाश का उत्सर्जन होता है, और प्रकाश का उत्सर्जन उसमें तभी होता है जब वह एक स्थान से दूसरे स्थान को उत्प्लवित होता है अर्थात यह देखने के लिए कि वह किस स्थान पर है, उसे किसी दूसरे स्थान पर भेजना अनिवार्य है। कुछ लोगों ने इसका अर्थ यह निकाला है कि भौतिक नियततत्ववाद को इस स्थापना ने समाप्त कर दिया है और एडिंग्टन ने अपने अंतिम अध्यायों में इसका उपयोग स्वतन्त्र संकल्प शक्ति की पुनःप्रतिष्ठा में किया है।

अपनी रचना के पूर्वगामी पृष्ठों में उद्धृत जिस वैज्ञानिक अज्ञान का निरूपण किया है उसके आधार पर प्रोफेसर एडिंग्टन ने आशावादी और सुखद निष्कर्ष निकाले हैं। उनका यह आशावाद इस पुराप्रतिष्ठित सिद्धान्त पर आधारित है कि जिस बात का असत्य नहीं सिद्ध किया जा सकता उसे सत्य माना जा सकता है। इस सिद्धांत की असत्यता सट्टेबाजों के समृद्धि संयोगों में सिद्ध हो जाती है। यदि हम इस सिद्धान्त को त्याग दें तो फिर यह समझ पाना कठिन हो जाता है कि आधुनिक भौतिकी प्रसन्न रहने के लिए हमें और कौन सा आधार देती है। भौतिकी की स्थापना है कि यह विश्व ह्रासशील है और यदि एडिंग्टन का विचार ठीक है तो भौतिकी इसके अलावा वस्तुतः हमें कुछ नहीं बताती, क्योंकि शेष जो कुछ है वे तो स्वीकृत तथ्य के सामान्य नियम हैं।

जैसा कि सर आर्थर ने स्वयं ही कहा है, विकास के बावजूद—जो विश्व के एक छोटे-से कोने में अधिकाधिक व्यवस्था प्रचलित कर रहा है—सम्यक रूप से व्यवस्था का व्यापक ह्रास हो रहा है और अन्ततः विकास से उत्पन्न व्यवस्था को यह बिल्कुल समाप्त कर देगा। उनका कहना है कि अंत में यह सारा विश्व पूर्ण अव्यवस्था की स्थिति में पहुँच जाएगा और वही इसका अंत होगा। उस स्थिति में इस विश्व में एक समान द्रव्यमान रह जाएगा जिसका तापमान एक समान होगा। उसके बाद क्रमशः इस विश्व का उत्फुल्लन होगा और कुछ नहीं। यह बात सचमुच सर आर्थर की प्रसन्न प्रकृति की ही प्रतिष्ठा करती है कि इस दृष्टिकोण में भी उन्हें आशावादिता का आधार मिल सका है।

अयत्रियावादी अथवा राजनीतिक दृष्टिकोण से भौतिकी के ऐसे सिद्धान्त का सर्वाधिक महत्व शायद इस बात में है कि यदि यह व्यापक रूप में प्रचलित हो जाता है तो विनाश पर लगाम व उस विश्वास को नष्ट कर देगा जो आधुनिक युग का एकमात्र रचनात्मक पंथ रहा है और शुभ तथा अशुभ सभी प्रकार के परिवर्तन का स्रोत रहा है। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में "पूर्णत्व के

सिद्धांत पर आधारित प्राकृतिक नियम का दर्शन प्रचलित रहा। नियम की अव धारणा में नियतता की सत्ता निहित मानी जाती थी, यद्यपि जैसे जैसे समय बीतता गया वैसे वैसे इस अनुमान पर कम जोर दिया जाने लगा फिर भी विश्व व्यवस्थित और पूर्वकथनीय बना रहा। प्रकृति के नियमों का ज्ञान प्राप्त करके हम प्रकृति का संचालन करने की भी आशा कर सकते थे और इस प्रकार विज्ञान शक्ति का स्रोत बन गया। अधिकांश ऊर्जस्वित व्यावहारिक लोगों का आज भी यही दृष्टिकोण है, किन्तु वैज्ञानिकों में से कुछ लोग अब इस दृष्टिकोण को नहीं स्वीकार करते। उनके अनुसार इस विश्व के बारे में पहले जो धारणा थी उसकी अपेक्षा यह विश्व कहीं अधिक घोर अव्यवस्थित और यदृच्छामूलक है। और अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में हमारे पूर्वज इसके सम्बन्ध में जितना जानते थे उसकी अपेक्षा में वैज्ञानिक आज बहुत कम जानते हैं। एडिंग्टन जिस प्रकार के वैज्ञानिक संशयवाद के निरूपक हैं शायद अन्ततः वह वैज्ञानिक युग का ध्वंस कर देगा, जैसे पुनर्जागरण-काल के धर्म-दर्शन-सम्बन्धी संशयवाद ने धीरे धीरे धर्म दर्शन के युग को समाप्त कर दिया। मेरा खयाल है कि विज्ञान का ध्वंस होने के बाद भी मशीनें शेष रहेंगी, जैसे धर्म दर्शन का ध्वंस होने के बाद भी धर्माध्यक्ष या पादरी लोग शेष रह गए हैं किन्तु उनके प्रति आदर और आतंक की भावना नहीं रह जाएगी, जैसे धर्माध्यक्षों के प्रति नहीं रह गई।

ऐसी परिस्थितियों में विज्ञान तत्वमीमांसा को क्या दे सकता है? पार्मेनाइडीज़ के जमाने से लेकर आज तक विद्वान दार्शनिक लोग यह विश्वास करते रहे हैं कि संसार एक है। इस विचार को पादरियों और पत्रकारों ने इन दार्शनिकों से ग्रहण किया और इसकी स्वीकृति ही प्रज्ञा की कसौटी मानी गई। मेरे बौद्धिक विश्वासों में से सर्वाधिक आधारभूत विश्वास यह है कि यह मान्यता थोथी अर्थहीन है। मेरे विचार से यह विश्व विशृंखल है इसमें कोई एकता नहीं है कोई निरन्तरता नहीं है, कोई सम्बद्धता और व्यवस्था अथवा ऐसा अन्य कोई गुण नहीं है जिसे अध्यापिकाएँ बहुत पसन्द करती हैं। सच तो यह है कि पूर्वाग्रह और आदत को छोड़कर और शायद कुछ भी ऐसा नहीं है जो इस दृष्टिकोण के पक्ष में प्रस्तुत किया जा सके कि संसार नाम की कोई चीज है भी। भौतिक विज्ञानियों ने हाल ही में ऐसी सम्मतियाँ प्रस्तुत की हैं, जिनके आधार पर ऊपर ऊपर कही गई बातों को स्वीकार कर लेना चाहिए लेकिन तर्कशास्त्र जिन निष्कर्षों की प्रतिष्ठा करता है उनसे ये लोग इतने पीड़ित हुए हैं कि इनमें से बहुसंख्यक लोगों ने तर्कशास्त्र को छोड़कर धर्म शास्त्र का पल्ला पकड़ लिया है। प्रतिदिन कोई-न-कोई नया भौतिक विज्ञानी एक नई पोथी इस तथ्य को अपने आपसे और दूसरों से छिपाने के लिए प्रकाशित करता है कि एक वैज्ञानिक की हैसियत से

उसन इस ससार को अवास्तविकता और तकहीनता के खड्ड म ढकेल दिया है। एक उदाहरण लें सूय के बारे म हम अपनी क्या धारणा बनाएँ ? पुराने जमाने म वह स्वग का एक गरिमामय प्रकाश पिण्ड था सुनहले बालो वाला देवता था, जोरेथ्रुस्ट के अनुयाइयो और अजटेक तथा इका लोगो के लिए एक पूजनीय सत्ता था। ऐसा सोचने का कुछ कारण है कि जारथ्रुस्ट के सिद्धान्तो से ही केपलर को सूय-केन्द्रीय ब्रह्माण्डोत्पत्ति सिद्धान्त का प्रेरणा मिली। किन्तु अब सूय सम्भाव्यता-तरगो के अतिरिक्त और कुछ भी नही है। यदि आप यह पूछें कि वह क्या है जो सम्भाव्य है, अथवा ये तरग किस सागर को जाती ह, तो भौतिक विज्ञानी उत्तर देता है—"इसकी चर्चा बहुत हो चुकी, ऊब गया हूँ, आइए अब विषय बदल द।" लेकिन अगर फिर भी आप उस पर जोर डालें तो वह कहेगा कि तरगें उसके सूत्रो म हैं और उसके सूत्र उसके सिर म हैं, लेकिन इसका अथ आप यह न लगा बठे कि तरगें उसके सिर म है। गम्भीरतापूवक सोचता बहुत से लोग यह मानते हैं कि बाह्य ससार म जो कुछ भी व्यवस्था हम प्रतीत होती है वह व्यवस्था के प्रति हमारी तीव्र अभिलाषा के ही कारण है वे यह भी मानते हैं कि प्रकृति के नियम जैसी कोई चीज है या नहीं यह भी बहुत सन्देहास्पद है। इस युग का यह एक अदभुत लक्षण है कि धार्मिक मतवादी लोग भी इस दृष्टिकोण का स्वागत करते है। अठारहवी शताब्दी म ये लोग नियम का शासन पसन्द करते थे क्योकि उनका विचार था कि नियमो म नियन्ता भी निहित है किन्तु आजकल के धार्मिक मतवादियो का विचार कुछ ऐसा लगता है कि एक देवता द्वारा रचा गया यह ससार अयुक्तिसगत ही होना चाहिए प्रत्यक्षत इस मत का आधार यह है कि वे लोग स्वय भगवान की प्रतिमूर्ति के रूप म बनाए गए हैं।[१] धम और विज्ञान के इस मेल मिलाप का स्वागत प्रोफेसर और पादरी दोनो ही कर रह हैं और इसका आधार वस्तुत यद्यपि अवचेतनावस्था म हो एक बिल्कुल दूसरे ही प्रकार का है जिसे नीचे लिखे व्यावहारिक हेत्वनुमान म व्यक्त किया जा सकता है विज्ञान धमान्धो के भरोसे पर निभर है और धर्मान्धो को बौद्धिकवाद स खतरा है इसलिए विज्ञान को भी बौद्धिकवाद स खतरा है लेकिन धम को भी बौद्धिकवाद स खतरा है,

---

१ यह आधुनिक दृष्टिकोण भौतिक विज्ञानियों के बीच भी सवथा य नहीं है। उदाहरण के लिए गलीलियो के काय की चचा करते हुए मिलिकन कहते हैं— इसके माध्यम से मनुष्य जाति को एक ऐसे ईश्वर का ज्ञान हुआ जो अस्थिर बुद्धि और मनमौजी नहीं है जैसे कि प्राचीन काल के सभी देवता थे, बल्कि जो नियमानुकूल और नियम के माध्यम म काम करता ह।' (साइस एण्ड रिलिजन, १६२६, पृष्ठ ३६) फिर भी अधिकाश आधुनिक भौतिक विज्ञानी अस्थिर बुद्धि और सनक को ही अधिक पसन्द करते ह।

इसलिए धर्म और विज्ञान एक-दूसरे से भिन्न हैं। बल्कि इसका निष्कर्ष यह निकलता है कि यदि विज्ञान का अध्ययन गम्भीरता के साथ किया जाए तो उससे ईश्वर के अस्तित्व की पुष्टि होगी। फिर भी इतनी तर्कसंगत कोई बात पवित्र-मन प्रोफेसरों की चेतना में प्रवेश नहीं कर पाती।

विचित्र बात यह है कि जिस समय भौतिकी—जो आधारभूत विज्ञान है—प्रामाणिक तर्क की सम्पूर्ण संरचना की अवहेलना करके और उसे अपदस्थ करके हमारे सामने न्यूटन द्वारा प्रतिष्ठित व्यवस्था और घनता के स्थान पर अवास्तविक और हवाई कल्पना का स्वप्नलोक प्रस्तुत कर रही है उसी समय प्रायोगिक विज्ञान उपयोगी और मानव-जीवन के लिए बहुमूल्य परिणाम प्रस्तुत करने में पहले से अधिक सक्षम सिद्ध हो रहा है। इस स्थिति में एक विरोधाभास है जिसका बौद्धिक समाधान शायद बाद में प्राप्त हो सकेगा अथवा सम्भव है इसका कोई समाधान हो ही नहीं। तथ्य यह है कि विज्ञान दो बिल्कुल भिन्न भूमिकाएँ अदा करता है—एक ओर तो तत्त्वमीमांसा के रूप में और दूसरी ओर एक शिक्षित सामान्य बुद्धि के रूप में। तत्त्वमीमांसा के रूप में तो अपनी संकल्पनाओं द्वारा ही विज्ञान की प्रतिष्ठा कम हुई है। गणितीय तकनीक आज इतनी शक्तिशाली हो गई है कि अत्यन्त अनियमित संसार के लिए भी वह कोई-न-कोई सूत्र निकाल सकती है। प्लेटो और सर जेम्स जीन्स का विचार है कि चूँकि ज्यामिति इस जगत पर लागू होती है इसलिए ईश्वर ने इस जगत को एक ज्यामितीय ढाँचे के अनुकूल ही बनाया होगा किन्तु गणितीय तर्कशास्त्री सन्देह करता है कि ईश्वर अनेक पदार्थों से भरे संसार को बिना किसी ज्यामिति-विद के कौशल का सहारा लिए न बना सका होगा। तथ्य तो यह है कि भौतिक संसार पर ज्यामिति की प्रायोगिकता अब इस जगत के सम्बन्ध में कोई तथ्य नहीं रह गई केवल ज्यामितिविद् के कौशल की प्रशंसा मात्र रह गई है। ज्यामितिविद् केवल एक चीज चाहता है और वह है बहुलता जबकि धर्मशास्त्री जो एकमात्र चीज चाहता है वह है एकता। एकता चाहे जितनी अस्पष्ट हो और चाहे जितनी सूक्ष्म हो पर आधुनिक विज्ञान को तत्त्वमीमांसा के रूप में देखने पर एकता का कोई प्रमाण उसमें नहीं मिलता। किन्तु साधारण बुद्धि के रूप में आधुनिक विज्ञान सफल और विजयी है वस्तुतः पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सफल और विजयी है।

इस स्थिति को देखते हुए यह जरूरी है कि जीवन के मूल्यों से सम्बन्धित तत्त्वमीमांसीय विश्वासों और व्यावहारिक विश्वासों के बीच एक स्पष्ट विभेद कर लिया जाए। तत्त्वमीमांसा के क्षेत्र में तो मेरा मत बिल्कुल सरल और संक्षिप्त है। मैं तो समझता हूँ कि यह बाह्य जगत एक माया है किन्तु यदि इसकी स्थिति है भी तो यह जगत अनियमित रूप से घटित होने वाली छोटी-

छोटी घटनाओ का बना हुआ है । व्यवस्था, एकता और निरन्तरता तो मनुष्य के आविष्कार हैं, ठीक वैसे ही जैसे सूची पत्र और विश्वकोष मनुष्य के आविष्कार है । किंतु मानव आविष्कार, कुछ निश्चित सीमाओ के भीतर, मानव ससार मे प्रचलित और प्रभावी बनाए जा सकते हैं, और अपने दैनिक जीवन के सचालन मे हम नितान्त अव्यवस्थापूर्ण अँधेरी रात के अँधेरे को भुला सकते है जो शायद चारो ओर से हमे घेरे हुए हैं और इससे हम लाभ ही होगा ।

जिन तत्वमीमासीय चरम सन्देहो की विवचना हम करते आ रहे हैं उनका कुछ भी प्रभाव विज्ञान के व्यावहारिक उपयोगो पर नहीं पडता । मेण्डेल का कोई अनुयायी यदि इस प्रकार का गेहूँ विकसित करता है जो उन बीमारियो से मुक्त हो जो पुराने प्रकार के गहूँ को नष्ट कर देती हैं, यदि कोई शरीर क्रिया विज्ञानी विटामिनो के सम्बन्ध म कोई नई खोज करता है यदि कोई रासाय निक कृत्रिम नाइट्रेटो के उत्पादन के सम्बन्ध म कोई खोज करता है तो इन सभी लोगो के कार्यों की महत्ता और उपयोगिता का इस प्रश्न से बिल्कुल स्वतन्त्र अस्तित्व है कि एक परमाणु मे सौर परिवार का एक लघु रूप होता है अथवा सम्भाव्यता की एक तरग होती है अथवा पूर्णांको का एक अनन्त आयत होता है । जब मैं मानव जीवन के सचालन के सम्बन्ध म वैज्ञानिक पद्धति के महत्व की चर्चा करता हूँ तो उस समय मैं वैज्ञानिक पद्धति के सासारिक रूपो की बात करता हूँ । इसका अर्थ यह नही है कि तत्वमीमासा के रूप म मैं विज्ञान का महत्व हीन करता हूँ बल्कि मेरे विचार से तत्वमीमासा के रूप मे विज्ञान का महत्व एक दूसरे ही क्षेत्र का विषय है । उसकी स्थिति धर्म, कला और प्रेम के साथ है, परमानन्दपूर्ण जीवन दृष्टि की खोज से उसका सम्बन्ध है प्रोमेथ्यूज के उस भावोन्माद स, जो महानतम व्यक्तियो को देवत्व की सिद्धि के लिए प्रेरित करता है । शायद मानव जीवन का चरम मूल्य महत्व इस भावोन्माद म ही है । किन्तु यह मूल्य महत्व धार्मिक है राजनीतिक नहीं, नैतिक भी नहीं है ।

विज्ञान के महत्व का यह धर्मवत पहलू ही सशयवाद की चोटों का शिकार हो रहा है । अभी कुछ ही समय पहले तक वैज्ञानिक लोग अपने-आपको एक अभिजात पथ के धर्माध्यक्ष जैसे मानते थे । उनका यह पथ था सत्य के अर्पण का पथ, वह सत्य नही जिसे धार्मिक मत मतान्तर सत्य समझते हैं अर्थात कट्टर धर्मान्धो का युद्ध-घोष, बल्कि वह सत्य जिसकी वह खोज कर रहे थ, एक दृश्य जो धूमिल-सी झाँकी देकर फिर ओझल हो जाता, एक अप्रत्याशित सूर्य जो आत्मा म अवस्थित स्फुलिंग से एकाकार हो जाता । विज्ञान की अव धारणा इसी रूप म की गई थी और यही कारण है कि वैज्ञानिक लोग अभाव,

आपदाएँ और यन्त्रणाएँ सहने के लिए तथा प्रतिष्ठित मतवादों के शत्रु माने जाकर निंदित, उपेक्षित और अभिशापित होने के लिए सदैव तैयार रहते थे। अब यह सब कुछ एक बीती कहानी बनता जा रहा है आधुनिक वैज्ञानिक जानता है कि उसका सम्मान किया जाता है, और मन-ही मन अनुभव करता है कि वह सम्मान किए जाने योग्य नहीं है। प्रतिष्ठित व्यवस्था के प्रति उसका दृष्टिकोण क्षमा-याचनापूर्ण होता है। जैसे वह कहता है—"मेरे पूर्वगामियों ने आपके सम्बन्ध में कुछ कड़ी बातें कही होंगी, क्योंकि वे लोग कुछ दर्पपूर्ण थे, और यह समझते थे कि उन्हें कुछ ज्ञान प्राप्त है। मैं अधिक नम्र हूँ और मैं यह नहीं कहता कि मुझे ऐसा कोई भी ज्ञान प्राप्त नहीं है जो आपके मतों का खण्डन कर सके।" इसके बदले में प्रतिष्ठित व्यवस्था वैज्ञानिकों को उपाधियों से विभूषित करती है, उन पर सम्पत्ति निछावर करती है और इस प्रकार पुरस्कृत ये वैज्ञानिक उस अन्याय और निग्रहन-वृत्ति के अधिकाधिक कट्टर समर्थक बन जाते हैं जिस पर हमारी सामाजिक व्यवस्था आधारित है। मनोविज्ञान जैसे नए विज्ञानों में अभी यह बात नहीं आई उनमें अभी प्राचीन उत्साह कायम है और उसी प्रकार उपेक्षाएँ और यन्त्रणाएँ भी जारी हैं। उदाहरण के लिए, ब्रिटेन की पुलिस ने होमर लेन को, जो एक मनीषी और सन्त थे, अवांछनीय विदेशी' घोषित करके ब्रिटेन से निकाल दिया। किन्तु इन नए विज्ञानों को संशयवाद की मृत्यु शीतल श्वासों का स्पर्श भी अभी नहीं मिला जिसने भौतिकी और ज्योतिष का जीवन समाप्त कर दिया है।

यह सारी परेशानी एक बौद्धिक परेशानी है। सच तो यह है कि इसका समाधान, यदि कोई समाधान हो, तर्क-शास्त्र में खोजना होगा। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मेरे पास इस समस्या का कोई समाधान नहीं है। हमारे इस युग में प्राचीन आदर्शों के स्थान पर अधिकाधिक मात्रा में शक्ति की प्रतिष्ठा की जा रही है, और अन्य क्षेत्रों की भांति विज्ञान के क्षेत्र में भी यही हो रहा है। जहाँ एक ओर शक्ति की खोज के रूप में विज्ञान अधिकाधिक सफल और विजयी होता जा रहा है, वहाँ दूसरी ओर सत्य की खोज के रूप में विज्ञान उस संशयवाद का शिकार बनता जा रहा है जो वैज्ञानिक लोगों के कौशल से ही उत्पन्न हुआ है। कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि यह स्थिति दुर्भाग्यपूर्ण है किन्तु मैं यह नहीं स्वीकार कर सकता कि संशयवाद के स्थान पर अन्धविश्वास की स्वीकृति, जिसका समर्थन हमारे अनेक अग्रणी वैज्ञानिक कर रहे हैं स्थिति में कोई सुधार ला सकेगी। संशयवाद दुखदायी या स्वल्प निष्फल भी हो सकता है किन्तु कम से-कम इतना तो है कि उसमें ईमानदारी है और वह सत्य की खोज का परिणाम है। सम्भवतः यह एक अस्थायी स्थिति है किन्तु एक मूढ़तर युग के परित्यक्त विश्वासों को फिर से अपना लेने से तो इस स्थिति से सही अर्थों में कोई बचाव नहीं हो सकता।

पाचवाँ अध्याय

विज्ञान और धर्म

हाल के जमाने मे अधिकाश प्रख्यात भौतिक विज्ञानियो ने और अनेक प्रसिद्ध जीव विज्ञानियो ने ऐसे वक्तव्य दिए हैं जिनमे कहा गया है कि विज्ञान के क्षेत्र मे हुई हाल की प्रगतियो से पुराने भौतिकवाद का खण्डन हो गया है और ये प्रगतियाँ धर्म द्वारा घोषित सत्यो को फिर से प्रतिष्ठित करती प्रतीत होती है। वैज्ञानिको के ये वक्तव्य निरपवाद रूप मे बहुत-कुछ प्रायोगिक और अनिश्चित ही रहे हैं किन्तु धर्मशास्त्रियो ने उन्हे धर दबोचा है और उनका विस्तार किया है पत्रकारो ने अपनी ओर से धर्मशास्त्रियो द्वारा दिए गए उन विवरणो को प्रचारित किया है जो कुछ अधिक चमत्कारपूर्ण थे। और इसके परिणामस्वरूप सामान्य जनता पर कुछ ऐसा प्रभाव पडा है कि भौतिकी वस्तुत सृष्टि की उत्पत्ति सम्बन्धी सम्पूर्ण धार्मिक स्थापनाओ का समर्थन करती है। मैं स्वय तो ऐसा नही समझता कि आधुनिक विज्ञान से वही निष्कर्ष निकाला जा सकता है जिसको सामान्य जनता मान बैठी है। पहली बात तो यह है कि वैज्ञानिको ने इतना कुछ नही कहा जितना समझा जाता है कि उन्होने कहा है और दूसरी बात यह कि परम्परागत धार्मिक विश्वासो के समर्थन मे उन्होने जो कुछ भी कहा है वह केवल भद्र नागरिको की हैसियत से सद्गुण और सम्पत्ति की रक्षा से प्रेरित होकर कहा गया है सतर्कता-पूर्वक विचार करके एक वैज्ञानिक की हैसियत से उन्होने ये बातें नहीं कही। युद्ध ने और रूस की क्रांति ने सभी भीरु लोगो को रूढिवादी बना दिया है और आचार्य लोग प्राय भीरु प्रवृत्ति के होते है। किन्तु ये बातें कुछ विषयान्तर सी हैं। आइए हम उन बातो की परीक्षा करें जिन्हे विज्ञान सचमुच प्रतिष्ठित करता है।

(१) स्वतन्त्र सकल्प—धर्मशास्त्र जो अपने परम्परागत रूप मे मनुष्यो मे स्वतन्त्र सकल्प शक्ति की स्थिति स्वीकार करता है अभी हाल हो तक विश्व मे प्राकृतिक नियम के प्रति अपना प्रेम प्रकट करता रहा था। कभी-कभी इसी चमत्कारो मे विश्वास हो इस प्रेम मे कुछ बाधा डालता था। अठारहवी शताब्दी मे न्यूटन के प्रभाव से धर्मशास्त्र और प्राकृतिक नियम का सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ हो गया। यह माना गया कि ईश्वर ने इस जगत की रचना एक योजना के अनुसार की है, और प्राकृतिक नियम इस योजना के मूल रूप हैं। १६वी शताब्दी

तर्क अपेक्षाकृत काफी कठोर बौद्धिक और सुनिश्चित बना रहा। लेकिन पिछले सौ वर्षों में नास्तिकवादी तर्क की चोटों का प्रतिकार करने के लिए उसने अधिकाधिक रूप में भावना का सहारा लेना अपना लक्ष्य बना लिया है। बौद्धिक दृष्टि से कुछ शिथिल मनोवृत्ति वाले लोगों पर अपना प्रभाव डालने का प्रयत्न उसने किया है, और प्रत्यक्ष स्पष्ट और सटीक होने के बजाय वह भारी भरकम आवरण बन गया है। आज हमारे जमाने में केवल मूलाधारवादियों ने और कुछ थोड़े-से अधिक विद्वान कैथोलिक धर्मशास्त्रियों ने पुरानी समाहृत बौद्धिक परम्परा को कायम रखा है। धर्म का समर्थन करने वाले शेष सभी लोग तर्क की धार कुण्ठित करते में लगे हैं। वे मस्तिष्क के बजाय हृदय को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं उनकी स्थापना यह है कि जिस निष्कर्ष का हमारे तर्क ने सत्य सिद्ध किया हो उसकी असत्यता हमारी भावनाओं द्वारा सिद्ध की जा सकती है। जैसा कि लार्ड टेनिसन ने सुन्दर ढंग से कहा है

और एक क्रुद्ध मानव की भाँति तनकर
हृदय बोला "मैंने अनुभव किया है।"

हमारे युग में हृदय परमाणुओं के बारे में स्वयंभू-तत्व के बारे में समुद्री अर्चिन के विकास के बारे में तथा अन्य ऐसे विषयों के भी सम्बन्ध में भावनाएँ रखता है जिनके बारे में, यदि विज्ञान न होता तो वह उदासीन ही बना रहता।

हाल के जमाने में धार्मिक समर्थकों की पद्धति में एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण विकास यह हुआ है कि परमाणुओं के आचरण के सम्बन्ध में हमारे अज्ञान के आधार पर मनुष्य की स्वतंत्र संकल्प शक्ति का पुनरुद्धार करने की कोशिश की जा रही है। जो पिण्ड इतने बड़े हैं कि उन्हें देखा जा सके उनकी गतिविधि का नियमन करने वाले यांत्रिकी के पुराने नियम आज भी ऐसे पिण्डों के सम्बन्ध में पर्याप्त मात्रा में सत्य ही हैं किन्तु एकल परमाणुओं के सम्बन्ध में वे लागू नहीं होते एकल इलेक्ट्रानों तथा प्रोटानों के सम्बन्ध में तो और भी कम लागू होते हैं। अभी तक निश्चयपूर्वक यह नहीं जाना जा सका कि एकल परमाणुओं के आचरण के सभी पक्षों का नियमन करने वाले कोई नियम हैं अथवा यह कि ऐसे परमाणुओं का आचरण आंशिक रूप में अनियमित है। ऐसा सम्भव समझा जाता है कि बड़े-बड़े पिण्डों के आचरण का नियमन करने वाले नियम केवल सांख्यिकीय ही हो सकते हैं जो बहुसंख्यक अनियमित गतिविधियों का औसत परिणाम प्रस्तुत करते हों। कुछ तो सांख्यिकीय नियम हैं ही जैसे ऊष्मागतिविज्ञान का दूसरा नियम, सम्भव है कि और भी हों, परमाणु में विविध सम्भव स्थितियाँ होती हैं जो निरन्तर एक-दूसरे में विलय नहीं होती रहतीं बल्कि उनके बीच में छोटे छोटे सुनिश्चित अन्तराल रहते हैं। परमाणु एक स्थिति से दूसरी स्थिति में उच्छलन कर सकता है। परमाणु द्वारा सम्भव उदजन विविध

प्रकार के हो सकते है। अभी तक ऐसे कोई नियम ज्ञात नही है जिनके आधार पर निर्णय किया जा सके कि किसी निश्चित अवसर पर परमाणु किस प्रकार का उदत्सर्जन करेगा और इसीलिए यह कहा जाता है कि इस सम्बन्ध मे परमाणु नियमो का वशवर्ती नही है बल्कि सादृश्यमूलक भाषा मे, वह 'स्वतन्त्र सकल्प' वाला है। अपनी पुस्तक 'नेचर आफ दि फिजिकल वर्ल्ड' मे इस सम्भावना को लेकर एडिंग्टन ने बहुत उछल-कूद की है (पृष्ठ ३११ और आगे)। स्पष्ट है कि उनके विचार से मनुष्य का मन यह निर्धारित कर सकता है कि मस्तिष्क के परमाणु किसी निर्दिष्ट क्षण पर कौन सा सम्भव सक्रमण करें, और इस प्रकार बन्दूक का घोडा दबाने की भाति, अपने सकल्प के अनुसार बडे बडे परिणाम प्रस्तुत कर सकता है। उनके विचार से सकल्प स्वत कारणजन्य नही होता। यदि उनका विचार ठीक है तो काफी बडे-बडे द्रव्यमानो के सम्बन्ध मे भी भौतिक जगत की गतिविधि भौतिक नियमो द्वारा पूर्णत पूर्व निर्धारित नही होती, बल्कि मनुष्यो के कारण मुक्त सकल्पो द्वारा उसे बदला भी जा सकता है।

इस स्थिति की जाँच परख करने से पहले मैं अनिर्धारिता का सिद्धान्त कही जानेवाली स्थापना के सम्बन्ध मे कुछ कहना चाहता हूँ। इस सिद्धान्त को हिजिनबर्ग ने सन् १९२७ मे पहले पहल भौतिकी के क्षेत्र मे प्रस्तुत किया था, और पादरी लोगों ने इसे अपना लिया है—मेरे विचार से मुख्यत इसके नाम के कारण और ऐसा समझकर कि गणितीय नियमो की दासता से यह सिद्धान्त उन्हे मुक्ति दिला सकेगा। मुझे तो यह बात कुछ आश्चर्यजनक मालूम होती है कि एडिंग्टन अपने इस सिद्धान्त का उपयोग इस प्रकार किया जाना बर्दाश्त कर सकते हैं (देखिए ऊपर उद्धृत पुस्तक पृष्ठ ३०६)। अनिर्धारिता का सिद्धान्त यह स्थापित करता है कि किसी कण की स्थिति और उसके सवेग दोनो का परिशुद्ध निर्धारण कर सकना असम्भव है। प्रत्येक निर्धारण मे कुछ न-कुछ त्रुटि होगी और दोनों त्रुटियो का परिणाम सवदा एक समान होगा। इसका अर्थ यह है कि जितना परिशुद्ध निर्धारण एक का हम करना चाहेंगे और करेंगे उतना ही कम परिशुद्ध निर्धारण दूसरे का हो सकेगा। व्यवहार इस निर्धारण मे होने वाली त्रुटि बहुत ही अल्प है। मैं फिर कहता हू कि मुझे इस बात पर आश्चर्य है कि एडिंग्टन ने इस सिद्धान्त को दुहाई स्वतन्त्र सकल्प की समस्या के सम्बन्ध मे दी, क्योंकि इस सिद्धान्त से ऐसा कुछ भी नही स्थापित होता जिससे यह सिद्ध हो कि प्रकृति की गतिविधि निर्धारित नही है। इस सिद्धान्त से केवल यह स्पष्ट होता है कि दिशा काल-सम्बन्धी हमारे पुराने यन्त्र और उपकरण आधुनिक भौतिकी की आवश्यकता के लिए अपर्याप्त हैं और यह बात अन्य कारणो से भी ज्ञात हो चुकी है। दिशा और काल की खोज यूनानियो ने की थी, और इस खोज ने वर्तमान शताब्दी तक अपना उद्देश्य बखूबी पूरा किया। आइन्स्टीन ने

इनके स्थान पर कुछ दुनस्ली धारणा स्थापित की जिसे उन्होंने 'दिक्-काल' नाम दिया और दो एक दशकों तक इसने भी बखूबी काम किया, किन्तु आधुनिक क्वाटम यात्रिकी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि कुछ अधिक आधारभूत संशोधन और पुनर्स्थापना आवश्यक है। अनिर्धारिता का सिद्धात तो इस आवश्यकता का एक उदाहरण मात्र है, प्रकृति की गतिविधि को निर्धारित करने में प्राकृतिक नियमों की असफलता का उदाहरण इसे नहीं माना जा सकता।

जैसा कि श्री जे० ई० टनर ने सकेत किया है (नेचर, २७ सितम्बर १९३०)—"अनिर्धारिता के सिद्धात का जो प्रयोग किया गया है उसका कारण बहुत-कुछ 'निर्धारित' शब्द की अस्पष्टता है।" एक अर्थ में कोई परिमाण तब निर्धारित होता है जब उसकी नाप-तौल हो जाती है दूसरे अर्थ में कोई घटना तब निर्धारित होती है जब उसका कारण घटित होता है। अनिर्धारिता के सिद्धान्त का सम्बन्ध नाप-तौल से है कारणता से नहीं। किसी कण के वेग और उसकी स्थिति को इस सिद्धान्त द्वारा इस अर्थ में अनिर्धारित घोषित किया गया है कि उनकी परिशुद्ध नाप-तौल नहीं की जा सकती। यह एक भौतिक तथ्य है जिसका इस तथ्य से कारणात्मक सम्बन्ध है कि नाप-तौल एक भौतिक प्रक्रिया है जिसका भौतिक प्रभाव उस पर पड़ता है जिसकी नाप-तौल की जाती है। अनिर्धारिता के सिद्धात के सम्बन्ध में ऐसी कोई बात नहीं है जिससे यह सिद्ध हो कि कोई भी भौतिक घटना कारण मुक्त होती है। जैसा कि श्री टनर ने कहा है—"इस प्रकार का प्रत्येक तर्क कि—चूंकि किसी भी परिवर्तन का 'निर्धारण' इस अर्थ में नहीं किया जा सकता कि वह 'निश्चित' किया जा चुका है इसलिए वह एक नितान्त भिन्न अर्थ में, अर्थात 'कारणजन्य' होने के अर्थ में, भी अनिर्धारित है—एक ऐसा तर्क है जो अनिवार्य दोष से भरा हुआ है।"

अब हम परमाणु और उसके कल्पित स्वतन्त्र सकल्प की ओर फिर लौटें। ध्यान देना चाहिए कि अभी तक यह नहीं ज्ञात हो सका कि परमाणु का आचरण अस्थिर आचरण है। यह कहना गलत है कि परमाणु के आचरण का अस्थिर होना निश्चित रूप से ज्ञात हो चुका है और यह कहना भी गलत है कि परमाणु के आचरण का अस्थिर न होना ज्ञात हो चुका है। अभी हाल ही में विज्ञान को इस बात का पता चला है कि परमाणु भौतिकी के पुराने नियमों का वशवर्ती नहीं है और इसी आधार पर कुछ भौतिक विज्ञानी बिना सोचे-समझे इस निष्कर्ष पर पहुच गए हैं कि परमाणु किसी प्रकार के भी नियमों का वशवर्ती नहीं है। मस्तिष्क पर मन के प्रभाव के सम्बन्ध में एडिंग्टन ने जो तर्क प्रस्तुत किया है उसमें इसी विषय पर देकार्त के तर्क की बरबस याद हो आती है। देकार्त गतिज ऊर्जा के संरक्षण की बात जानते थे, किन्तु संवेग के संरक्षण की बात वह नहीं जानते थे।

इसलिए उन्होंने यह सोचा कि मन पाशव भावनाओं की गति की दिशा को तो बदल सकता है, यद्यपि उसके परिमाण को नहीं बदल सकता। उनके सिद्धान्त के प्रकाशन के थोड़े ही समय बाद जब संवेग के संरक्षण सम्बन्धी खोज हुई तब देकार्त के मत को छोड़ देना पड़ा। इसी प्रकार एडिंगटन का विचार भी प्रायोगिक भौतिक विज्ञानियों की कृपा पर आश्रित है जो किसी भी क्षण उन नियमों की खोज कर सकते हैं जो एकल परमाणुओं के आचरण का नियमन करते हों। एक ऐसे अज्ञान के आधार पर, जो क्षण-स्थायी हो सकता है, एक धर्मशास्त्रीय महल तैयार करना बहुत ही नासमझी की बात है। और इसके प्रभाव भी—जहाँ तक इसका कोई प्रभाव हो सकता है—अनिवार्यतः बुरे हैं क्योंकि लोगों को इनसे यह आशा होने लगती है कि अब नई खोजें नहीं की जाएंगी।

इसके अलावा स्वतन्त्र संकल्प पर विश्वास करने के विरुद्ध एक शुद्ध अनुभववादी आपत्ति भी है। जहाँ कहीं भी पशुओं अथवा मनुष्यों के आचरण का सावधानीपूर्वक वैज्ञानिक प्रेक्षण किया जा सका है वहीं यह देखा गया है कि इस क्षेत्र में भी वैज्ञानिक नियम उसी प्रकार खोजे जा सकते हैं जैसे अन्य क्षेत्रों में। इसका एक उदाहरण पैवलाव के प्रयोग हैं। यह सही है कि मनुष्य के कार्य-कलापों के सम्बन्ध में पूर्णतः कोई प्रागुक्ति या भविष्यवाणी नहीं की जा सकती किन्तु इस असमर्थता का कारण सम्बन्धित क्रिया विधि की जटिलता से भली भाँति स्पष्ट हो जाता है और इसके लिए पूर्ण नियमहीनता की प्राक्कल्पना करना किसी रूप में भी आवश्यक नहीं है। जहाँ कहाँ भी इस प्राक्कल्पना की सावधानीपूर्वक परीक्षा की जा सकती है वहाँ यह गलत सिद्ध होती है।

जो लोग भौतिक जगत में अनियमितता या अस्थिर बुद्धि की अभिलाषा करते हैं वे यह अनुभव नहीं कर सके कि इसका अर्थ क्या होगा। प्रकृति की गतिविधि के सम्बन्ध में सभी अनुमान कारणात्मक हैं और यदि प्रकृति कारणात्मक नियमों के अनुवर्ती नहीं है तो ये सभी अनुमान गलत सिद्ध होंगे, उस स्थिति में अपने व्यक्तिगत अनुभव से बाहर हम किसी भी चीज का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकेंगे वस्तुतः शुद्ध अर्थों में हम केवल वर्तमान क्षण का अपना अनुभव मात्र ही पा सकेंगे क्योंकि हमारी सम्पूर्ण स्मृति कारणात्मक नियमों पर निर्भर करती है। यदि हम दूसरे लोगों के अस्तित्व का अनुमान नहीं कर सकते अथवा स्वयं अपने अतीत की भी अनुमिति यदि असम्भव है, तो ईश्वर का अथवा धर्मशास्त्रियों की अभिलषित किसी भी अन्य चीज का अनुमान तो और भी नहीं किया जा सकता। कारणता का सिद्धान्त सत्य भी हो सकता है और असत्य भी किन्तु जिस व्यक्ति को उसकी असत्यता की प्राक्कल्पना में प्रसन्नता की अनुभूति होती है वह अपने सिद्धान्त के निहित अर्थों को समझने में असफल है। जिन कारणात्मक नियमों को वह अपने लिए सुविधाजनक पाता है उनको तो बिना किसी प्रकार

की कुछ चपड लिए प्राय स्वीकार कर लेता है, जैसे, उदाहरण के लिए, यह नियम कि उसका भोजन उसकी पुष्टि करेगा और उसका बैंक उसके चैकों का तब तक भुगतान करता रहेगा जब तक उसके खाते में पैसे रहेंगे, किन्तु जो नियम उसके लिए असुविधाजनक होते हैं उन्हे वह अस्वीकार कर देता है। किन्तु यह प्रक्रिया कुछ इतनी अधिक सरल है कि इस पर हँसी आती है।

वस्तुत ऐसी कल्पना करने का कोई भी उपयुक्त कारण नहीं है कि परमाणुओं का आचरण नियमाधीन नहीं है। एकल परमाणुओं के आचरण पर अभी हाल ही में प्रायोगिक पद्धतियों द्वारा कुछ प्रकाश डाला जा सका है, और यदि अभी तक उनके आचरण की पूरी पूरी खोज नहीं की जा सकी तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह सिद्ध कर सकना तो तात्विक और सैद्धान्तिक दृष्टि से असम्भव है कि कोई भी तत्व प्रपंच नियमों का वशवर्ती नहीं है। केवल इतना ही निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यदि कोई नियम हैं तो अभी तक उनकी खोज नहीं की जा सकी। हम चाहें तो यह कह सकते हैं कि जो लोग परमाणु-सम्बन्धी खोज करते रहे हैं वे इतने प्रवीण और कुशल हैं कि यदि कोई नियम होते तो उन्होंने अवश्य उनकी खोज कर ली होती। किन्तु मैं ऐसा नहीं मानता कि इस विषय के सम्बन्ध में कोई सिद्धान्त निर्धारित करने के लिए यह एक पर्याप्त ठोस आधार है।

(२) ईश्वर गणितज्ञ के रूप में—सर आर्थर एडिंग्टन धर्म का निगमन इस तथ्य से करते हैं कि परमाणु गणितीय नियमों का पालन नहीं करते। इसके विपरीत सर जेम्स जीन्स धर्म का निगमन इस तथ्य से करते हैं कि परमाणु गणितीय नियमों का पालन करते हैं और धर्मशास्त्रियों ने इन दोनों ही तर्कों को समान उत्साह के साथ स्वीकार कर लिया है। स्पष्टत उनकी धारणा यह है कि संगति की आवश्यकता केवल शुष्क तर्क में होती है और गम्भीर धार्मिक भावनाओं के क्षेत्र में संगति का कोई हस्तक्षेप न होना चाहिए।

एडिंग्टन के तर्क की परख-परीक्षा हमने परमाणुओं के उद्भजन की प्रक्रिया के आधार पर की है। आइए, अब जीन्स के तर्क की परीक्षा तारों के शीतल होने की पद्धति के आधार पर करें। जीन्स की धारणा का ईश्वर बहुत ही निरापद और शुद्ध आत्मा है। जीन्स का कहना है कि वह न तो जीवविज्ञानी है और न इंजीनियर बल्कि वह एक शुद्ध गणितज्ञ है ('दि मिस्टीरियस यूनीवर्स', पृष्ठ १३४)। मैं स्वीकार करता हूँ कि इस प्रकार का ईश्वर मुझे उस ईश्वर की अपेक्षा अधिक पसन्द है जिसकी अवधारणा बहुत बड़े व्यापारी के समान की गई है, किन्तु इसका कारण निस्सन्देह यही है कि मुझे कर्म की अपेक्षा चिंतन अधिक पसन्द है। इससे एक यह सुझाव भी मिलता है कि धर्म-ज्ञान पर मानसिक स्थिति के प्रभाव की विवेचना करते हुए एक ग्रन्थ लिखा जा सकता है। जिस

व्यक्ति की मासपेशियाँ दृढ और तनी हुई होती हैं वह कर्मशील ईश्वर पर विश्वास करता है, और जिस व्यक्ति की मासपेशियाँ ढीली और शिथिल होती हैं वह विचारपरक और चिन्तनशील ईश्वर पर विश्वास करता है। सर जेम्स जीन्स को अपने ईश्वरपरक तर्कों पर निस्सन्देह पूरा विश्वास है, शायद इसीलिए वे विवादवादियों के तर्कों का अधिक आदर की दृष्टि से नहीं देखते। रहस्यमय विश्व के सम्बन्ध में लिखी गई उनकी पुस्तक का प्रारम्भ सूय की जीवनी से होता है, शायद यह भी कहा जा सकता है कि यह सूय की समाधि के लिए लिखा गया संस्मरणात्मक लेख है। ऐसा लगता है कि लगभग एक लाख तारों में से केवल एक ही तारे के ग्रह होते हैं किन्तु लगभग दो सौ करोड वर्ष पहले सूय का मिलन, संयोग और सौभाग्यवश, एक दूसरे तारे से हुआ और उसी से यह वर्तमान ग्रहीय संतति की उत्पत्ति हुई। जिन तारों के अपने ग्रह नहीं है उनमें जीवन की उत्पत्ति नहीं हो सकती जिसका तात्पय यह हुआ कि इस विश्व में जीवन एक बहुत ही दुलभ तत्व है। सर जेम्स जीन्स कहते हैं "यह बात अविश्वसनीय प्रतीत होती है कि इस विश्व की संरचना मुख्यत हमारे जैसे जीवन की उत्पत्ति के लिए की गई हो। अगर ऐसा होता तो प्रयुक्त यन्त्रावलि की विशालता तथा उत्पादन के परिमाण के बीच कुछ अधिक अच्छे अनुपात की आशा निश्चित रूप से की जा सकती थी।" और विश्व के इस दुलभ स्थान में भी जीवन की सम्भावना अत्यधिक उष्ण और अत्यधिक शीत मौसमों के बीच के अन्तराल में ही है। 'हमारी जाति का यह दुर्भाग्य है कि उसे सम्भवत शीत के कारण मर जाना पडेगा, जबकि इस विश्व का अधिकांश पदाथ भाग इतना उष्ण बना रहेगा कि उस पर जीवन का अस्तित्व सम्भव न होगा।' जो दर्शनशास्त्री इस प्रकार तर्क करते हैं कि जसे इस सृष्टि का प्रयोजन ही मानव जीवन हो उनकी ज्योतिष भी उतनी ही दोषपूर्ण मालूम होती है जितना दोषपूर्ण उनके द्वारा किया गया स्वयं अपना और अपने सजातीय जीवों का मूल्यांकन है। आधुनिक भौतिकी द्रव्य, विकिरण आपेक्षिकता और ईथर पर लिखे गए जीन्स के प्रशंसनीय अध्यायों का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत करने का प्रयत्न मैं नहीं करूँगा वे पहले से ही यथासम्भव संक्षिप्त हैं और उनका सारांश देने में लेखक के प्रति न्याय न हो सकेगा। फिर भी पाठक की जिज्ञासा जगाने के लिए मैं प्रोफेसर जान्स के शब्दों को उद्धृत करूँगा

संक्षेप में आपेक्षिकता के सिद्धान्त द्वारा जिस नए विश्व का ज्ञान हमें हुआ है उसकी अभिव्यक्ति सरल और परिचित शब्दावली में इस प्रकार की जा सकती है कि वह साबुन का एक बुलबुला जसा है जिसका ऊपरी धरातल असमान और नालीदार है। हमारा विश्व साबुन के बुलबुले का भीतरी हिस्सा नहीं है बल्कि उसका ऊपरी धरातल है और हम यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए

कि जहां साबुन के बुलबुले की केवल दो विमाएँ हैं वहां हमारे विश्व-बुदबुद में चार विमाएँ हैं—तीन विमाएँ दिशा की और एक विमा काल की। और जिस द्रव्य से यह बुदबुद बनाया गया है वह—साबुन की फिल्म—शून्य आकाश है जिसकी कलई शून्य काल पर की गई है।"

पुस्तक के अन्तिम अध्याय में यह तर्क पेश किया गया है कि इस साबुन के बुलबुले को एक गणितीय देवता ने गणितीय गुण धर्मों में अपनी अभिरुचि के कारण उड़ाया है। धर्मशास्त्रियों को पुस्तक के इस अंश से बहुत प्रसन्नता हुई है। धर्मशास्त्री लोग छोटे मोटे दान-दान के लिए भी बहुत कृतज्ञ होने लगे हैं, और वे इस बात की अधिक चिन्ता नहीं करते कि विज्ञानी लोग किस प्रकार का ईश्वर उन्हें सौंप रहे हैं, बशर्ते कि ईश्वर नाम का कुछ-न-कुछ उन्हें उपलब्ध होता रहे। सर जेम्स जीन्स का ईश्वर, प्लेटो के ईश्वर की भांति, ऐसा है कि उसे गणित के प्रश्न हल करने का उन्माद-सा है किन्तु शुद्ध गणितज्ञ होने के नाते उसे इस बात की कतई परवाह नहीं है कि प्रश्नों का सम्बन्ध किस बात से है। अपने तर्क की भूमिका में दुरूह और आधुनिक भौतिकी की काफी चर्चा करके महोदय लेखक ने गम्भीर विद्वत्ता का एक ऐसा वातावरण बना दिया है जो अन्यथा उस पुस्तक में न उपलब्ध होता। सार रूप में लेखक का तर्क इस प्रकार है—चूंकि दो सेब और दो सेब मिलकर चार सेब होते हैं इसलिए यह निष्कर्ष निकला कि स्रष्टा को इस बात का निश्चित ज्ञान था कि दो और दो मिलकर चार होते हैं। यह आपत्ति उठाई जा सकती है कि, चूंकि एक पुरुष और एक स्त्री मिलकर कभी कभी तीन भी हो जाते हैं इसलिए स्रष्टा प्रश्न हल करने में उतना दक्ष नहीं था जितना दक्ष होने की आशा उससे की जा सकती है। अब कुछ गम्भीरता के साथ बात करें—सर जेम्स जीन्स स्पष्टतः पादरी बर्कले के सिद्धान्त को अपनाते हैं जिसके अनुसार केवल विचारों का ही अस्तित्व है और बाह्य जगत में जो स्थायित्व हमें दिखाई देती है उसका कारण यह तथ्य है कि ईश्वर काफी लम्बे समय तक चीजों के बारे में सोचता रहता है। उदाहरण के लिए भौतिकी पदार्थों का अस्तित्व उस समय समाप्त नहीं हो जाता जब कोई उन्हें देख नहीं रहा होता, क्योंकि ईश्वर तो बराबर हर समय उनकी ओर देखता रहता है, अथवा इसलिए कि ये पदार्थ ईश्वर के मन में हर समय विचार रूप में रहते हैं। उनका कहना है कि यह विश्व शुद्ध विचार के रूप में ही सर्वोत्तम रीति से चित्रित किया जा सकता है, यद्यपि फिर भी यह चित्र बहुत ही अपूर्ण और अपर्याप्त होगा, इस विचार को हम किसी अन्य व्यापक शब्द के अभाव में, एक गणितीय विचारक का विचार कह सकते हैं।' कुछ और आगे चलकर हमें बताया गया है कि ईश्वर के विचारों का नियमन करने वाले नियम वही हैं जो हमारे जागरण काल के प्रपंच का नियमन करते हैं किन्तु स्पष्टतः हमारे सपनों

का नियमन उनके द्वारा नहीं होता।

इसमें सन्देह नहीं कि यह तर्क उस औपचारिक परिशुद्धता के साथ नहीं प्रस्तुत किया गया जिसकी माँग सर जेम्स एक ऐसे विषय में अवश्य ही करते जिसके साथ उनके मनोभावों का कोई सम्बन्ध न होता। विवरणों की सारी बात हम छोड़ भी दें, फिर भी सर जेम्स ने यहाँ एक मूलभूत तर्काभास की गलती की है, उन्होंने शुद्ध गणित और व्यावहारिक गणित के क्षेत्रों में गड़बड़ी की है। शुद्ध गणित कभी भी प्रेक्षण पर आधारित नहीं रहता। उसका सम्बन्ध प्रतीकों से है, और यह सिद्ध करने से है कि प्रतीकों के विभिन्न संकलनों का अर्थ एक ही होता है। अपने इस प्रतीकात्मक स्वरूप के कारण ही शुद्ध गणित का अध्ययन प्रयोगों की सहायता लिए बिना ही किया जा सकता है। इसके विपरीत भौतिकी चाहे जितना अधिक गणितीय हो जाए, वह बराबर प्रेक्षण और प्रयोग पर आधारित रहती है, अर्थात् अंतिम रूप में ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष किए जाने वाले ज्ञान पर आधारित रहती है। गणितज्ञ तो सभी प्रकार की गणित प्रस्तुत करता है, किन्तु उसके द्वारा प्रस्तुत गणित में से भौतिक विज्ञानी के लिए कुछ ही उपयोगी होती है। और गणित का प्रयोग करते हुए भौतिक विज्ञानी जिन चीजों की स्थापना करता है वे उनसे बिल्कुल भिन्न होती हैं जिनकी स्थापना शुद्ध गणितज्ञ करता है। भौतिक विज्ञानी तो यह कहता है कि जिन गणितीय प्रतीकों का वह उपयोग कर रहा है उनका उपयोग ज्ञानेन्द्रिय संस्कारों की व्याख्या में, उनके अनुबंधों में और उनकी प्रागुक्ति में किया जा सकता है। उसका कार्य चाहे जितना अमूर्त या भावसूक्ष्म हो, उसका सम्बन्ध अनुभव से कभी नहीं टूटता। यह देखा गया है कि गणितीय सूत्रों द्वारा कुछ ऐसे नियमों की अभिव्यक्ति की जा सकती है जो हमारे प्रत्यक्ष जगत का नियमन करते हैं। जीन्स का तर्क यह है कि इस जगत की सृष्टि एक गणितज्ञ द्वारा इन नियमों का प्रवर्तन देखने और उससे आनन्द लेने के लिए की गई होगी। मुझे इस बात में सन्देह नहीं है कि यदि इस तर्क को औपचारिक रूप से प्रस्तुत करने का प्रयत्न जीन्स ने किया होता तो उन्हें स्पष्ट हो गया होता कि इसमें कितना तर्काभास है। हम इस तर्काभास को देखें। यह बिल्कुल सम्भाव्य मालूम होता है कि कोई भी जगत क्यों न हो, एक कुशल गणितज्ञ उसे सामान्य नियमों की व्याप्ति के भीतर ला सकता है। और यदि ऐसा है तो आधुनिक भौतिकी का यह गणितीय स्वरूप विश्व के सम्बन्ध में ज्ञात होने वाला कोई तथ्य नहीं है बल्कि भौतिक विज्ञानी के कौशल की ही प्रशस्ति है। दूसरी बात यह है कि ईश्वर यदि उतना ही परिशुद्ध शुद्ध गणितज्ञ होता जितना उसके समर्थक सर जेम्स उसे मानते हैं, तो वह अपने विचारों को इतना घोर बाह्य अस्तित्व देने की इच्छा न करता। ज्यामितीय माडल बनाने और वक्र रेखाएं उतारने की इच्छा तो स्कूली लड़का

की अवस्था के अनुकूल होती है और कोई भी आचार्य उसे एक निम्न स्तरीय कार्य मानेगा। फिर भी सर जेम्स जीन्स अपने स्रष्टा को इसी इच्छा का पात्र बनाते हैं। वे हमें समझाते हैं कि यह संसार विचारों से निर्मित है। ऐसा लगता है कि इन विचारों की तीन श्रेणियाँ हैं—ईश्वर के विचार, जागृत अवस्था में मनुष्यों के विचार और सुप्तावस्था में मनुष्यों के विचार, जब वे बुरे-बुरे सपने देखते हैं। यह बात कुछ स्पष्ट रूप से समझ में नहीं आती कि विश्व की पूर्णता में अन्तिम दो प्रकार के विचार क्या योग देते हैं, क्योंकि यह तो साफ है कि ईश्वर के विचार सर्वोत्तम विचार हैं और यह बात भी समझ में नहीं आती कि इतना वैचारिक गड़बड़घोटाला पैदा करने से लाभ क्या हुआ? किसी समय एक अत्यन्त विद्वान और परम्परानिष्ठ धर्मशास्त्री से मेरा परिचय हुआ था, जिसने मुझे बताया था कि अपने लम्बे अध्ययन के परिणामस्वरूप उसे और हर बात तो समझ में आ गई है, केवल यही बात समझ में नहीं आई कि ईश्वर ने इस जगत की सृष्टि क्यों की। मैं जेम्स जीन्स का ध्यान मैं इस पहेली की ओर आकर्षित करता हूँ और मुझे आशा है कि शीघ्र ही इसका विवेचन करके वह धर्माचार्यों को कुछ और सन्तोष-सान्त्वना देंगे।

(३) ईश्वर स्रष्टा के रूप में—वर्तमान समय में जो अत्यन्त गम्भीर कठिनाइयाँ विज्ञान के सामने हैं उनमें से एक कठिनाई तो इस तथ्य से उत्पन्न हुई है कि हमारा यह विश्व धीरे धीरे क्षीण और समाप्त होता प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए जगत में रेडियो एक्टिव तत्व हैं। ये तत्व निरन्तर अल्प सरल तत्वों में विघटित होते जा रहे हैं और ऐसी कोई प्रक्रिया मालूम नहीं है जिसके द्वारा फिर से उनका संगठन किया जा सके। फिर भी विश्व के क्षीण और समाप्त होने जाने का यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण और कठिन पक्ष नहीं है। यद्यपि हमें ऐसी कोई प्राकृतिक प्रक्रिया नहीं मालूम है जिसके द्वारा सरलतर तत्वों से जटिल तत्वों का निर्माण होता हो फिर भी हम ऐसी प्रक्रियाओं की कल्पना कर सकते हैं और सम्भव है कि कहीं-न-कहीं पर ऐसी प्रक्रियाएँ सक्रिय भी हों। किन्तु जब हम ऊष्मागतिविज्ञान के दूसरे नियम को लेते हैं तब हमारे सामने एक और अधिक आधारभूत कठिनाई पैदा होती है।

ऊष्मागतिविज्ञान का दूसरा नियम, मोटे तौर पर, यह कहता है कि जिन चीजों को यों ही छोड़ दिया जाता है वे धीरे धीरे अव्यवस्थित होने लगती हैं और फिर दोबारा अपने आप शुद्ध व्यवस्थित रूप में नहीं आ पाती। ऐसा लगता है कि किसी समय यह विश्व बिल्कुल व्यवस्थित शुद्ध रूप में था, हर चीज अपने उपयुक्त स्थान में थी, और तब से लेकर आज तक वह बराबर अधिकाधिक अव्यवस्थित होता गया है और अब ऐसी स्थिति आ गई है कि जब

तक उसका आमूल संशोधन न किया जाए तब तक उसे उस पुरातन व्यवस्थित स्थिति में नहीं लाया जा सकता। ऊष्मागतिविज्ञान के दूसरे नियम के मूल रूप में जिसकी स्थापना की गई थी वह तो इससे बहुत कम सामान्य बात थी। वह तो यह बात थी कि जब समीपस्थ दो पिण्डों में भिन्न तापमान होगा तो जिसका तापमान अधिक है वह ठण्डा होता जाएगा और जो ठण्डा है वह तब तक गरम होता जाएगा जब तक दोनों पिण्डों का तापमान बराबर नहीं हो जाता। इस रूप में तो यह नियम एक ऐसे तथ्य का प्रतिपादन करता है जिससे सभी लोग परिचित हैं अगर आप एक लाल जलती हुई शलाका बाहर खड़ी कर दें तो वह ठण्डी होती जाएगी और उसके चारों ओर की हवा गरम होती जाएगी। किन्तु शीघ्र ही यह देखा गया कि इस नियम का एक बहुत अधिक सामान्य अर्थ भी है। अत्यन्त गरम पिण्डों के कण अत्यन्त तीव्र गति में रहते हैं जबकि शीतल पिण्डों के कणों की गति अधिक धीमी होती है। अन्ततः जब तेजी से गतिशील अनेक कण और धीमी गति से चलने वाले कुछ अन्य कण एक ही क्षेत्र में आ जाते हैं तब तीव्र गति वाले कण धीमी गति वाले कणों से टकराते हैं और अन्त में दोनों की गति का वेग औसत और समान हो जाता है। सभी प्रकार की ऊर्जा पर इसी प्रकार का सत्य लागू होता है। जब कभी किसी एक क्षेत्र में ऊर्जा की मात्रा बहुत अधिक होती है और समीप के दूसरे क्षेत्र में ऊर्जा की मात्रा बहुत कम होती है तब एक क्षेत्र से ऊर्जा तब तक दूसरे क्षेत्र की ओर गतिशील रहती है जब तक दोनों क्षेत्रों में समानता नहीं स्थापित हो जाती। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को लोकतन्त्र उन्मुख प्रवृत्ति कहा जा सकता है। यह एक अप्रत्यावर्ती प्रक्रिया है। स्पष्ट प्रतीत होता है कि अतीत काल में आज की अपेक्षा ऊर्जा बहुत अधिक असमान रूप में वितरित रही है। इस तथ्य को देखते हुए कि अब भौतिक विश्व को परिमित माना जाता है और कुछ निश्चित—यद्यपि अज्ञात—संख्या के इलेक्ट्रानों और प्रोटानों से निर्मित माना जाता है, कुछ स्थानों में अन्य स्थानों के विपरीत ऊर्जा के सम्भव संचय या एकत्रीकरण की एक सैद्धान्तिक सीमा तो है ही। जगत के पिछले इतिहास को जब हम खोजते हैं तो कुछ निश्चित अवधि के बाद (जो चार हजार और चार वर्षों से तो अधिक ही है) जगत को एक ऐसी स्थिति में पहुँच जाते हैं जिसके पहले, यदि ऊष्मागतिविज्ञान का दूसरा नियम उस समय भी मान्य था तो, अन्य किसी दूसरी स्थिति की सम्भावना नहीं हो सकती। जगत की यह प्रारम्भिक स्थिति वही होगी जिसमें ऊर्जा का वितरण उतना असमान रहा होगा जितना असमान होना सम्भव है, जैसा कि एडिंग्टन कहते हैं[१]

१　देखिए एडिंग्टन की पुस्तक 'दि नेचर ऑफ दि फिजिकल वर्ल्ड' १९२८ पृ० ८३ और आगे।

"एक अपरिमित असीम अतीत से उत्पन्न कठिनाई तो भयावह है। यह तो एक अकल्पनीय अवधारणा है कि हम एक अनन्त काल की रचना-साधना के उत्तराधिकारी हैं, और यह भी कुछ कम अकल्पनीय अवधारणा नहीं है कि कभी कोई ऐसा क्षण भी था जिसके पहले कोई क्षण नहीं रहा।

काल के प्रारम्भ की यह पहेली हम और भी अधिक परेशान करती यदि हमारे और असीम अतीत के बीच आने वाली एक और कठिनाई ने हमें अभिभूत न कर लिया होता। जगत के ह्रासमान होने और क्षीण होते जाने के तथ्य का अध्ययन हम करते आ रहे हैं, यदि हमारे विचार इस सम्बन्ध में ठीक हैं तो काल के प्रारम्भ से लेकर आज तक की अवधि के बीच में कहीं-न-कहीं इस विश्व में नए सिरे से चाबी भरे जाने की कल्पना हमें करनी ही पड़ेगी।

अतीत की ओर बराबर बढ़ते जाने पर हम एक ऐसा जगत मिलता है जिसमें अधिकाधिक मात्रा में संगठन और व्यवस्था विद्यमान थी। यदि बीच ही में हमें रोकने वाली कोई बाधा न पड़े तो हम एक ऐसे क्षण पर पहुँच जाएँगे जब इस जगत की ऊर्जा पूर्णतः संगठित और व्यवस्थित थी और उसमें एक भी अनियमित तत्व नहीं था। प्राकृतिक नियम की वर्तमान व्यवस्था के अधीन *इससे भी आगे अतीत की खोज सम्भव है।* मेरे विचार से 'पूर्णतः *संगठित* और व्यवस्थित' पद ऐसा नहीं है जो सोपाधिक हो और समाधान माँगता हो। जिस व्यवस्था और संगठन से हमारा सम्बन्ध है उसकी परिशुद्ध परिभाषा सम्भव है और एक ऐसी सीमा है जहाँ पहुँचने पर यह संगठन पूर्ण हो जाता है। उच्च और उच्चतर संगठन की कोई अनन्त शृंखला नहीं है, और मेरे विचार से अन्तिम सीमा भी ऐसी नहीं है कि उस तक अधिकाधिक मन्द गति से पहुँचा जा सके। पूर्ण व्यवस्था अपूर्ण व्यवस्था की अपेक्षा क्षय से अधिक निरापद नहीं होती।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पिछली तीन चौथाई शताब्दी के दौरान भौतिकी की स्थापनाओं में एक ऐसी तिथि की अभिधारणा है जिस दिन इस विश्व की सत्ताएँ या तो उच्चतम व्यवस्थित स्थिति में उत्पन्न की गई या फिर पूर्व स्थित सत्ताओं में उच्चतम व्यवस्था स्थापित की गई, जिसे तब से लेकर आज तक ये सत्ताएँ क्षीण करती आ रही हैं। और फिर, यह व्यवस्था निश्चित रूप से संयोगजन्य नहीं है, बल्कि इसका उल्टा है। यह व्यवस्था आकस्मिक रूप से घटित होने वाली चीज़ नहीं है।

काफी समय तक इसका उपयोग एक अत्यन्त आक्रामक भौतिकवाद के विरुद्ध सबल तर्क के रूप में किया गया है। इस तथ्य को वैज्ञानिक प्रमाण के रूप में द्वारा उल्लेख किया गया है कि स्रष्टा ने किसी न किसी समय इस सृष्टि का में हस्तक्षेप किया था, और यह समय आज से अनन्त काल पहले नहीं ... ।

इस बात का समथन नहीं कर रहा कि इसके आधार पर जल्दबाजी म कोई निष्कप निकाले जाएँ। विज्ञानियों और धमशास्त्रियों दोनों का ही इस अति सरल धमशास्त्रीय सिद्धान्त को, जो (उपयुक्त छदम वेश म) आजकल ऊष्मा गतिविज्ञान की प्रत्येक पाठ्य पुस्तक मे पाया जाता है, कुछ कच्चा और अशुद्ध ही मानना चाहिए कि करोडों वष पहले ईश्वर ने इस भौतिक विश्व की चाबी भर दी थी और तब से इसे सयोग के सहारे छोड दिया है। इस सिद्धान्त को ऊष्मागतिविज्ञान की कामचलाऊ प्राक्कल्पना मानना चाहिए, उसके विश्वास की घोषणा नहीं। यह उन निष्कर्षों म से है जिनसे बच निकलने का कोई तक सगत उपाय हम नहीं दिखाई देता कमी इसम केवल यही है कि यह अविश्वस नीय है। एक विज्ञानी के रूप म मैं इस बात पर कतई विश्वास नहीं करता कि जगत की यह वतमान व्यवस्था अचानक एकाएक शुरू हो गई अवज्ञानिक रूप से मैं दैवी प्रकृति की निहित अनिरन्तरता का स्वीकार करने के लिए भी उसी प्रकार तैयार नहीं हूँ। किन्तु इस गतिरोध को समाप्त करने के सम्बध म भी मैं कोई सुझाव नहीं दे सकता।'

यह स्पष्ट है कि इस वक्तव्य म एडिंग्टन ने यह अनुमिति नहीं प्रस्तुत की कि स्रष्टा ने सृष्टि रचना का कोई निश्चित काय किया। ऐसा न करने का एकमात्र कारण यही है कि एडिंग्टन को यह विचार पसन्द नहीं है। जिस निष्कप को व अस्वीकार करते हैं उसको स्थापित करने वाला वज्ञानिक तक उस तक की अपेक्षा कहीं अधिक सबल है जो स्वतन्त्र सकल्प के समथन म प्रस्तुत किया जाता है क्योंकि वह अज्ञान पर आधारित है जबकि जिस तक पर हम इस समय विचार कर रहे हैं वह ज्ञान पर आधारित है। इसस यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि विज्ञानवेत्ता लोग अपन विज्ञान से जो धमशास्त्रीय निष्कष निकालते हैं वे केवल उन्ह आनन्द देने वाले होते हैं और एसे नहीं होते जिनको ग्रहण कर जाना उनकी परम्परा निष्ठा के लिए कठिन हो, यद्यपि तक उन्हें एसा ही करने के लिए आदेश देता है। मेरे विचार से हम स्वीकार कर लेना चाहिए कि इस दृष्टिकोण के समथन म बहुत-कुछ कहा जा सकता है कि किसी अनति असी मित अतीत काल म इस विश्व का प्रारम्भ हुआ था, विज्ञानी लोग जो दूसरे धमशास्त्रीय निष्कष स्वीकार करने के लिए हाल ही म हमारे ऊपर दबाव डालने लगे हैं उनके पक्ष म इतना अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता। इस तक म एसी कोई निश्चयात्मकता नहीं है जिसका निराकरण किया जा सके। ऊष्मा गतिविज्ञान का दूसरा नियम हर समय और हर स्थान म सत्य नहीं भी सिद्ध हो सकता, अथवा हमारा यह सोचना भी गलत हो सकता है कि यह विश्व स्थानिक दृष्टि स सीमित है, किन्तु इस प्रकार के तक जैसे होते हैं उनके अनु सार यह तक भी अच्छा है, और मेरे विचार से हम स्थायी रूप स इस

प्राक्कल्पना को स्वीकार कर लेना चाहिए कि किसी निश्चित—यद्यपि अज्ञात—समय में इस विश्व का प्रारम्भ हुआ था।

तो क्या इससे हम यह अनुमान करें कि इस जगत की रचना किसी स्रष्टा द्वारा की गई थी? यदि मान्य वैज्ञानिक अनुमिति के सामान्य नियमों का स्वीकार करना है तो निश्चय ही हम इस अनुमिति को स्वीकार नहीं कर सकते। ऐसा कोई कारण नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जाए कि इस विश्व का प्रारम्भ स्वतःस्फूर्त नहीं है केवल यह कुछ अदभुत-सा लगता है कि यह विश्व स्वतःस्फूर्त हो किन्तु प्रकृति का ऐसा कोई नियम नहीं है कि जो बातें हम अदभुत मालूम हों वे कभी घटित न हों। एक स्रष्टा या कर्ता की अनुमिति करने का अर्थ है एक कारण की अनुमिति करना, और विज्ञान में कारणात्मक अनुमितियाँ वहीं स्वीकार्य हैं जहाँ वे प्रेक्षित कारणात्मक नियमों से उद्भूत हों। अनस्तित्व से सृष्टि एक ऐसी घटना है जिसका प्रेक्षण नहीं किया गया। इसलिए इस जगत की सृष्टि एक स्रष्टा द्वारा की गई। मानने का कोई ऐसा कारण नहीं है जो इस कल्पना के पक्ष में रखे जा सकने वाले कारण से अधिक सबल हों कि यह सृष्टि स्वतःस्फूर्त है। दोनों ही उन कारणात्मक नियमों का समान रूप से खण्डन करते हैं जिनका हम प्रेक्षण कर सकते हैं।

जहाँ तक मैं समझ सकता हूँ इस प्राक्कल्पना में भी कोई विशेष सांत्वना नहीं मिलती कि इस जगत की रचना एक स्रष्टा द्वारा की गई थी। ऐसा चाहे हुआ हो और चाहे न हुआ हो, जगत जो है है। यदि कोई व्यक्ति रद्दी शराब की एक बोतल आपके हाथों बेचने की कोशिश करता केवल इतना बता देने से आप उस शराब को अधिक पसन्द नहीं करने लगेंगे कि वह अंगूर के रस से न बनाई जाकर एक प्रयोगशाला में बनाई गई शराब है। इसी प्रकार मुझे इस कल्पना में कोई सांत्वना मिलती नहीं दिखाई देती कि अत्यन्त अप्रीतिकर विश्व किसी निश्चित प्रयोजन से बनाया गया था।

कुछ लोग—जिनमें एडिंग्टन शामिल नहीं हैं—इस विचार से सन्तोष ग्रहण करते हैं कि यदि ईश्वर ने इस जगत को बनाया है तो इसके पूर्णतः क्षीण हो जाने पर वह फिर दोबारा इसको चाबी भर सकता है। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मेरी समझ में नहीं आता कि कोई अप्रीतिकर प्रक्रिया केवल इस विचार से कम कम अप्रीतिकर हो जाती है कि वह अनन्त बार तक दोहराई जाती रहेगी। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि मेरे ऐसा सोचने का कारण मेरे अन्दर धार्मिक भावना की कमी है।

इस विषय को शुद्ध बौद्धिक तर्क सार रूप में इस प्रकार रखा जा सकता है स्रष्टा भौतिकी के नियमों का अनुगमन करने वाला है, या नहीं? यदि वह भौतिकी के नियमों का पालन करने वाला नहीं है तो भौतिक प्रपंच से

उसकी अनुमिति भी नही की जा सकती, क्योंकि कोई भी भौतिक कारणात्मक नियम उसकी स्थापना नही कर सकता, और यदि वह भौतिकी के नियमो को स्वीकार करने वाला है तो हमे ऊष्मागतिविज्ञान का दूसरा नियम उस पर लागू करना होगा और यह कल्पना करनी होगी कि किसी सुदूर अतीत म उसकी भी रचना करनी पडी होगी। किन्तु ऐसी स्थिति म तो ईश्वर के अस्तित्व प्रयोजन की ही समाप्ति हो जाएगी। यह सचमुच एक अदभुत बात है कि केवल भौतिक विज्ञानी ही नही, धर्मशास्त्री भी, आधुनिक भौतिकी के तर्कों म कुछ नई बात उपलब्ध करते हुए प्रतीत होते है। शायद भौतिक विज्ञानियो से धर्मशास्त्र का इतिहास जानने की आशा बहुत कम की जा सकती है, किन्तु धर्मशास्त्रियो को तो इस बात का बोध होना ही चाहिए कि हम आधुनिक तर्को के प्रतिरूप इसके पहले भी मौजूद रहे हैं। जैसा कि हम देख चुके हैं, स्वतत्र सकल्प और मस्तिष्क सम्बन्धी एडिंग्टन का तक बहुत कुछ देकात के तक के समानान्तर चलता है। जीस का तक तो प्लेटो और बकले के तर्कों का मिश्र रूप है और भौतिकी म इसके लिए वसा ही कोई आधिकारिक प्रमाण नही है जसे इन दोनो दार्शनिको के जमाने मे नही था। काट ने इस तक को अत्यधिक स्पष्ट रूप म प्रस्तुत किया है कि इस जगत का प्रारम्भ काल दृष्टि से निश्चय ही कभी-न-कभी हुआ होगा किन्तु काट ही उसी प्रबल रूप म इस तक को भी पेश करते हैं कि काल दृष्टि से इस जगत् का प्रारम्भ हुआ ही नही। हमारा युग तो नई खोजो और नए अन्वेषणो की बहुलता के कारण अहम्मन्य हो गया है किन्तु दर्शन के क्षेत्र म अतीत युगो की अपेक्षा वह अपने आपको जितना अधिक प्रगतिशील मानता है, वास्तव म उससे बहुत कम प्रगति कर पाया है।

आजकल पुराने जमाने के भौतिकवाद के सम्बन्ध मे, और आधुनिक भौतिक विज्ञानियो द्वारा उसके खण्डन म हम बहुत कुछ सुनते हैं। तथ्य तो यह है कि भौतिकी की तकनीक म एक परिवर्तन आ गया है। पुराने जमाने म, दार्शनिक लोग चाहे कुछ भी कहे, तकनीकी दृष्टि से भौतिकी इस मान्यता को लेकर चलती थी कि पदार्थ ठोस लघु पिण्डो से बना हुआ है। लेकिन अब वह ऐसा नहीं करती। किन्तु डेमोक्राइटस के युग के बाद शायद किसी भी दार्शनिक ने कभी ठोस लघु पिण्डो पर विश्वास नही किया। बर्कले और ह्यूम ने तो निश्चय ही नही किया और न लीबनिज काट और हीगल ने ही। मैक तो स्वय एक भौतिक विज्ञानी होते हुए, एक बिल्कुल भिन्न सिद्धान्त की प्रतिष्ठा कर गए, और प्रत्येक विज्ञानी जिसे दर्शनशास्त्र का तनिक भी सम्यक् उपज्ञान था, यह स्वीकार करने के लिए तैयार था कि ठोस लघुपिण्ड एक तकनीकी युक्ति के अलावा और कुछ नही थे। उस अर्थ म तो भौतिकवाद मर चुका है किन्तु एक दूसरे और अधिक महत्त्वपूर्ण अर्थ म वह पहले की अपेक्षा अधिक जीवन्त है। महत्त्वपूर्ण

प्रश्न यह नहीं है कि पदार्थ ठोस लघु पिण्डों का बना है, अथवा अन्य किसी चीज का, महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि प्रकृति की गतिविधि भौतिकी के नियमों द्वारा निर्धारित नियमित है या नहीं। जीव विज्ञान, शरीर क्रिया विज्ञान और मनोविज्ञान में हुई प्रगति से अब पहले की अपेक्षा यह अधिक सम्भाव्य हो गया है कि सम्पूर्ण प्राकृतिक प्रपंच का संचालन और नियमन भौतिकी के नियमों द्वारा होता हो, और यही बात वास्तव में महत्त्वपूर्ण है। किन्तु इस बात को सिद्ध करने के लिए हम उन लोगों के कुछ कथनों पर विचार करना होगा जो जीवन के विज्ञानों का विवेचन अध्ययन करते हैं।

(४) विकासवादी धर्मशास्त्र—जब विकासवाद एक नया-नया सिद्धान्त था तब उसे धर्म का विरोधी माना जाता था और आज भी शुद्ध परम्परावादी उसे ऐसा ही मानते हैं। किन्तु कुछ ऐसे समर्थकों का एक सम्प्रदाय पैदा हो गया है जो विकासवाद में धीरे धीरे युगों से प्रकट होती हुई एक दैवी योजना का प्रमाण देखता है। कुछ लोग इस योजना की स्थिति स्रष्टा के मन में मानते हैं और कुछ लोग इस योजना को जीवित प्राणियों के दुर्बोध प्रयत्नों में निहित मानते हैं। पहले दृष्टिकोण के अनुसार हम लोग ईश्वर के प्रयोजनों की पूर्ति करते हैं दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार हम अपने ही प्रयोजनों की पूर्ति करते हैं, यद्यपि ये प्रयोजन, जैसा हम उन्हें जानते हैं उसकी अपेक्षा अधिक अच्छे हैं। अन्य अधिकांश विवादग्रस्त प्रश्नों की तरह विकास की प्रयोजनशीलता का प्रश्न भी विवरणों के जंजाल में उलझ गया है। काफी समय पहले जब हक्सले और ग्लैडस्टन ने 'नाइंटीथ सेंचुरी' के पृष्ठों में ईसाई धर्म के सत्य के सम्बन्ध में विवाद चलाया था, तब यह महान प्रश्न इस समस्या से उलझ गया था कि गडारिन शूकर किसी यहूदी का था या यहूदियों से भिन्न अन्य किसी का, क्योंकि यदि वह किसी यहूदी का न होकर और किसी का था तो उसकी हत्या करना व्यक्तिगत सम्पत्ति में दखल देना था जो अनुचित था, किन्तु शूकर यहूदी का होने पर उसकी हत्या में ऐसी कोई आपत्ति न थी। इसी प्रकार विकास का प्रयोजन भी कुछ इस प्रकार की समस्याओं से उलझ जाता है जैसे एमोफिला की आदतें, उलट दिए जाने पर सपुष्पी अर्चिन का व्यवहार और ऐक्सोलोटल नामक सरीसृप की जलीय अथवा स्थलीय आदतें। किन्तु इस प्रकार के प्रश्न चूंकि बहुत गम्भीर हैं इसलिए हम उन्हें विशेषज्ञों के लिए छोड़ सकते हैं।

भौतिकी से जीव विज्ञान तक संक्रमण करते हुए हम बात का भान होता है कि जैसे एक ब्रह्माण्डीय विषय से किसी संकीर्ण क्षेत्रीय विषय की ओर बढ़ रहे हैं। भौतिकी और ज्योतिष के अध्ययन में हम व्यापक विश्व का अध्ययन करते हैं, केवल विश्व के उस कोने का नहीं जिसमें हम रह रहे हैं और न उसके उन पहलुओं का जिनके उदाहरण हम स्वयं हैं। ब्रह्माण्डीय

दृष्टिकोण से जीवन एक बहुत ही महत्वहीन तत्व है बहुत थोडे-से तारो के अपने ग्रह हैं और बहुत थोडे ग्रहो म जीवन की स्थिति सम्भव है। धरती पर भी धरातल के समीपस्थ द्रव्य के बहुत अल्प अनुपात म जीवन पाया जाता है। अपने अस्तित्व के अधिकाश अतीत काल म पृथ्वी इतनी अधिक गरम थी कि उस पर जीवन सम्भव ही न था अपने भावी अस्तित्व के अधिकाश काल म वह इतनी ठडी रहेगी कि जीवन सम्भव न होगा। यह बात किसी प्रकार भी सम्भव नहा कही जा सकती कि इस समय धरती को छोडकर विश्व मे और कही जीवन का अस्तित्व नही है किन्तु यदि एक बहुत उदार अनुमान लगाकर हम यह भी मान लें कि अतरिक्ष म करीब एक लाख अन्य ग्रह एसे बिखरे है जिन पर जीवन का अस्तित्व है, तो भी यह स्वीकार करना ही पडेगा कि सम्पूर्ण सृष्टि के प्रयोजन के रूप मे सजीव पदार्थ की सत्ता अत्यन्त प्रभावहीन प्रतीत होती है। कुछ बूढे लोग ऐसे हैं जिन्हे ऐसी रसहीन लम्बी कहानिया सुनाने का शौक है जिनमे अन्तत 'कोई बात' प्रतिपादित की जाती है, अब किसी ऐसी कहानी की कल्पना कीजिए जो उन सब कहानियो से लम्बी हो जो आपने अब तक सुनी हैं किन्तु उसम प्रतिपादित की गई 'बात' सबसे छोटी हो, तो आपको जीव विज्ञानियो के अनुसार कल्पित स्रष्टा के कार्य-कलाप की काफी सही तस्वीर का अन्दाजा लग जाएगा। और फिर प्रतिपादित की गई 'बात' मालूम होने पर इस योग्य नही लगती कि उसके लिए इतनी लम्बी प्रस्तावना बाँधी जाए। मैं यह स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ कि लोमडी की पूछ मे भी कोई-न-कोई गुण होता है, सारिका के गीत म अथवा आल्प्स पर्वतीय भेड के सीगो म भी कोई गुण होता है। किन्तु विकासवादी धर्मशास्त्री गर्व के साथ जिन चीजो की ओर सकेत करता है व ये चीजें नही हैं वह तो मनुष्य की आत्मा की ओर सकेत करता है। दुर्भाग्य की बात यह है कि ऐसा कोई निष्पक्ष पच नही है जो मनुष्य जाति के गुणो के बारे म फैसला दे सके जहा तक मेरा सम्बन्ध है मैं जब मनुष्य जाति द्वारा निर्मित विषैली गैसो को जीवाणु-युद्ध सम्बन्धी उनकी खोजो को मनुष्य जाति के ओछेपन को, उनकी निर्दयता और अत्याचारो को लेकर विचार करता हू तब इस सृष्टि के सर्वोत्तम रत्न के रूप म मैं उसे आभाहीन पाता हूँ। लेकिन इस बात को जाने द।

विकास की प्रक्रिया म क्या कोई ऐसी भी चीज है जो एक प्रयोजन की प्राक्कल्पना की अपेक्षा रखती हो—प्रयोजन चाहे सहजात हो अथवा अनुभवातीत ? यह एक बडा ही महत्वपूर्ण और निर्णायक प्रश्न है। जो स्वय जीव-विज्ञानी नही है उसके लिए इस प्रश्न पर बिना हिचक कुछ कह सकना बहुत कठिन है। फिर भी प्रयोजन के समर्थन म जो तर्क मैंने देखे हैं उनम मैं कतई प्रभावित नही हुआ।

जीवों और पौधों का व्यवहार कुल मिलाकर कुछ ऐसा है जिसमें कुछ निश्चित परिणाम निकलते हैं और प्रमाण करने वाले जीव विज्ञानी उन परिणामों की व्याख्या उस व्यवहार के प्रयोजन के रूप में करता है। कम-से कम पौधों के सम्बन्ध में तो सामान्यतः जीव विज्ञानी यह स्वीकार करने के लिए तैयार हैं कि इन जैव-सघटना को इस प्रयोजन की चेतन अवधारणा नहीं होती किन्तु यदि वे इस उद्देश्य को स्रष्टा का उद्देश्य सिद्ध करना चाहते हैं तब तो यह स्वीकृति उनके लिए और भी अच्छी है। किन्तु फिर भी मैं यह नहीं समझ पाता कि यदि स्रष्टा ने वस्तुतः उस सबकी प्रायोजना बनाई है जो कुछ जैव जगत में घटित होता है, तो इतने बुद्धिमान स्रष्टा को उन प्रयोजनों की क्या आवश्यकता है जो हम उसके मत्थे मढ़ रहे हैं? और फिर वैज्ञानिक बोध की प्रगति से ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि जीवित पदार्थ का नियमन भौतिकी और रसायन शास्त्र के नियमों के अलावा और किसी चीज से किया जाता हो। उदाहरण के लिए पाचन की प्रक्रिया को ही लीजिए। अनेक जीवों में इसका सावधानीपूर्वक अध्ययन किया गया है, विशेषकर मुर्गी के बच्चों में नवजात चूजों में एक प्रतिवर्तन होता है जिसके कारण साधारणतः वे आकार वाली हर चीज पर वे चोंच चलाते हैं। कुछ अनुभव के बाद इनका यह निरुपाधिक प्रतिवर्तन, पवलाव द्वारा अधीत पद्धति के अनुसार सोपाधिक प्रतिवर्तन में बदल जाता है। छोटे बच्चों में भी यही बात देखी जा सकती है वे न केवल अपनी माता के स्तनों को चूसते हैं बल्कि हर उस चीज को चूमते हैं जिसे चूमा जा सकता है, वे कंधों, हाथों आदि से भी भोजन पाने की कोशिश करते हैं। महीनों के अनुभव के बाद ही वे अपने प्रयत्नों को स्तनों तक ही सीमित रखना सीख पाते हैं। यह चूसने की आदत शिशुओं में पहले एक निरुपाधिक प्रतिवर्तन ही होती है, उसे किसी प्रकार भी समझा-बूझा प्रयत्न नहीं कहा जा सकता। इसकी सफलता माता की चतुराई पर निर्भर करती है। चबाना और निगलना भी पहले निरुपाधिक प्रतिवर्तन ही होते हैं यद्यपि अनुभव द्वारा वे सोपाधिक बन जाते हैं। पाचन की विभिन्न स्थितियों में भोजन जिन रासायनिक प्रक्रियाओं से गुजरता है उनका सूक्ष्म अध्ययन किया गया है और उनमें से किसी के लिए भी किसी विशिष्ट तात्त्विक सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई।

एक दूसरा उदाहरण लें जनन प्रक्रिया का, जो सम्पूर्ण प्राणि-जगत में सर्वव्यापक न होते हुए भी उसकी सर्वाधिक मनोरंजक विशिष्टताओं में से है। इस प्रक्रिया में अब ऐसा कुछ भी नहीं रह गया जो सही अर्थों में रहस्यात्मक कहा जा सके। मेरा यह मतलब नहीं है कि इस प्रक्रिया को पूर्णतः भली-भाँति समझा जा चुका है मेरा मतलब यह है कि यान्त्रिक सिद्धान्तों ने इसे इतना अधिक स्पष्ट कर दिया है कि उपयुक्त समय मिलने पर इसकी पूर्ण व्याख्या

दृष्टिकोण से जीवन एक बहुत ही महत्त्वहीन तत्व है बहुत थोड़े-से तारा के अपने ग्रह हैं और बहुत थोड़े ग्रहा म जीवन की स्थिति सम्भव है। धरती पर भी धरातल के समीपस्थ द्रव्य के बहुत अल्प अनुपात म जीवन पाया जाता है। अपने अस्तित्व के अधिकांश अतीत काल म पृथ्वी इतनी अधिक गरम थी कि उस पर जीवन सम्भव हो न था, अपने भावी अस्तित्व के अधिकांश काल म वह इतनी ठंडी रहेगी कि जीवन सम्भव न होगा। यह बात किसी प्रकार भी सम्भव नहीं कही जा सकती कि इस समय धरती को छोड़कर विश्व म और कहां जीवन का अस्तित्व नहीं है किन्तु यदि एक बहुत उदार अनुमान लगाकर हम यह भी मान लें कि अंतरिक्ष म करीब एक लाख अन्य ग्रह ऐसे बिखरे हैं जिन पर जीवन का अस्तित्व है, तो भी यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि सम्पूर्ण सृष्टि के प्रयोजन के रूप म सजीव पदार्थ की सत्ता अत्यन्त प्रभावहीन प्रतीत होती है। कुछ बूढ़े लोग ऐसे हैं जिन्हें ऐसी रसहीन रूखी कहानियाँ सुनाने का शौक है जिनमें अंतत 'कोई बात' प्रतिपादित की जाती है, अब किसी ऐसी कहानी की कल्पना कीजिए जो उन सब कहानियों से लम्बी हो जो आपने अब तक सुनी हैं किन्तु उसमें प्रतिपादित की गई 'बात' सबसे छोटी हो, तो आपको जीव विज्ञानियों के अनुसार कल्पित स्रष्टा के कार्य-कलाप की काफी सही तस्वीर का अंदाजा लग जाएगा। और फिर, प्रतिपादित की गई 'बात' मालूम होने पर इस योग्य नहीं लगती कि उसके लिए इतनी लम्बी प्रस्तावना बाँधी जाए। मैं यह स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ कि लोमड़ी की पूँछ म भी कोई-न-कोई गुण होता है, सारिका के गीत म अथवा आल्प्स पर्वतीय भेड़ के सींगों म भी कोई गुण होता है। किन्तु विकासवादी धर्मशास्त्री गर्व के साथ जिन चीजों की ओर संकेत करता है वे ये चीजें नहीं हैं वह तो मनुष्य की आत्मा की ओर संकेत करता है। दुर्भाग्य की बात यह है कि ऐसा कोई निष्पक्ष पंच नहीं है जो मनुष्य जाति के गुणों के बारे म फैसला दे सके जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं जब मनुष्य जाति द्वारा निर्मित विषैली गैसों की जीवाणु-युद्ध सम्बन्धी उनकी खोजों का मनुष्य जाति में आत्मदमन की, उसकी निर्दयता और अत्याचारों को लेकर विचार करता हूँ तब इस सृष्टि के सर्वोत्तम रत्न के रूप म मैं उसे आभाहीन पाता हूँ। लेकिन इस बात को जाने दें।

विकास की प्रक्रिया म क्या कोई ऐसी भी चीज है जो एक प्रयोजन की प्राक्कल्पना की अपेक्षा रखती हो—प्रयोजन चाहे सहजात हो अथवा अनुभवातीत ? यह एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण और निर्णायक प्रश्न है। जो स्वयं जीव-विज्ञानी नहीं है उसके लिए इस प्रश्न पर बिना हिचक कुछ कह सकना बहुत कठिन है। फिर भी प्रयोजन के समर्थन म जो तर्क मैंने देखे हैं उनसे मैं कतई प्रभावित नहीं हुआ।

जीवो और पौधों का व्यवहार कुल मिलाकर कुछ ऐसा है जिसमें कुछ निश्चित परिणाम निकलते हैं और प्रेक्षण करने वाला जीव विज्ञानी उन परिणामों की व्याख्या उस व्यवहार के प्रयोजन के रूप में करता है। कम-से कम पौधो के सम्बन्ध में तो सामान्यत जीव विज्ञानी यह स्वीकार करने के लिए तैयार हैं कि इन जैव-संघटनो की इस प्रयोजन की चेतन अवधारणा नही होती, किन्तु यदि वे इस उद्देश्य को स्रष्टा का उद्देश्य सिद्ध करना चाहते हैं तब तो यह स्वीकृति उनके लिए और भी अच्छी है। किन्तु फिर भी मैं यह नहीं समझ पाता कि यदि स्रष्टा ने वस्तुत उस सबकी प्रायोजना बनाई है जो कुछ जैव-जगत में घटित होता है तो इतने बुद्धिमान स्रष्टा को उन प्रयोजनो की क्या आवश्यकता है जो हम उसके मत्थे मढ रहे हैं? और फिर वैज्ञानिक बोध की प्रगति से ऐसा कोई प्रमाण नही मिलता कि जीवित पदार्थ का नियमन भौतिकी और रसायन शास्त्र के नियमो के अलावा और किसी चीज़ से किया जाता हो। उदाहरण के लिए, पाचन की प्रक्रिया को ही लीजिए। अनेक जीवो में इसका सावधानीपूर्वक अध्ययन किया गया है, विशेषकर मुर्गी के बच्चो में, नवजात चूज़ो में एक प्रतिवर्तन होता है जिसके कारण खाद्यान्नो के आकार वाली हर चीज़ पर वे चोंच चलाते हैं। कुछ अनुभव के बाद इनका यह निरुपाधिक प्रतिवर्तन, पवलाव द्वारा अधीत पद्धति के अनुसार सोपाधिक प्रतिवर्तन में बदल जाता है। छोटे बच्चो में भी यही बात देखी जा सकती है वे न केवल अपनी माता के स्तनो को चूसते है बल्कि हर उस चीज़ को चूसते हैं जिसे चूसा जा सकता है, व कन्धो, हाथो आदि से भी भोजन पाने की कोशिश करते हैं। महीनो के अनुभव के बाद ही वे अपने प्रयत्नो को स्तनो तक ही सीमित रखना सीख पाते हैं। यह चूसने की आदत शिशुओं में पहले एक निरुपाधिक प्रतिवर्तन ही होती है उसे किसी प्रकार भी समझा बूझा प्रयत्न नही कहा जा सकता। इसकी सफलता माता की चतुराई पर निर्भर करती है। चबाना और निगलना भी पहले निरुपाधिक प्रतिवर्तन ही होते हैं यद्यपि अनुभव द्वारा द [illegible] बन जाते हैं। पाचन की विभिन्न स्थितियो में भोजन जिन [illegible] से गुजरता है उनका सूक्ष्म अध्ययन किया गया है और [illegible] भी किसी विशिष्ट तात्विक सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं [illegible]।

एक दूसरा उदाहरण लें जनन प्रक्रिया का [illegible] सर्वव्यापक न होते हुए भी उसकी सर्वाधिक [illegible]। इस प्रक्रिया में अब ऐसा कुछ भी नहीं [illegible] कहा जा सके। मेरा यह मतलब नहीं है [illegible] समझा जा चुका है, मेरा मतलब यह है कि [illegible] अधिक स्पष्ट कर दिया है कि [illegible]

प्रस्तुत करना सम्भव हो गया है। बीस वर्ष से कुछ अधिक हुए, जब जैक्स लोएव ने शुक्राणु के बिना भी डिम्ब में गर्भाधान कराने का तरीका खोज निकाला था। अपने प्रयोगों तथा अन्य शोधकों के प्रयोगों से उपलब्ध परिणामों को उन्होंने एक वाक्य में सूत्र रूप अभिव्यक्ति दी है 'अतः हम यह कह सकते हैं कि कुछ विशिष्ट भौतिक रासायनिक अधिकरणों द्वारा शुक्राणु के विकासमूलक प्रभाव की पूर्ण अनुकृति सम्पन्न हो चुकी है।[1]"

फिर आनुवंशिकता के प्रश्न को लीजिए, जो प्रजनन के प्रश्न के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। इस विषय के सम्बन्ध में वैज्ञानिक ज्ञान की वर्तमान स्थिति का विवरण प्रोफेसर हॉग्बेन ने अपनी पुस्तक 'दि नेचर आफ लिविंग मैटर' में बड़ी क्षमता के साथ किया है विशेषकर पैतृकता के सम्बन्ध में परमाण्विक दृष्टिकोण का विवेचन करने वाले अध्याय में। इस अध्याय में पाठक मेण्डलीय सिद्धान्त, गुणसूत्रों, उत्परिवर्ती गुणसूत्रों आदि के सम्बन्ध में वह सब ज्ञान प्राप्त कर सकता है जो एक सामान्य पाठक को मालूम होना चाहिए। इन विषयों पर जितना ज्ञान आज हमें प्राप्त है उसे देखते हुए मेरी समझ में नहीं आता कि आज कैसे कोई व्यक्ति यह दावा कर सकता है कि आनुवंशिकता के सिद्धान्त में कोई ऐसी भी चीज है जिसके कारण हम किसी रहस्य के सामने अपनी पराजय स्वीकार करना आवश्यक हो। भ्रूण विज्ञान की प्रायोगिक अवस्था तो अभी प्रारम्भ नहीं हुई है फिर भी उसने महत्त्वपूर्ण परिणाम उपलब्ध किए हैं उसने सिद्ध कर दिया है कि जीव सम्बन्धी जो अभिधारणा अभी तक जीव विज्ञान पर हावी थी वह उतनी दृढ नहीं है जितनी समझी जाती थी।

'किसी सैलामण्डर टेडपोल की आँख किसी दूसरे के सिर पर लगा देना प्रायोगिक भ्रूण विज्ञान के लिए अब एक मामूली बात हो गई है। पाँच परों वाले और दो सिरों वाले जल स्थलचरों का अब प्रयोगशाला में उत्पादन किया जाता है।[2]'

किन्तु पाठक कह सकता है कि यह सब तो केवल शरीर से सम्बन्धित है मन के सम्बन्ध में हम क्या कह सकते हैं? यह प्रश्न इतना आसान नहीं है। इसका विवेचन हम पशुओं से प्रारम्भ करें हम कह सकते हैं कि पशुओं की मानसिक प्रक्रियाएँ बिलकुल प्राक्कल्पित हैं और पशुओं के सम्बन्ध में वैज्ञानिक विवेचन उनके व्यवहार और उनकी शारीरिक प्रक्रियाओं तक ही सीमित रखना होगा, क्योंकि केवल इन्हीं का प्रेक्षण किया जा सकता है। मेरा यह मतलब नहीं है कि पशुओं में मन की स्थिति का ही हम अस्वीकार कर दें मेरा तात्पर्य केवल इतना ही है कि जहाँ तक हमारे वैज्ञानिक होने का सम्बन्ध है, हम पशुओं में

१ देखिए, 'दि मैकेनिस्टिक कान्सेप्शन ऑफ लाइफ', १९१२, पृष्ठ ११।
२ देखिए, हाग्बेन की पूर्वउल्लिखित पुस्तक, पृष्ठ १११।

मन की स्थिति के पक्ष या विपक्ष म कुछ भी नही कहना चाहिए। तथ्य तो यह है कि जहा तक उनके शारीरिक व्यवहार का सम्बन्ध है वह कारणात्मक दृष्टि स स्वत पूर्ण मालूम होता है, अर्थात उस व्यवहार की व्याख्या के लिए कही भी किसी अप्रेक्षणीय सत्ता को बीच मे लाने की आवश्यकता नही पडती जिसे हम मन कह सकें। पशुओ के व्यवहार की व्याख्या करन के लिए पहले जिन मामलो में मानसिक कारणता अनिवार्य समझी जाती थी उन सभी मामलो की सतोष जनक व्याख्या करने मे सोपाधिक प्रतिवर्तन का सिद्धात सफल पाया गया है। किसी बाह्य अभिकरण—अर्थात मन के प्रभाव को स्वीकार किए बिना ही मनुष्यो के शारीरिक व्यवहार की व्याख्या करन म भी हम समर्थ हैं। किन्तु मनुष्यो के सम्बन्ध म इस कथन की यथार्थता पर अधिक सदेह किया जा सकता है कुछ तो इस कारण कि मनुष्यो का व्यवहार अधिक जटिल होता है, और कुछ इस कारण कि अन्तर्दर्शन के आधार पर हम यह जानते हैं, अथवा ऐसा सोचते हैं कि जानते हैं कि हमारे मन है। इसमे कोई सदेह नही कि अपने सम्बन्ध म हमे कुछ ऐसा ज्ञान अवश्य है जिसे सामान्यत हम यह कहकर प्रकट करते हैं कि हमारे मन है किन्तु जैसा अक्सर होता है, कुछ जानत हुए भी यह कहना बहुत कठिन है कि हम क्या जानते हैं। विशेष रूप से यह सिद्ध करना कठिन है कि हमारे शारीरिक व्यवहार के कारण शुद्ध शारीरिक या भौतिक कारण नही हैं। अन्तर्दर्शन से ऐसा प्रतीत होता है जैसे मानो कोई ऐसी चीज है जिसे सकल्प कहते हैं और जो उन कार्यों, गतिविधियो का कारण है जिन्हें हम स्वैच्छिक कहते हैं। फिर भी यह बिल्कुल सम्भव है कि इस प्रकार की गतिविधियो के शारीरिक कारणो की एक सम्पूर्ण शृखला हो और सकल्प (वह चाहे जो कुछ हो) इस कारण शृखला का सहवर्ती मात्र हो। अथवा, शायद यह भी हो सकता है कि जिन्हें हम अपने विचार कहते हैं वे उन भावग्रन्थियो के अवयव हो जिन्हे भौतिकी ने द्रव्य-सम्बन्धी पुरानी अवधारणा के स्थान पर प्रतिष्ठित किया है, क्योकि पुराने अर्थों म स्वीकृत द्रव्य अब भौतिकी की विषयवस्तु नही रह गया। मन और द्रव्य का द्वैत अब एक पुरानी कल्पना हो चुकी है द्रव्य बहुत-कुछ मन जैसा हो चुका है और मन बहुत-कुछ द्रव्य जैसा हो चुका है, जो विज्ञान की प्रारम्भिक अवस्था म सम्भव नही प्रतीत होता था। अब तो यह कल्पना करनी पडती है कि वास्तव म जिस चीज का अस्तित्व है वह पुराने जमाने के भौतिकवाद के बिलियर्ड गेंदो और पुराने मनोविज्ञान म स्वीकृत आत्मा के बीच की कोई चीज है।

फिर भी इस सम्बन्ध म एक महत्वपूर्ण विभेद करना ही है। एक ओर तो यह प्रश्न है कि यह ससार किस प्रकार की वस्तु से बना हुआ है और दूसरी ओर उसके कारणात्मक ककाल का प्रश्न है। अपने उद्भव-काल स ही विज्ञान एक

शक्ति मूलक विचारणा रहा है (यद्यपि प्रारम्भ मे उसका स्वरूप अन्यत ऐसा नही रहा) अर्थात् वह उस शक्ति को समझने म प्रयत्नशील रहा है जो हमारी प्रेक्ष्य प्रक्रियाओ का कारण है न कि उन प्रक्रियाओ के अगो अवयवों का विश्लेषण करने म। ऐसा लगता है कि भौतिकी की अत्यन्त भावसूक्ष्म योजना इस जगत का कारणात्मक ककाल प्रस्तुत करती है और इस जगत का पदार्थ रूप समृद्ध करने वाले रगो, उसकी विविधताओ और व्यक्तित्वो को बिल्कुल छोड देती है। भौतिकी द्वारा प्रस्तुत किए गए कारणात्मक ककाल को मानव शरीर के व्यवहार का नियमन करने वाले कारणात्मक नियमो के निर्धारण म सिद्धान्तत पर्याप्त मानने का अर्थ यह नही है कि हम इस कोरी भावसूक्ष्मता को मानव मन की अन्तर्वस्तुओ के सम्बन्ध मे अथवा जिसे हम द्रव्य मानते हैं उसके वास्तविक सघटन के सम्बन्ध म, कुछ भी बताने मे सक्षम मानते हैं। पुराने जमाने के भौतिकवाद के बिलियर्ड गेंद इतने अधिक मूर्त और सवेद्य थे कि उन्हे आधुनिक भौतिकी म स्वीकृत नही किया जा सकता था किन्तु यही बात हमारे विचारो के सम्बन्ध म भी सत्य है। जगत की इन कारणात्मक प्रक्रियाओ का अन्वेषण करते समय वास्तविक जगत की यह मूर्त विविधता बहुत कुछ अप्रासगिक प्रतीत होती है। एक उदाहरण लें लीवर सम्बन्धी सिद्धान्त बहुत ही सरल और आसानी से समझा जा सकने वाला है। यह आलम्ब, बल और प्रतिरोध की आपेक्षिक स्थितियो पर ही निर्भर करता है। हो सकता है कि प्रयुक्त लीवर एक प्रतिभाशाली चित्रकार द्वारा बनाये गए अनुपम चित्रो से आवृत हो भले ही ये चित्र लीवर के यात्रिक गुण धर्मों की दृष्टि की अपेक्षा भावात्मक दृष्टि म बहुत अधिक महत्वपूर्ण हो। फिर भी इन गुण धर्मों पर उनका किसी प्रकार भी कोई प्रभाव नही पडता और लीवर द्वारा किए जाने वाले कार्य के विवरण म इन्हे बिल्कुल छोडा जा सकता है। यही बात इस जगत पर भी लागू होती है। जैसा हमे दिखाई देता है उस रूप म यह जगत अपरिमित विविधताओ से समृद्ध है उसका कुछ अश सुन्दर है, कुछ अश कुरूप है, कुछ अश हमे भला प्रतीत होता है और कुछ अश बुरा। किन्तु वस्तुओ के शुद्ध कारणात्मक गुण धर्मों से इन चीजो का कोई सम्बन्ध नही है, और विज्ञान का सम्बन्ध इन्ही गुण धर्मों से है। मैं यह नही कह रहा कि यदि इन गुण धर्मों का पूरा-पूरा ज्ञान हम हो जाए तो हम इस जगत का भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाएगा क्योंकि जगत् की मूर्त विविधता भी ज्ञान का उतना ही उपयुक्त और मान्य विषय है। मेरे कथन का तात्पर्य यह है कि विज्ञान एक ऐसा ज्ञान है जो हमे कारणात्मक बोध देता है और सम्भवत इस प्रकार का ज्ञान जब पिण्डो के सम्बन्ध म भी, उनके भौतिक और रासायनिक गुण धर्मों के अलावा अन्य किसी बात का विचार न करने पर ही पूर्णत प्राप्त किया जा सकता है। वस्तुत, ऐसा कहने म हम उससे परे जा रहे

हैं जो आज निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है, किन्तु आधुनिक समय में शरीर-क्रिया विज्ञान, जीव रसायन, भ्रूण विज्ञान और संवेदन की यान्त्रिकता आदि के सम्बन्ध में जितनी खोज की जा चुकी है[1], उससे हमारे इस निष्कर्ष की सत्यता अनिवार्यतः सिद्ध होती है।

एक धार्मिक भावना वाले जीव विज्ञानी के दृष्टिकोण का एक सर्वोत्तम प्रतिपादन लायड मार्गन की पुस्तक 'इमर्जेंट एवोल्यूशन' (१९२३) और 'लाइफ माइंड एण्ड स्पिरिट' (१९२६) में देखा जा सकता है। लायड मार्गन का विश्वास है कि विकास क्रम में एक दैवी प्रयोजन निहित है, विशेषकर जिसे वह 'उदगामी विकास' कहते हैं उसमें। यदि मैं ठीक-ठीक समझ सका हूँ तो उदगामी विकास की परिभाषा कुछ इस प्रकार की है कभी-कभी ऐसा होता है कि एक विशिष्ट उपयुक्त प्रकार से व्यवस्थित किये गए पदार्थों का संगठन एक एक नवीन गुण धर्म को उपलब्ध कर लेता है जो पृथक रूप में उन पदार्थों को उपलब्ध नहीं होता और, जहाँ तक हम समझ सकते हैं, उन पदार्थों के पृथक्-पृथक् गुण-धर्मों से तथा जिस प्रकार वे व्यवस्थित किये गए हैं उससे भी जिसका निगमन नहीं किया जा सकता। मार्गन का विचार है कि अजैव जगत में भी इसी प्रकार के उदाहरण हैं। यदि मैं लायड मार्गन को ठीक-ठीक समझ सका हूँ तो परमाणु, अणु और क्रिस्टल—सभी में ऐसे गुण धर्म हैं जिन्हें वह इनके घटकों के गुण धर्मों से निगम्य नहीं मानते। उच्चकोटि की जब संघटनाओं के बारे में भी यह बात लागू होती है, और सबसे अधिक उन उच्च कोटि के जीवों पर जिन्हें मन कही जाने वाली चीज ही उपलब्ध है। मार्गन का कहना है कि हमारे मन, बेशक, भौतिक संघटना से सम्बन्धित हैं, किन्तु उस संघटना के गुण धर्मों से, जिसे शून्य में परमाणुओं की एक व्यवस्था माना जा सकता है, हमारे मन का निगमन नहीं किया जा सकता। उनका कहना है—"उदगामी विकास आदि से अन्त तक उसकी अभिव्यक्ति है जिसे मैं दैवी प्रयोजन कहता हूँ।" वह फिर कहते हैं— "हममें से कुछ लोग, और मैं तो निश्चित रूप से, सक्रियता की उस धारणा को स्वीकार कर सन्तुष्ट हो जाते हैं जो इस दैवी प्रयोजन का अंग और अंग मानती है।" लेकिन फिर भी पाप दैवी प्रयोजन की अभिव्यक्ति में सहायक नहीं है (पृष्ठ २८८)।

यदि इस दृष्टिकोण के समर्थन में कुछ तर्क भी प्रस्तुत किये गए होते तो इसका विवेचन करना आसान होता, किन्तु जहाँ तक मैं प्रोफ़ेसर लायड मार्गन की पुस्तक को समझ सका हूँ, वे ऐसा मानते हैं कि यह सिद्धान्त स्वयं ही अपनी स्वीकृति का तर्क है और केवल अक्लमन्दी को प्रभावित करने के लिए

---

१ उदाहरण के लिए देखिए, 'दि बेसिस ऑफ सेन्सेशन', लेखक ई० डी० ऐड्रियन १९२८।

उसे सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। मैं इस ज्ञान का दावा तो नहीं कर सकता कि प्रोफेसर लायड मार्गन की राय गलत है। मैं तो इसके विरोध में केवल इतना जानता हूँ कि ऐसी एक अनन्त शक्ति-सम्पन्न सत्ता हो सकती है जिसे यह पसन्द हो कि छोटे छोटे बच्चे तन्त्रिकाशोथ या मैनिनजाइटिस की बीमारी से मरें और बुड्ढे लोग कमर से य घटनाएँ आए दिन होना रहती हैं, और विकास के परिणामस्वरूप होती रहती हैं। इसलिए यदि विकास में कोई दैवी योजना निहित है तो ये घटनाएँ भी निश्चित रूप से सुनियोजित होंगी। मुझे ऐसा भी बताया गया है कि ये सभी यातनाएँ पाप से शुद्धि के लिए मनुष्य को भुगतनी पड़ती हैं, किन्तु यह सोचना मेरे लिए जरा मुश्किल पड़ रहा है कि चार या पाँच वर्ष का बच्चा अन्याय और अपराध के इतने गहरे गर्त में गिरा हुआ हो सकता है कि वह उस दण्ड का पात्र बन जाए जो तमाम बच्चों को भुगतना पड़ता है जिन्हें हमारे ये आशावादी धार्मिक सन्त किसी भी दिन बच्चों के अस्पताल में जाकर भोगते हुए देख सकते हैं, बशर्ते कि यह दृश्य देखना उन्हें पसन्द हो। और फिर मुझे यह भी बताया गया है कि हो सकता है इन बच्चों ने कोई बहुत गहरा पाप स्वयं न किया हो, फिर भी अपने माता पिता की दुष्टता के कारण ही उन्हें ये यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि यदि यही न्याय की दैवी भावना है तो वह मेरी भावना से भिन्न है, और मैं अपनी न्याय भावना को इस न्याय भावना से श्रेष्ठतर मानता हूँ। जिस जगत में हम रह रहे हैं वह यदि सचमुच किसी एक निश्चित योजना के अनुसार निर्मित हुआ है तो फिर इस योजना के निर्माता की तुलना में नीरो को हम एक सन्त मानना पड़ेगा। लेकिन सौभाग्य की बात है कि दैवी प्रयोजन का कोई प्रमाण है ही नहीं, कम से कम इस तथ्य से कि दैवी प्रयोजन में विश्वास करने वालों द्वारा ऐसा कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया गया यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है। इसलिए उस अकर्मण्य क्लीव जिज्ञासा की अभिवृत्ति को अपनाने से हम बच जाते हैं जो अन्यथा प्रत्येक वीरत्व और मानवीय गुण-सम्पन्न व्यक्ति को ऐसे सर्वशक्तिमान अत्याचारी के विरुद्ध अपनानी पड़ती।

इस अध्याय में हमने धर्म के पक्ष में प्रस्तुत किये गए प्रसिद्ध विज्ञानियों के विभिन्न तर्कों की समीक्षा की है। हमने देखा कि एडिंग्टन और जीन्स एक दूसरे का खण्डन करते हैं और दोनों मिलकर जीव वैज्ञानिक धर्मानुरागियों का खण्डन करते हैं किन्तु ये सभी इस बात में एकमत हैं कि धार्मिक व्यवसायिता दीक्षता के सम्मुख विज्ञान को पराजय स्वीकार करके हट जाना चाहिए। इस अभिवृत्ति को ये लोग और इनके प्रशंसक, कट्टर तर्कबुद्धिवाद की अपेक्षा अधिक आशावादी मानते हैं। किन्तु वस्तुतः बात बिल्कुल इसकी उल्टी है—यह अभिवृत्ति निरुत्साह और निराशावाद का परिणाम है। एक जमाना था जब धर्म

पर लोग तहदिल से और पूरे जोश-खरोश के साथ विश्वास करते थे, जब लोग धार्मिक युद्धो मे भाग लेते थे और अपने विश्वासो की कट्टरता और गहनता के कारण एक दूसरे को जिन्दा जला देते थे। धार्मिक युद्धो के बाद धीरे धीरे धम शास्त्र का यह आत्यंतिक प्रभाव कम हो गया। उसके स्थान पर अभी तक अगर कोई चीज प्रतिष्ठित हो सकी है तो वह विज्ञान ही है। अब हम विज्ञान के नाम पर उद्योगो म क्रान्ति लाते हैं, पारिवारिक नतिकता की अवहेलना करते हैं काली जातियो के लोगो को गुलाम बनाते हैं और विषैली गैसो स एक दूसरे को बडी कुशलता के साथ ध्वस करते हैं। विज्ञान के ये जो प्रयोग उपयोग किए जा रहे है उनको कुछ विज्ञानी लोग कतई पसन्द नही करते। भय और खेद के साथ व ज्ञान के साधक के पथ से ही दूर भागने लगते हैं और पूवकालीन अध विश्वासो म शरण खोजते हैं। जसा कि प्रोफेसर हागवेन कहते हैं—

'विज्ञान के क्षेत्र मे आजकल प्रचलित जो क्षमा याचना की प्रवृत्ति दिखाई देती है वह नई अभिधारणाओ के प्रयोग का तकसगत परिणाम नही है। जिन परम्परागत विश्वासो के विरुद्ध विज्ञान किसी समय, खुलकर सघष कर रहा था उन्ही को पुन प्रतिष्ठित करने की आशा पर यह अभिवृत्ति आधारित है और यह आशा वज्ञानिक खोजो का उपोत्पाद नही है। इसकी जडें युग की सामाजिक मन स्थिति मे है। यूरोप के राष्ट्रो ने पूरे पाच वष तक अपने पारस्परिक सम्बन्धो म तकबुद्धि का प्रयोग करना बन्द रखा। बौद्धिक तटस्थता को निष्ठाहीनता माना गया। परम्परागत विश्वासो की आलोचना करना देशद्रोह समझा गया। दाशनिको और विज्ञानियो ने कठोर यूथ निर्देन के सामने सिर झुका दिया। परम्परागत विश्वासो के साथ समझौता कर लेना अच्छी नागरिकता का सर्वोत्तम गुण बन गया। आधुनिक दशनशास्त्र को आज भी उस बौद्धिक निरुत्साह के गत से बाहर निकलने का माग खोजना है जो विश्व युद्ध की विरासत है।[1]'

पीछे की ओर लौट जाने से हमे अपनी कठिनाइयो से मुक्ति नही मिलेगी। विज्ञान से जो नई शक्ति हम मिली है उसका सही दिशाओ मे सचालन बाल कल्पनाओ के आलस्यपूण पुनरावतन द्वारा सम्भव न होगा और मूलाधारो के सम्बन्ध म हो दाशनिक सशयवाद हमारे कायकलापो की दुनिया म वज्ञानिक तकनीक की प्रगति को रोकने मे समथ न होगा। मनुष्य जाति को एक ऐसे विश्वास की आवश्यकता है, जो सबल, समय और सत्य हो, न कि बोदा और उत्साहहीन। विज्ञान तत्वत ज्ञान की व्यवस्थित खोज के अलावा और कुछ नही है और ज्ञान अपने तात्विक रूप म मगलमय ही है—कुछ बुरे लोग उसका चाहे

१ देखिए हागबेन की पूव उल्लिखित पुस्तक, पृ० २८।

जितना दुरुपयोग करें। ज्ञान पर ही विश्वास खो बैठना मनुष्य की सर्वोत्तम क्षमता पर विश्वास खो देना होगा, और इसलिए मैं निस्संकोच इस बात को दोहराता हूँ कि एक कम विकसित युग के बचकाना सन्तोषों की खोज करने वाले भीरु लोगों की अपेक्षा दृढ़ तर्कबुद्धिवादी का विश्वास अधिक अच्छा है उसका आशावाद अधिक पौरुषमय और दृढ़ है।

दूसरा भाग

वैज्ञानिक तकनीक

छठा अध्याय

वैज्ञानिक तकनीक का प्रारम्भ

परम्परागत कलाओं और दस्तकारियों तथा वैज्ञानिक तकनीक के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। वैज्ञानिक तकनीक का तात्विक लक्षण है प्राकृतिक शक्तियों का ऐसा उपयोग जो नितान्त अप्रशिक्षित व्यक्ति के लिए स्पष्ट न हो। कुछ इच्छाओं की पूर्व कल्पना कर ली गई है—लोगों को आवश्यकता होती है भोजन की, सन्तान की, कपड़ों की, मकान की, मनोरंजन की और यश की। अप्रशिक्षित व्यक्ति इन चीज़ों को अत्यन्त आंशिक रूप में ही उपलब्ध कर सकता है, वैज्ञानिक ढंग से साधन-सम्पन्न व्यक्ति इनको कहीं अधिक मात्रा में उपलब्ध कर सकता है। उदाहरण के लिए, सम्राट साइरस और एक आधुनिक अमरीकी करोड़पति की तुलना करें। सम्राट साइरस आधुनिक पूंजीपति की अपेक्षा शायद दो बातों में श्रेष्ठ थे—उनके कपड़े अधिक रोबीले थे, और उनकी पत्नियों की संख्या अधिक थी। पर साथ ही यह भी सम्भव है कि उनकी पत्नियों के कपड़े इतने रोबीले नहीं थे जितने रोबीले आज के पूंजीपति की पत्नी के कपड़े हैं। आधुनिक पूंजीपति की श्रेष्ठता का ही यह एक लक्षण है कि उसे अपने बड़प्पन के प्रचार के लिए चमकीले आभरण नहीं पहनने पड़ते, उसकी ख्याति की चिन्ता समाचारपत्रों को ही रहती है। मैं समझता हूँ कि सम्राट साइरस को उनके जीवन-काल में जानने वाले लोगों की संख्या शायद उस जन-समूह का शतांश भी नहीं थी जो आज होलीवुड की किसी अभिनेत्री-अभिनेता को जानते हैं। यश की यह सर्वाधिक सम्भावना वैज्ञानिक तकनीक की देन है। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि मानवीय कामना के जिन अन्य विषयों की चर्चा अभी ऊपर की गई है उन विषयों का उपभोग एक निश्चित सन्तोष के साथ कर सकने वाले लोगों की संख्या आधुनिक तकनीक के कारण बहुत काफी बढ़ गई है। आज कार रखने वाले लोगों की संख्या डेढ़ सौ वर्ष पहले पर्याप्त भोजन भी न पाने वाले लोगों की संख्या से कहीं अधिक है। सफाई और स्वास्थ्य-विज्ञान की सहायता से वैज्ञानिक राष्ट्रों ने अपने यहाँ से प्लेग, टाइफस, बुखार तथा अन्य तमाम ऐसी बीमारियों का समाप्त कर दिया है जो पूर्व के देशों में आज भी फैली हुई हैं और पहले पश्चिमी यूरोप जिनसे पीड़ित था। यदि व्यवहार के आधार पर ही निर्णय किया जाए तो सम्पूर्ण मानव-जाति की—अथवा

कम-से कम उसके अधिक ऊर्जस्वित अंश की—सर्वाधिक प्रबल इच्छाओं में से एक इच्छा अभी हाल ही तक अपनी संख्या में वृद्धि करने की रही है। इस सम्बन्ध में विज्ञान असाधारण रूप से सफल सिद्ध हुआ है। यूरोपीय लोगों की सन् १७०० की जनसंख्या की तुलना आज की उनकी वंशज संख्या से करें। सन १७०० में इंग्लैंड की जनसंख्या लगभग पचास लाख थी, और अब लगभग चार करोड़ है। अन्य यूरोपीय देशों की जनसंख्या भी, फ्रांस को छोड़कर सम्भवतः इसी अनुपात में बढ़ गई है। यूरोपीय वंशानुक्रम में उत्पन्न लोगों की जनसंख्या आज लगभग ७२ करोड़ पचास लाख है। इस बीच अन्य जातियों की जनसंख्या में बहुत कम वृद्धि हुई है। यह सही है कि इस सम्बन्ध में सारे संसार में एक परिवर्तन आ रहा है। सर्वाधिक वैज्ञानिक जातियों में अब जनसंख्या की अधिक वृद्धि नहीं होती, और वस्तुतः जनसंख्या की तेज अभिवृद्धि अब उन्हीं देशों तक सीमित है जिनमें सरकार तो वैज्ञानिक है किन्तु जन-समूह अवैज्ञानिक है। किन्तु यह स्थिति कुछ अत्यन्त हाल ही के कारणों से पैदा हुई है जिन पर हम इस समय विचार नहीं करेंगे।

वैज्ञानिक तकनीक का प्राचीनतम प्रारम्भ प्रागैतिहासिक-काल में हुआ था उदाहरण के लिए अग्नि का उपयोग कब-कैसे प्रारम्भ हुआ कुछ नहीं मालूम, यद्यपि प्रारम्भिक युगों में जिस सावधानी के साथ पवित्र अग्नि की रक्षा रोम तथा अन्य आदिकालीन सभ्य समाजों में की जाती थी, उससे यह पता चलता है कि अग्नि की उपलब्धि उस समय कितनी कठिन थी। कृषि का प्रारम्भ भी प्रागैतिहासिक है यद्यपि ऐतिहासिक काल के प्रारम्भ से बहुत अधिक पहले कृषि का प्रारम्भ शायद नहीं हुआ था। जानवरों का पालतू बनाना मुख्यतः प्रागैतिहासिक है किन्तु पूर्णतः नहीं। कुछ आधिकारिक लेखकों के अनुसार पश्चिमी एशिया में घोड़ों का प्रयोग सुमेरियन लोगों के समय प्रारम्भ हुआ, और जिन लोगों ने घोड़ों का उपयोग किया उन्होंने युद्ध में उन लोगों पर विजय मिली जो गधों का प्रयोग करते थे। उष्ण जलवायु वाले देशों में लेखन-कला का प्रारम्भ वस्तुतः इतिहास के प्रारम्भ के साथ ही हुआ है क्योंकि मिस्र और बेबीलोन में प्रारम्भिक अभिलेख कम उष्ण धरती वाले देशों की अपेक्षा बहुत अधिक समय तक सुरक्षित रह सकते हैं। वैज्ञानिक तकनीक की प्रगति में दूसरा महत्त्वपूर्ण कदम था धातु-कार्य का जो ऐतिहासिक युग के अंदर ही हुआ है। बाइबिल में वेदियों के निर्माण के लिए लोहे के प्रयोग का जो निषेध किया गया है उसका कारण निश्चित रूप से यही है कि लोहे का आविष्कार उस समय हाल ही में हुआ था। प्रारम्भिक काल से लेकर नेपोलियन के पतन तक सड़कों का निर्माण मुख्यतः सामरिक कारणों से ही होता था। बड़े-बड़े साम्राज्यों को सम्बद्ध बनाए रखने के लिए सड़कें अत्यावश्यक थीं इस उद्देश्य से सड़कों का महत्त्व

पहले-पहल फारस के लोगो के समय बढा और रोम के सम्राटो के समय सडको का पूरा-पूरा विकास हुआ। मध्यकालीन युगो मे बारूद का और नाविक दिक्-सूचक यन्त्र का प्रयोग प्रारम्भ हुआ, और मध्य युग के अन्त मे मुद्रण-कला का आविष्कार हुआ।

आधुनिक जीवन की व्यापक तक्नीक से जो अभ्यस्त है उसके लिए यह सब कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण नही प्रतीत होगा किन्तु आदिम मानव और बौद्धिक तथा कलात्मक सभ्यता के उच्चतम स्तर के बीच का अन्तर वस्तुत इन्ही सब बातो ने स्पष्ट किया। आज अपने इस युग मे हम मशीनी साम्राज्य के विरुद्ध विरोध प्रकट करने तथा एक सरलतर जीवन की ओर वापस लौट जाने की मुखर कामनाए व्यक्त करने के अभ्यस्त हो गए हैं। पर यह सब कोई नई बात नही है। कनफ्यूशियस के पूर्वगामी लाओ-त्जे, जो छठी शताब्दी ई० पूर्व मे जीवित थे (यदि सचमुच वह कभी थे भी), आधुनिक यान्त्रिक अन्वेषणा द्वारा प्राचीन सौन्दर्य के विनाश के सम्बन्ध मे उतने ही अधिक मुखर थे जितने मुखर रस्किन रहे हैं। सडको, पुलो और नावो को देखकर उनका मन भय और आतक से क्षुब्ध हो जाता था क्योकि ये सभी चीजें अप्राकृतिक थी। सगीत के विरोध मे उनका स्वर वैसा ही था जैसा आज के अनासक्त शिष्ट विद्वान लोगो का सिनेमा के विरुद्ध रहता है। आधुनिक जीवन की त्वरा उन्हे चिन्तनशील दृष्टिकोण के लिए घातक प्रतीत होती है। जब उनसे अधिक बर्दाश्त नही हो सका तब वे चीन छोडकर चले गए और पश्चिम के बर्बर लोगो के बीच जाकर गायब हो गए। उनका विश्वास था कि मनुष्य को प्रकृति के अनुकूल रहना चाहिए। यह ऐसा दृष्टिकोण है जो युगो से बराबर बार-बार ज़ोर मार रहा है, यद्यपि हमेशा उसकी व्याख्या कुछ भिन्न रूप मे की गई है। प्रकृति की ओर वापस लौटने की धारणा पर रूसो को भी विश्वास था, किन्तु रूसो सडको, पुलो और नावो के विरुद्ध कोई आपत्ति नही उठाते थे। उन्हे तो न्यायालयो, समृद्ध लोगो के कृत्रिम विलासो आदि पर क्रोध आता था। जिस प्रकार का व्यक्ति रूसो को प्रकृति का निर्दोष शुद्ध शिशु मालूम होता था वैसा व्यक्ति लाओ-त्जे की दृष्टि मे अतीत के निर्दोष मानव से अविश्वसनीय रूप मे भिन्न प्रतीत होता। लाओ-त्जे को घोडो को पालतू बनाने और कुम्भकार तथा बढई की कलाओ के विरुद्ध भी आपत्ति थी, लेकिन रूसो को तो बन्ई का काम ईमानदारी से की जाने वाली मेहनत का सारतत्व ही प्रतीत होता। व्यवहारत 'प्रकृति की ओर वापस लौटने' का अर्थ है उन स्थितियो की ओर लौट जाना जो सम्बन्धित लेखक की युवावस्था मे उपलब्ध थी। यदि प्रकृति की ओर वापस लौटने की बात को पूरी गम्भीरता से अपनाया जाए तो उसका परिणाम सभ्य देशो के लगभग ६० प्रतिशत लोगो का भूख से तडप-तडपकर मर जाना होगा। इसमे सन्देह नही कि आज जिस

स्थिति में उद्योगवाद है, उस स्थिति में उसने अनेक गम्भीर कठिनाइयाँ उत्पन्न की हैं, किन्तु उन कठिनाइयों का हल प्रकृति की ओर वापस लौटने से नहीं प्राप्त हो सकता, जैसे लाओ त्जे के समय की चीन की कठिनाइयों का हल अथवा रूसो के समय के फ्रांस की कठिनाइयों का हल प्रकृति की ओर वापस लौटने से नहीं प्राप्त हो सकता था।

१७वीं और १८वीं शताब्दियों में ज्ञान के रूप में विज्ञान की प्रगति बड़ी तेजी के साथ हुई, किन्तु उत्पादन की तकनीक पर उसका प्रभाव १८वीं शताब्दी के लगभग अन्त तक नहीं पड़ा। प्राचीन मिस्र में प्रचलित कार्य पद्धतियों में सन् १७५० तक जो परिवर्तन हुए, वे उन परिवर्तनों से कम हैं जो सन् १७५० से लेकर आज तक हुए हैं। कुछ आधारभूत प्रगतियाँ बहुत धीरे धीरे सम्पन्न हुईं— भाषा, अग्नि, लेखन-कला, कृषि, जानवरों को पालतू बनाना, धातु-कार्य, बारूद, मुद्रण-कला, एक बहुत बड़े साम्राज्य की किसी एक केन्द्र से शासन करने की कला आदि, यद्यपि इस अंतिम कला को आज की-सी पूर्णता तार और वाष्प इंजिन के आविष्कार से पहले कभी नहीं प्राप्त हो सकी। ये सभी प्रगतियाँ बहुत धीरे धीरे सम्पन्न हुईं और इसलिए परम्परागत जीवन पद्धति में इनको मेल बैठने में कोई अधिक कठिनाई नहीं पड़ी और लोगों को कभी इस बात का बोध नहीं हुआ कि उनके दैनिक जीवन की आदतों में कोई हानि हो गई है। जिन बातों के सम्बन्ध में कोई वयस्क कुछ कहना चाहता था उन सबके साथ वह अपने बचपन से ही परिचित हो जाता था और उसके पहले उसके पिता और पितामह भी उन सबसे परिचित रहते थे। इसमें सन्देह नहीं कि इस स्थिति के कुछ शुभ प्रभाव भी पड़ते थे जो आधुनिक काल की तीव्र तकनीकी प्रगति के कारण नष्ट हो चुके हैं। कवि अपने समकालीन जीवन का वर्णन उन शब्दों में कर सकते थे जो दीर्घकालीन प्रयोग के कारण अर्थ-समृद्ध तथा अतीत युगों में प्रतिष्ठित भावों द्वारा रंगीन बन चुके होते थे। आजकल तो कवि को दो ही विकल्प उपलब्ध हैं— या तो वह सामयिक जीवन की अवहेलना करे अथवा फिर अपनी कविताओं में ऐसे शब्दों को भरे जो रूक्ष और कठोर हैं। कविता में एक पत्र लिखना तो सम्भव है, किन्तु टेलीफोन पर कविता में बात करना कठिन है, कविता में लीन्यों की हवाओं की ध्वनि सुनते रहना सम्भव है, किन्तु रेडियो को सुनना नहीं। एक तेज घोड़े पर हवा की तरह सवारी करना तो सम्भव है लेकिन किसी मोटरगाड़ी पर हवा से तेज चलना सम्भव नहीं। कवि कामना कर सकता है पंखों की ताकि उड़कर अपनी प्रेयसी के पास जा सके, किन्तु ऐसा करना उसे तब मूर्खतापूर्ण मालूम होता है जब उसे यह याद आता है कि वह एक हवाई जहाज का उपयोग इसके लिए कर सकता है।

इस प्रकार सौन्दर्य बोध पर विज्ञान का प्रभाव सम्यक् रूप से हानिकर

ही पता है। मेरे विचार से इसका कारण विज्ञान का कोई तात्विक गुण नहीं है बल्कि तेजी के साथ परिवर्तित होने वाला पर्यावरण है जिसमें आज का मनुष्य जी रहा है। किन्तु अन्य अर्थों में विज्ञान के प्रभाव कहीं अधिक शुभ ही हुए हैं।

यह एक आश्चर्य की बात है कि वैज्ञानिक ज्ञान के चरम तत्वमीमांसीय मूल्य महत्व के सम्बन्ध में व्यक्त किए जाने वाले सन्देहों का कोई भी प्रभाव उत्पादन की तकनीक-सम्बन्धी विज्ञान की उपयोगिता पर बिल्कुल नहीं पड़ता। वैज्ञानिक पद्धति का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध सामाजिक सद्गुण की निष्पक्षता से है। अपनी पुस्तक 'जजमेंट एण्ड रीज़निंग इन दि चाइल्ड' में पायगेट ने यह स्थापना की है कि तकनीकी शक्ति सामाजिक भावना का फल है। उनका कहना है कि प्रत्येक बालक सर्वशक्तिमत्ता के सपनों के साथ जीवन प्रारम्भ करता है, जिसके अनुसार सभी तथ्य बच्चे की इच्छाओं के अनुरूप प्रतीत होते हैं। धीरे धीरे दूसरों के साथ सम्पर्क होने पर उसे बरबस यह अनुभूति होती है कि दूसरों की इच्छाएँ उसकी अपनी इच्छाओं के विपरीत हो सकती हैं, और उसकी अपनी इच्छाएँ अनिवार्यतः सत्य निर्धारण करने वाली नहीं होतीं। पायगेट के अनुसार, तकनीकी शक्ति का विज्ञान एक ऐसे सामाजिक सत्य की उपलब्धि कराने वाली पद्धति के रूप में होता है जिस पर सभी लोग सहमत हो सकें। मेरे विचार से यह बात बहुत-कुछ मान्य है और वैज्ञानिक पद्धति के एक बहुत बड़े गुण पर जोर देती है, वह गुण यह है कि वैज्ञानिक पद्धति उन विवादों को बचाने का प्रयत्न करती है जो व्यक्तिगत भावनाओं को सत्य की कसौटी मान लेने पर उत्पन्न होते हैं और जिनका कोई समाधान नहीं मिलता। वैज्ञानिक पद्धति के एक दूसरे पहलू पर पायगेट ने ध्यान नहीं दिया, अर्थात इस पहलू पर कि वैज्ञानिक पद्धति पर्यावरण पर कुछ अधिकार शक्ति दे देती है और पर्यावरण के अनुकूल अपने-आपको बनाने की भी शक्ति दे देती है। उदाहरण के लिए, मौसम का पूर्वानुमान कर सकने की क्षमता प्राप्त होना लाभदायक हो सकता है, और यदि कोई व्यक्ति ऐसा पूर्वानुमान ठीक ठीक कर सकता है तो भले ही उसके अन्य सभी साथी गलती पर हों उसे तो इसका लाभ फिर भी होता ही है यद्यपि सत्य की एक नितान्त शुद्ध सामाजिक परिभाषा के अनुसार हमें उसी को गलत मानना पड़ेगा। पर्यावरण पर अधिकार शक्ति प्राप्त करने की इस व्यावहारिक परीक्षा में अथवा पर्यावरण के अनुकूल अपने आपको बना सकने की व्यावहारिक परीक्षा में जो सफलता मिली है, उसी ने विज्ञान को इतना मान और गौरव दिया है। चीन के सम्राटों ने बार-बार जेस्वाट पादरियों को सम्मान का कदम महज इसीलिए नहीं उठाया कि ग्रहणों की तिथि बताने में जेस्वीट लोग सही साबित होते रहे जबकि चीनी ज्योतिषी गलत साबित होते रहे। सम्पूर्ण आधुनिक जीवन विज्ञान की इसी व्यावहारिक सफलता पर निर्भर है कम-से कम जहाँ तक

निर्जीव जगत का सम्बन्ध है। अभी तक मनुष्य पर प्रत्यक्ष प्रयोग करने के क्षेत्र में विज्ञान को कम सफलता मिली है, और इसीलिए जहाँ तक मनुष्य का सम्बन्ध है आज भी परम्परागत विश्वासों द्वारा विज्ञान का विरोध किया जाता है, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता कि यदि हमारी यह सभ्यता कायम रहती है और आगे बढ़ती है तो मनुष्य पर भी बहुत जल्दी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार किया जाने लगेगा। शिक्षा पर और फौजदारी कानून पर इसका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ेगा, शायद पारिवारिक जीवन पर भी प्रभाव पड़े। किन्तु ये बातें तो भविष्य के गर्भ में हैं।

वैज्ञानिक तकनीक की तात्विक नवीनता इस बात में है कि उसमें प्राकृतिक शक्तियों का उपयोग ऐसे तरीकों से किया जाता है जो अप्रशिक्षित दर्शक के लिए स्पष्ट नहीं होते बल्कि जिन्हें अध्यवसायपूर्ण शोध द्वारा खोजा गया है। वाष्प का उपयोग, जो आधुनिक तकनीक के प्रारम्भिक कदमों में से है, सीमा रेखा पर माना जा सकता है क्योंकि कोई भी व्यक्ति केतली में उबलते हुए पानी की भाप की शक्ति देख सकता है, जैसा कि जेम्स वाट ने परम्परागत स्वीकृत कथन के अनुसार, देखा था। बिजली का प्रयोग इससे कहीं अधिक निश्चित रूप से वैज्ञानिक है। पुराने तरीके की पनचक्की में जल शक्ति का प्रयोग एक प्राक्-वैज्ञानिक बात है क्योंकि उसकी सारी यान्त्रिक क्रिया विधि अप्रशिक्षित दर्शक के लिए भी बिल्कुल स्पष्ट है किन्तु टर्बाइनों द्वारा जल शक्ति का आधुनिक प्रयोग वैज्ञानिक है क्योंकि इससे उत्पन्न प्रक्रिया उस व्यक्ति के लिए नितान्त आश्चर्यजनक है जिसे वैज्ञानिक ज्ञान न प्राप्त हो। स्पष्ट है कि परम्परागत तकनीक और वैज्ञानिक तकनीक के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं है, और कोई भी यह नहीं कह सकता कि कहाँ पर एक की समाप्ति और दूसरे का प्रारम्भ होता है। आदिम युग के किसान मानव शरीरों का उपयोग खाद के लिए करते थे, और कल्पना करते थे कि इसका आश्चर्यजनक कल्याणकारी प्रभाव होता है। निश्चित रूप से यह स्थिति प्राक् वैज्ञानिक युग की थी उसके बाद प्राकृतिक खादों का जो प्रयोग प्रारम्भ हुआ और जो आज हमारे समय तक चलता आ रहा है, उसका नियमन यदि सावधानीपूर्वक कार्बनिक रसायनशास्त्र के अध्ययन द्वारा किया जाए तो वह वैज्ञानिक है किन्तु यदि परम्परा के अनुसार ही वह चालू रहे तो अवैज्ञानिक है। कृत्रिम नाइट्रेटों का प्रयोग निश्चित रूप से वैज्ञानिक है क्योंकि इसमें उन रासायनिक प्रक्रियाओं का उपयोग किया जाता है जिनकी उपलब्धि कुशल रसायनशास्त्रियों द्वारा दीर्घकालीन शोध के बाद हुई है।

वैज्ञानिक तकनीक की सर्वाधिक तात्विक विशिष्टता यह है कि उसका उद्भव प्रयोग से हुआ है, परम्परा से नहीं। अधिकांश लोगों के लिए मन की

प्रायोगिक दृत्ति उपलब्ध कर पाना कुछ कठिन होता है, सच तो यह है कि एक पीढ़ी का विज्ञान आने वाली दूसरी पीढ़ी के लिए परम्परा बन जाता है और फिर भी अभी ऐसे व्यापक क्षेत्र पड़े हैं, विशेषकर धर्म का क्षेत्र जिनमें प्रायोगिक भावना की पैठ अभी तक हो ही नहीं सकी। फिर भी पूर्वकालीन युगों के विरोध में आधुनिक युग की विशिष्टता यह प्रायोगिक भावना ही है और इसी भावना के कारण पिछले १५० वर्षों में अपने पर्यावरण पर मनुष्य की अधिकार-शक्ति पिछली सभ्यता की अपेक्षा अतुलनीय मात्रा में अधिक हो गई है।

सातवाँ अध्याय

निर्जीव प्रकृति पर प्रयुक्त तकनीक

अभी तक प्रायोगिक विज्ञान की महानतम सफलताएँ भौतिकी और रसायनशास्त्र के क्षेत्र में हुई हैं। लोग जब वैज्ञानिक तकनीक की बात सोचते हैं तब मुख्यतः वे मशीनों की बात सोचते हैं। यह सम्भव प्रतीत होता है कि निकट भविष्य में ही जीव विज्ञान और शरीर क्रिया विज्ञान के क्षेत्र में भी इसी प्रकार की सफलताएँ विज्ञान को प्राप्त होंगी और लोगों के मन मस्तिष्क को परिवर्तित करने की वैसी ही शक्ति अन्ततः विज्ञान को प्राप्त हो जाएगी जैसी आज अपने निर्जीव पर्यावरण को परिवर्तित कर सकने की प्राप्त है। फिर भी प्रस्तुत अध्याय में मैं विज्ञान के जीव विज्ञान सम्बन्धी प्रयोगों का विवेचन नहीं करूँगा, बल्कि मशीनरी के क्षेत्र में विज्ञान के प्रयोगों का विवेचन करूँगा जो कुछ अधिक परिचित और घिसा पिटा विषय है।

संकीर्ण अर्थों में अधिकांश मशीनों में ऐसी कोई बात नहीं होती जिसे विज्ञान कहा जा सके। प्रारम्भ में मशीनें निर्जीव पदार्थ द्वारा कुछ ऐसी नियमित गतिविधियाँ सम्पादित कराने का साधन मात्र थीं जिन्हें पहले मनुष्य अपने शरीर और विशेषकर अपनी अंगुलियों द्वारा सम्पादित करते थे। यह बात कताई बुनाई के क्षेत्र में विशेष रूप से स्पष्ट है। रेलों के आविष्कार में अथवा भाप के जहाजों की प्रारम्भिक अवस्था में कोई बहुत अधिक विज्ञान निहित नहीं था। इन शब्दों में लोग जिन शक्तियों का प्रयोग कर रहे थे वे उन तरीकों में बहुत गूढ़ रूप से गुप्त या अज्ञात नहीं थीं जो उनके लिए आश्चर्यजनक न होने चाहिए थे यद्यपि लोगों को उनसे आश्चर्य हुआ। लेकिन बिजली की बात इससे भिन्न है। एक व्यावहारिक बिजली मिस्त्री का एक नए ढंग का सामान्य बुद्धि विकसित करनी होती है जो बिजली का ज्ञान न रखने वाले व्यक्ति को कदापि प्राप्त नहीं होती। यह नए ढंग का सामान्य बुद्धि पूरी तरह से उस ज्ञान में निहित होती है जिसे विज्ञान द्वारा खोजा गया है। जिस व्यक्ति ने अपना जीवन सीधे-सादे ग्रामीण वातावरण में बिताया हो वह यह तो जानता है कि कोई पागल साँड क्या कर सकता है किन्तु वह चाहे जितना पुराना और चतुर बन जाए फिर भी उसे इस बात का ज्ञान नहीं हो सकता कि बिजली की धारा क्या कर सकती है।

औद्योगिक तकनीक के अनेक प्रयोजनों में से एक प्रयोजन हमेशा यह रहा है

कि मानवीय शक्ति के स्थान पर कार्य सम्पादन के लिए अन्य प्रकार की शक्ति का प्रयोग किया जाए। जानवर तो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूरी तरह अपनी शारीरिक शक्ति पर ही निर्भर करते हैं और यह कल्पना करनी पड़ती है कि आदिम मानव को भी इसी प्रकार निर्भर रहना पड़ा होगा। धीरे-धीरे जैसे जैसे मनुष्य को अधिक ज्ञान प्राप्त होता गया, वैसे वैसे अधिकाधिक मात्रा में वह इस प्रकार के शक्ति स्रोतों को अपने वश में करता गया जिनके प्रयोग से उसका शारीरिक श्रम कम होता गया। किसी अज्ञात अतीत काल में किसी प्रतिभाशाली व्यक्ति ने पहिए का आविष्कार किया और किसी दूसरे प्रतिभाशाली ने बैल और घोड़े को इस प्रकार पालतू बना लिया कि उनसे इन पहियों को चलाने का काम लिया जा सके। बैल और घोड़ों को पालतू बनाने का काम बिजली को वश में करने की अपेक्षा कहीं अधिक मुश्किल रहा होगा, किन्तु यह कठिनाई धीरज की थी, बुद्धिमानी की नहीं। 'अरेबियन नाइट्स' की कहानियों में आने वाले (जिनकी तरह बिजली भी उस व्यक्ति की मूक सेविका है जिसे उसका सूत्र ठीक-ठीक मालूम हो) सूत्र की खोज कर सकना ही कठिन है, शेष सब तो आसान है। बैल और घोड़े के सम्बन्ध में यह समझ सकने के लिए किसी बड़े कौशल की आवश्यकता नहीं थी कि बैल और घोड़े अपने शारीरिक बल से उन कार्यों को अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से कर सकते हैं जिन्हें मनुष्य अपने शारीरिक बल के सहारे कर रहा था किन्तु अपने मालिकों की इच्छा के अनुसार काम करने के लिए बैल और घोड़े को तैयार करने में बहुत काफी समय लगा होगा। कुछ ऐसे लोग भी हैं जो यह मानते हैं कि बैलों और घोड़ों को पालतू इसलिए बनाया गया कि इनकी पूजा की जाती थी उनका व्यावहारिक उपयोग तो बाद में आरम्भ हुआ जब पुजारियों ने उन्हें पूरी तरह पालतू बना लिया था। यह सिद्धान्त मूलतः सम्भाव्य है क्योंकि प्राय सभी महान प्रगतियों का आरम्भ निरपेक्ष प्रयोजनों से ही हुआ है। वैज्ञानिक खोजें उनकी उपयोगिता को ध्यान में रखकर नहीं की गई बल्कि शोध कार्य केवल शोध के उद्देश्य से ही किये गए हैं और ज्ञान की निरपेक्ष कामना और प्रीति से रहित कोई भी मानव जाति हमारी वर्तमान वैज्ञानिक तकनीक को कभी भी उपलब्ध न कर सकी होती। उदाहरण के लिए, विद्युत चुम्बकीय तरंगों के सिद्धान्त को ही लें, जिस पर बेतार का तार आधारित है। सम्बंधित वैज्ञानिक ज्ञान का आरम्भ फैराडे से हुआ था जिन्होंने पहले-पहल प्रायोगिक ढंग से वैद्युत घटना के साथ मध्यवर्ती माध्यम के सम्बन्ध की खोज की थी। फैराडे कोई गणितज्ञ नहीं थे किन्तु उनके द्वारा उपलब्ध परिणामों को गणितीय रूप दिया क्लर्क-मैक्सवेल ने, जिन्होंने शुद्ध सैद्धान्तिक तरीकों से इस बात की खोज की थी कि प्रकाश विद्युत चुम्बकीय तरंगों से निर्मित होता है। इस दिशा में दूसरा कदम उठाया हर्ट्ज ने, जिन्होंने

पहले पहल कृत्रिम ढंग से विद्युत् चुम्बकीय तरंगों का निर्माण किया। अब केवल इतना शेष रह गया था कि एक ऐसे उपकरण या उपकरणों की खोज की जाए जिनके द्वारा इन तरंगों का उत्पादन व्यावसायिक दृष्टि से लाभप्रद रूप में किया जा सके। जैसा सभी लोग जानते हैं यह कदम मारकोनी ने उठाया था। जहां तक मालूम किया जा सकता है फराडे मैक्सवेल, और हर्ट्ज ने एक क्षण के लिए भी अपनी खोजों के व्यावहारिक प्रयोग की सम्भावना पर विचार न किया था। सच तो यह है कि जब तक ये अनुसंधान लगभग पूरे नहीं हो गए तब तक इनकी कल्पना करना भी असम्भव ही था कि इनका उपयोग किन किन रूपों में किया जा सकेगा।

जिन मामलों में आदि से अन्त तक व्यावहारिक प्रयोजन ही रहा है उनमें भी प्रायः एक मसले के समाधान से किसी ऐसी दूसरी समस्या का समाधान उपलब्ध हुआ है जिससे उसका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं था। उदाहरण के लिए उड्डयन की समस्या को लें। हर युग में उड़न की लालसा ने मनुष्य की कल्पना को आकर्षित किया है। लियोनार्डो दा विंसी ने चित्रकला के बजाय इस उड़ने की कल्पना पर ही अपना अधिकांश समय लगाया था। किन्तु हमारे इस युग तक लोगों की भ्रान्त धारणा यह बनी रही कि उन्हें किसी ऐसे यन्त्र का आविष्कार करना पड़ेगा जो चिड़ियों के परों के समान हो। पेट्रोल से चलने वाले इंजिन की खोज और मोटरकारों के लिए उसका विकसित रूप तैयार हो जाने के बाद ही उड़ने की समस्या का हल निकल सका। पेट्रोल से चलने वाले इंजिन की प्रारम्भिक अवस्थाओं में किसी के भी दिमाग में यह बात नहीं आई कि इस इंजिन का उपयोग उड़ने के लिए भी किया जा सकेगा।

आधुनिक तकनीक की सर्वाधिक कठिन समस्याओं में से एक समस्या है कच्चे माल की। उद्योगों में निरन्तर अधिकाधिक वर्धमान मात्रा में उन पदार्थों का उपयोग किया जा रहा है जिनका संचय भूवैज्ञानिक काल में धरती के नीचे और भू पपड़ी में होता रहा है। इसका एक सबसे अधिक प्रत्यक्ष उदाहरण है तेल। संसार में तेल की मात्रा सीमित ही है और तेल का खर्च निरन्तर और तेजी के साथ बढ़ता जा रहा है। संसार के तेल के साधनों के वस्तुतः समाप्त हो जाने में सम्भवतः बहुत अधिक समय नहीं लगेगा, हां तेल के साधनों पर अधिकार पाने के लिए होने वाले युद्ध यदि इतने विध्वंसकारी हों कि हमारी सभ्यता का स्तर उस सीमा तक गिर जाए जहां तेल के उपयोग की आवश्यकता ही न रह जाए, तो बात दूसरी है। मैं समझता हूँ कि हम लोग यह कल्पना कर सकते हैं कि यदि हमारी सभ्यता प्रलय का शिकार न बन गई तो जैसे-जैसे कम होने होने तेल बहुत अधिक खर्चीला होता जाएगा वैसे-वैसे तेल के स्थान पर किसी अन्य चीज की खोज कर ली जाएगी। किन्तु जैसा इस उदाहरण से स्पष्ट होता है,

औद्योगिक तकनीक कभी भी गतिहीन और परम्परामूलक नहीं हो सकती, जैसा कि प्राचीन काल में खेती की तकनीक हो गई थी। जिस असाधारण तेजी के साथ हम अपनी इस पार्थिव पूंजी को खत्म करते जा रहे हैं उसके कारण नई-नई प्रक्रियाओं का आविष्कार करने और शक्ति के नए स्रोतों की खोज की आवश्यकता निरन्तर बनी रहेगी। वगक शक्ति के कुछ ऐसे स्रोत भी हैं जो वस्तुत अनन्त हैं विशेषकर हवा और पानी किन्तु इनमें से दूसरे का यदि पूरा-पूरा उपयोग कर लिया जाए तब भी धरती की आवश्यकताओं के लिए वह बहुत अपर्याप्त होगा। हवा की अनियमितता के कारण उसका उपयोग करने के लिए बड़े व्यापक सचायकों की आवश्यकता पड़ेगी जो हवा के निकल जाने की आशंकाओं से आज तक बन सकने वाले सचायकों की अपेक्षा कहीं अधिक मुक्त हों।

प्राचीन सरलतर युग में प्राकृतिक उत्पादनों पर जो निर्भरता हमें विरासत के रूप में मिली है वह रसायनशास्त्र की प्रगति के साथ-साथ कम होती जाएगी। इस बात की सम्भावना है कि निकट भविष्य में ही रबड़ के पेड़ों से निकलने वाली रबड़ का स्थान कृत्रिम रबड़ ले लेगी, जैसे प्राकृतिक रेशम का स्थान कृत्रिम रेशम ने ले लिया है। कृत्रिम लकड़ी तो पहले से ही बनाई जा सकती है, यद्यपि अभी तक कृत्रिम लकड़ी का निर्माण एक व्यावसायिक धधा नहीं बन सका। किन्तु समाचारपत्रों की वृद्धि के कारण ससार के जगलों का जो खात्मा बिलकुल निश्चित और नजदीक दिखाई देता है उसके कारण कागज बनाने के लिए लकड़ी की लुगदी के स्थान पर अन्य पदार्थों का उपयोग करना बहुत जल्दी आवश्यक हो जाएगा, हाँ, यदि बेतार के तार से समाचार सुनने की आदत इतनी पड़ जाए कि लोग दैनिक समाचारों के लिए अखबारों का पढ़ना ही बन्द कर दें तो बात दूसरी है।

भविष्य की वैज्ञानिक सम्भावनाओं में से एक है कृत्रिम उपायों द्वारा जलवायु का नियन्त्रण, और इसका बहुत बड़ा महत्त्व हो सकता है। कुछ ऐसे लोग हैं जिनका कहना है कि यदि कनाडा के पूर्वी तट पर किसी उपयुक्त स्थान पर लगभग बीस मील लम्बा एक तरगरोध निर्मित किया जाए, तो वह दक्षिण-पूर्वी कनाडा और न्यू इग्लैंड की जलवायु को एकदम बदल देगा, क्योंकि जो ठण्डी धारा अभी इस तट पर बहती है वह इस तरगरोध के कारण सागर-तल को चली जाएगी और ऊपर धरातल दक्षिण के गरम पानी से भर जाने के लिए खाली हो जाएगा। मैं इस विचार की सत्यता का साक्षी नहीं बन सकता, फिर भी यह उन सम्भावनाओं का एक उदाहरण अवश्य है जो भविष्य में यथार्थ सिद्ध हो सकती हैं। एक दूसरा उदाहरण लें—तीस डिग्री और चालीस डिग्री अक्षांश के बीच की अधिकांश धरती क्रमश सूखती जा रही है और अनेक क्षेत्र

मे इस समय इस भूभाग मे जितनी जनसख्या निर्वाह कर पाती है वह दो हजार वर्ष पहले की इन क्षेत्रो की जनसख्या से बहुत कम है। दक्षिणी कैलीफोर्निया म सिंचाई के कारण रेगिस्तान भी ससार का एक अधिकतम उपजाऊ क्षेत्र बन गया है। अभी तक सहारा अथवा गोबी के रेगिस्तानो की सिंचाई का कोई साधन प्राप्त नही हो सका, किन्तु अतत इन क्षेत्रो को भी उपजाऊ बनाने की समस्या शायद वैज्ञानिक साधनो द्वारा हल करना असम्भव नही रहेगा।

आधुनिक तकनीक ने मनुष्य को एक ऐसी शक्ति की भावना दे दी है जो उसकी सम्पूर्ण मनोवृत्ति को तेजी के साथ बदलती जा रही है। अभी कुछ ही समय पहले तक भौतिक पर्यावरण को जसे तसे स्वीकार करना ही पडता था और उसका अधिक से अधिक उपयोग करना पडता था। अगर वर्षा इतनी कम हुई कि जीवन-यापन के लिए पर्याप्त न हो सकी तो विकल्प यही रह जाता था कि या तो किसी दूसरी जगह चले जाएँ या मौत को गले लगा लें। जो लोग युद्धो मे बलवान होते थे वे पहला रास्ता अख्तियार करते थे और जो कमजोर होते थे व दूसरा रास्ता अपनाते थे। आधुनिक मनुष्य के लिए उसका भौतिक पर्यावरण एक कच्चा माल मात्र है जो उसे काफी तोड मोड करने का अवसर देता है। यह बात सही हो सकती है कि ईश्वर ने इस जगत को बनाया है, लेकिन यह तथ्य इस बात का पर्याप्त कारण नही है कि हम नए सिरे से इसका निर्माण न करें। किसी बौद्धिक तर्क की अपेक्षा यही अभिवृत्ति परम्परागत धर्म के लिए विरोधी सिद्ध हो रही है। परम्परागत धर्म म ईश्वर पर निर्भर रहने की भावना निहित थी। यह भावना यद्यपि नाम के लिए अब भी स्वीकार की जाती है लेकिन अब आधुनिक वैज्ञानिक औद्योगिको की कल्पना पर इस भावना का उतना प्रभाव और अधिकार नही रह गया जितना आदिम किसान अथवा मछुए की कल्पना पर था, जिसके लिए अकाल अथवा आँधी मौत भी ला सकते थे। आधुनिक मनोवृत्ति वाले व्यक्ति के लिए कोई भी वस्तु स्वत अपने रूप मे रोचक नही है, वह रोचक है केवल इस दृष्टि से कि उसे किस नए रूप म ढाला जा सकता है। इस दृष्टिकोण से वस्तुओ के आन्तरिक गुण अब उनकी महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ या लक्षण नही हैं, बल्कि उनके उपयोग मात्र ही उनकी विशेषताएँ हैं। प्रत्येक वस्तु अब एक औजार है। और यदि आप पूछें कि किस बात का औजार है, तो उत्तर यह होगा कि वह औजार है अन्य औजारो के निर्माण करने के लिए जो अपने से भी अधिक शक्ति सम्पन्न औजार बनाने का काम देंगे, और यह क्रम अनन्त रूप म चलता रहेगा। मनोवैज्ञानिक शब्दावली मे इसका अर्थ यह हुआ कि शक्ति की कामना ने अन्य उन सभी आवेगों को अलग हटा दिया है जिनसे मनुष्य का जीवन पूर्ण बनता है। प्रेम पितृवत्ता गुण और सौन्दर्य आधुनिक उद्योगपति के लिए पुराने जमाने के राजाओं की

अपना बहुत कम महत्व रखते हैं। विशिष्ट वैज्ञानिक उद्योगपति के सबसे प्रबल भावावेग हैं हेर फेर करना शोषण करना तथा उपयोग करना। औसत व्यक्ति इस सकीर्ण केन्द्रीकरण का सहभागी नहीं हो सकता, लेकिन इसी वजह से वह शक्ति के स्रोतो पर अधिकार भी नहीं प्राप्त कर पाता और ससार का व्यावहारिक शासन यान्त्रिकता के कट्टर अनुयायियो के हाथ म छोड बठता है। आधुनिक युग म ससार म परिवतन लाने की जो शक्ति बडे-बडे व्यापारिक नताओ के हाथ म है, वह पिछले जमाने मे व्यक्तियो के हाथ मे आने वाली ऐसी शक्ति की तुलना मे बहुत अधिक है। नीरो अथवा चगज खा की भाति दूसरो के सिर कटा दन की आजादी च हे भले ही न प्राप्त हो किन्तु आज के उद्योग-पति यह फसला कर सकते हैं कि कौन भूखा मरेगा और कौन धनवान बनगा व नदियो की गति बदल सकते हैं, सरकारो के पतन का आदेश दे सकते हैं। समूचा इतिहास इसका प्रमाण है कि अत्यधिक शक्ति उन्मत्त कर देन वाली होती है। सौभाग्य की बात है कि शक्ति के आधुनिक नियन्ताओ को अभी इस बात का पूरा-पूरा पता नहीं है कि यदि व चाह तो क्या-क्या कर सकते हैं किन्तु जिस दिन उन्हें इसका ज्ञान प्राप्त हो जाएगा उस दिन मानव-अत्याचारो का एक नया युग प्रारम्भ हो जाने की पूरी आशका है।

आठवाँ अध्याय

जीव-विज्ञान मे प्रयुक्त तकनीक

मानव-जाति ने अपनी विभिन्न प्रकार की इच्छाओ को पूरा करने के लिए वैज्ञानिक तकनीक का प्रयोग किया है। प्रारम्भ मे इस तकनीक का प्रयोग मुख्य रूप से कपडो के उत्पादन और वस्तुओ तथा मनुष्यो के यातायात के लिए किया गया था। तार द्वारा सवादो को तेजी के साथ प्रेषित करने और आधुनिक समाचारपत्रो का प्रकाशन तथा शासन के केन्द्रीकरण को सम्भव बनाने म वैज्ञानिक तकनीक ने बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। प्रथम कोटि की वैज्ञानिक बुद्धि का बहुत काफी अश सामान्य कोटि के मनोरजन की अभिवृद्धि करने म बहुत अधिक प्रभावी सिद्ध हुआ है। मानवीय आवश्यकताओ म सर्वाधिक आधारभूत आवश्यकता है भोजन, और इस पर प्रारम्भ म औद्योगिक क्रान्ति का कोई अधिक प्रभाव नही पडा रेलो द्वारा जब पहले पहल अमरीका के 'मिडिल वस्ट' भाग से सम्पर्क बढा, तभी खाद्यान्न के सम्बन्ध म वैज्ञानिक तकनीक द्वारा पहला महान परिवर्तन उपस्थित हुआ। तब से लेकर आज तक कनाडा अर्जेन्टाइना और भारत यूरोपीय देशो के लिए खाद्यान्नो के महत्त्वपूर्ण स्रोत बन गए हैं। रेलो और भाप के जहाजो द्वारा अन्न को इधर-उधर ले जाने की जो सुविधा हो गई है उसने मध्ययुगीन स्थिति वाले तमाम देशो पर छाए रहने वाले अकाल के आतक को दूर कर दिया है। यह आतक अभी कुछ ही समय पहले तक रूस और चीन दोनो को पीडित किए हुए था। फिर भी, महत्त्वपूर्ण होते हुए भी, यह परिवर्तन खेती म विज्ञान के प्रयोग के कारण नही उत्पन्न हुआ। हाल के कुछ वर्षों म जीव विज्ञान का महत्व खाद्यान्नो की आपूर्ति के सम्बन्ध म बढता गया है। अर्थशास्त्री लोग यही पढाया करते थे कि आधुनिक तकनीक केवल निर्मित पदार्थों को ही सस्ता कर सकती है और खाद्यान्नो का मूल्य आबादी बढने के साथ-साथ बराबर बढता जाएगा। अभी कुछ समय पहले तक यह सम्भव नही मालूम होता था कि विज्ञान के प्रयोग से खाद्यान्नो के उत्पादन म भी उसी प्रकार क्रान्ति लाई जा सकती है जैसे निर्मित पदार्थों के उत्पादन मे लाई गई है। लेकिन आजकल तो यह बात असम्भाव्यता स बहुत दूर दिखाई देती है।

खेती के सम्बन्ध म ऐसा कोई बहुचर्चित और क्रान्तिकारी अन्वेषण नही

हुआ जो भाप के प्रयोग के समान महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ हो, लेकिन शोध की विभिन्न दिशाओ मे किय गए कार्यों स कुछ ऐसे परिणामा की उपलब्धि हुई है जो, कुल मिलाकर काफी महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकत हैं।

उदाहरण के लिए, खेता मे नाइट्रोजन क प्रश्न को ही लें। सभी लोग जानत हैं कि सभी जीवित पिण्डा म, चाह पौधे हो या जीवधारी नाइट्रोजन का एक निश्चित प्रतिशत रहता है। जानवरो को नाइट्रोजन की प्राप्ति पौधो अथवा अय जानवरा को खाने स प्राप्त होती है। पर पौधा को नाइट्रोजन कहा स मिलती है? काफी लम्बे अरसे तक यह प्रश्न एक पहेली बना रहा यह कल्पना कर लना स्वाभाविक प्रतीत होता था कि पौधो को हवा से नाइट्रोजन मिलती है (विशेष रूप स हवा म मौजूद रहनेवाली अमोनिया की अल्प मात्राओ मे), लेकिन प्रयोगो से यह सिद्ध हुआ कि बात ऐसी नही है। एक बार यह निष्कर्ष उपलब्ध हो जान पर यह शोध करना बाकी रह गया कि पौधा को धरती मे नाइट्रोजन कस प्राप्त होती है। इस समस्या का अध्ययन दो व्यक्तिया ने किया, लावस और गिल्बट न। हार्पेण्डन के नजदीक रोथमस्टड म इन लोगा ने लगभग ६० वष तक अनेक प्रयोग किए। य लाग इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अधिकाश पौधा म नाइट्रोजन के यौगिकीकरण की शक्ति नही होती। सन १८८६ म हेलरीगल और विल्फाथ को यह मालूम हुआ कि क्लोवर नामक तिन पतिया घास तथा अय फलीदार पौधे नाइट्रोजन के यौगिकीकरण म एक विशेष याग दते हैं। इसका कारण उनकी जडा म ग्रथिकाओ का होना है अथवा यह कह कि स्वय ग्रथिकाओ के कारण नहा, बल्कि इन ग्रथिकाओ म रहनेवाले एक विशिष्ट जाति के जीवाणुओ क कारण ये पौधे नाइट्रोजन का यौगिकीकरण कर पात हैं। यदि जीवाणु न हात ता य पौधे नाइट्रोजन क यौगिकीकरण म अय पौधा की अपेक्षा किसी रूप म भी भिन्न न होत, इसलिए तात्विक अभिकरण तो य जीवाणु ही हैं।

सामाय रूप स यह कहा जा सकता है कि जहा तक अभी मालूम हा सका है कवल जीवाणुओ मे ही यह शक्ति है कि उनम से कुछ तो अमोनिया को नाइट्रेटा म बदल दत हैं और दूसरे वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का उपयोग करत हैं। अमोनिया नाइट्रोजन और हाइड्रोजन स बनती है जबकि नाइट्रेटो म नाइट्रोजन और आक्सीजन हाता है। धरती म पाए जानेवाले कुछ विशिष्ट जीवाणुओ म अमोनिया को हाइड्रोजन स मुक्त करने और उसके स्थान पर आक्सीजन की पूर्ति करने की शक्ति होती है। इस प्रकार य जीवाणु जिन नाइट्रेटो का उत्पादन करत हैं व सामाय पौधा का पोषण करन म समथ होती हैं। कुछ तो इस प्रकार निर्जीव जगत स नाइट्रोजन का प्रवश जीवन चक्र म हाता है और कुछ उन जीवाणुओ द्वारा जो वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का

उपयोग करते हैं।[१]

जब तक चिली के नाइट्रेटों का उपयोग प्रारम्भ नहीं हुआ था तब तक जीवन को सहारा देनेवाले नाइट्रेटों की उपलब्धि का यही एकमात्र उपाय था। खाद के रूप में जिन नाइट्रेटों का उपयोग किया जाता था उन सबका उद्गम जैव था। चिली में तथा अन्यत्र पाए जानेवाले नाइट्रेट एक सीमित परिमाण में ही हैं। और यदि अकेले उन्हीं के सहारे खेती को निर्भर रहना होता तो उनके समाप्त हो जाने से शीघ्र ही खेती को एक मुसीबत का सामना करना पड़ जाता। लेकिन आजकल हवा में उपलब्ध नाइट्रोजन से नाइट्रेटों का उत्पादन कृत्रिम रूप में किया जाता है, और यह स्रोत सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए कभी न समाप्त होनेवाला है। इस प्रकार उत्पन्न किए जानेवाले नाइट्रेट का परिमाण अन्य सभी स्रोतों में उपलब्ध होनेवाले नाइट्रेट से अपेक्षा कहीं अधिक है। नाइट्रेट उर्वरकों द्वारा खाद्यान्नों का उत्पादन किसी भी क्षेत्र में बहुत अधिक बढ़ाया जा सकता है। यह हिसाब लगाया गया है कि अमोनिया के सल्फेट अथवा सोडा के नाइट्रेट के रूप में एक टन नाइट्रोजन इतना अन्न उत्पन्न कर सकेगा जो ३६ आदमियों के लिए एक वर्ष के लिए पर्याप्त होगा।[२] इस परिकलन के परिणामस्वरूप ऐसा लगता है कि नाइट्रोजन उर्वरकों के उत्पादन में खर्च किए गए तीन पौण्ड संसार के अन्न भण्डार में उतना अन्न बढ़ा देंगे जितना नई धरती में खेती शुरू करने के लिए खर्च किए गए २५ पौण्ड से बढ़ सकता है। निष्कर्ष यह निकला कि वर्तमान समय में सामान्यतः नाइट्रोजन उर्वरकों का उत्पादन संसार में खाद्यान्नों की आपूर्ति के विचार से नई जमीन पर सिंचाई अथवा रेलों की मदद से खेती शुरू करने की अपेक्षा अधिक लाभजनक है। खेती में विज्ञान के प्रयोग का यह उदाहरण काफी रुचिकर और ध्यान देने योग्य है, क्योंकि इसमें कार्बनिक और अकार्बनिक रसायन के साथ-साथ पौधों और जानवरों के सम्पूर्ण जीवन चक्र का सावधानीपूर्वक अध्ययन करना जरूरी है।

पौधों का नाश करने वाले जीवों और रोगों के नियन्त्रण के सम्बन्ध में वैज्ञानिक शोध का एक बड़ा ही मनोरंजक क्षेत्र अब खुल गया है। अधिकांश नाशक जीव या तो कीड़े होते हैं या फफूंद, और इन दोनों ही के सम्बन्ध में हाल के वर्षों में अत्यन्त बहुमूल्य ज्ञान प्राप्त किया जा चुका है। सामान्य जनता इस प्रकार के ज्ञान का महत्त्व बहुत कम समझ पाती है सरकारें भी यदि इस ज्ञान को राष्ट्रीयता के साथ सम्बद्ध नहीं किया जा सकता तो, उसकी प्रशंसा नहीं

१ ऐविरटी० म० इ० पालम मैकी पुस्तक, 'दि मैगीरियम ऑफ लाइफ', १९३०, पृ० २६३।
२ दि टाइम्स वेकर, ११ फरवरी, १९३०।

मरती। यह सच है कि कुछ विशिष्ट रूप से महत्त्वपूर्ण माथा का प्रभाव जनता के दिमाग पर पड़ा है। मच्छरों का अण्डे देना मुश्किल कर देने से मलेरिया और पीतज्वर का जो नियन्त्रण किया जा सका उससे उन अनेक क्षेत्रों को अब इनसान जाति के लिए आवास-योग्य बनाया जा सका है, जो पहले बड़े ही घातक क्षेत्र थे। यह नियन्त्रण पनामा नहर के निर्माण के लिए तो विशेष रूप से आवश्यक था। गिल्टी वाले प्लेग का चूहों के पिस्सुओं से जो सम्बन्ध है और टाइफस बुखार का जो सम्बन्ध जुओं से है वह भी अब निश्चित लोगों को मालूम हो चुका है। किन्तु इस प्रकार के छुटपुट उदाहरणों को छोड़कर विशेषज्ञों और कुछ सरकारी अधिकारियों के अलावा शायद ही कुछ लोगों को इस बात का अनुभव हो कि शोध का एक ऐसा व्यापक क्षेत्र प्रस्तुत है जो या तो अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है, किन्तु संसार के खाद्यान्नों की आपूर्ति के सम्बन्ध में जिसका विशेष रूप से महत्त्व है।

जहाँ तक पौधों तथा नाश करने वाले कीड़ों का सम्बन्ध है, इस क्षेत्र में जो कुछ किया जा चुका है और जो कुछ करना शेष है, उसका कुछ ज्ञान 'नेचर' पत्रिका के १० जनवरी सन १९३१ के अंक में प्रकाशित एंटामॉलोजी एण्ड दि ब्रिटिश एम्पायर शीर्षक लेख को पढ़ने से प्राप्त हो सकता है। इस लेख में तीसरी इम्पीरियल एंटामॉलोजिकल कान्फ्रेंस (कीट विज्ञान-सम्मेलन) और इम्पीरियल इंस्टीटयूट आफ एंटामॉलोजी (कीट विज्ञान संस्थान) के कार्यों का विवरण दिया गया है। मैं कह नहीं सकता कि मेरे पाठकों में से कितने लोगों को इन संस्थाओं के अस्तित्व का भी ज्ञान है, फिर भी ऐसा लगता है कि औसत रूप में संसार के कृषि-उत्पादन का दस प्रतिशत प्रतिवर्ष कीड़ों द्वारा नष्ट कर दिया जाता है। जैसा कि ऊपर बताए गए लेख में कहा गया है—'ऐसा अनुमान है कि भारतीय साम्राज्य में सन १९२१ में फसलों के तथा जंगली नाशक कीटाणुओं के कारण होने वाली हानि का योग १३ करोड़ ६० लाख पौण्ड था, और कीड़ों से पैदा होने वाली बीमारियों के कारण मरने वाले लोगों की संख्या सोलह लाख प्रतिवर्ष बताई गई थी। कनाडा में खेतों और फलवाले बगीचों की फसल को कीड़ों द्वारा पहुँचने वाली हानि प्रतिवर्ष लगभग ३ करोड़ पौण्ड है। दक्षिणी अमरीका में मकई की डण्ठल में छेद करने वाले एक नाशक कीड़े के कारण केवल एक वर्ष में होने वाली हानि लगभग २७ लाख पचास हजार पौण्ड है।'

खेती का नाश करने वाले कीड़ों का नियन्त्रण करने के दो तरीके हैं भौतिक रासायनिक तरीके और जीव-वैज्ञानिक तरीके। पहले प्रकार के तरीके प्रायः धूमन के तरीके होते हैं। दूसरे प्रकार के तरीके, जो वैज्ञानिक दृष्टि से अधिक मनोरंजक हैं ऐसे परजीवियों की खोज पर निर्भर हैं जो खेती का नाश करने वाले कीड़ों का शिकार करते हैं। यह तरीका इस कथन पर आधारित है—

"बड़े पिस्सुओं की पीठ पर छोटे पिस्सू होते हैं जो उन्हें काटते हैं, छोटे पिस्सुओं की पीठ पर उनसे भी छोटे पिस्सू होते हैं और यह क्रम अनन्त रूप में चलता रहता है।" सामान्य रूप से जिन क्षेत्रों में खेती का नाश करने वाले देशज कीड़े होते हैं, वहां ऐसे परजीवी भी होते हैं जो इन कीड़ों की संख्या सीमित करते रहते हैं, किन्तु जब संयोगवश कोई नाशक कीड़ा किसी नए देश में पहुँच जाता है तब उसका नाश करने वाला परजीवी अक्सर पीछे ही छूट जाता है और इसका परिणाम यह होता है कि ऐसे नाशक कीड़े द्वारा किया जाने वाला विनाश अपेक्षाकृत रूप में उसके मूल क्षेत्र में होने वाले विनाश की अपेक्षा कहीं अधिक और व्यापक होता है। इसमें सन्देह नहीं है कि यातायात में होने वाले आधुनिक सुधारों से अनिष्टकर कीड़ों का इधर उधर फैलना भी बढ़ गया है और इसलिए इन कीड़ों के नियन्त्रण की समस्या और भी आवश्यक और महत्त्वपूर्ण हो गई है।

नए क्षेत्रों में नाशक कीड़ों के फैलने की समस्या न होने पर भी उपयोगी परजीवियों का कृत्रिम ढंग से बढ़ावा देकर इनकी रोकथाम की दिशा में बहुत कुछ सम्पन्न किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, हम एक ऐसे नाशक कीड़े को लें जिसके खतरे का पता हर ऐसे व्यक्ति को है जिसने कभी शीशे के बड़े बड़े पात्रों में टमाटरों को उगाया है। मेरा तात्पर्य है पादप-गृहों की सफेद मक्खी से। श्री ई० आर० स्पेयर ने २७ सितम्बर सन् १९३० के अंक में 'नेचर' नामक पत्रिका में इस नाशक कीड़े के जीव वैज्ञानिक नियन्त्रण का विवरण दिया है। सन् १९२६ में हर्टफोर्डशायर के एल्स्ट्री नामक स्थान पर इस सफेद मक्खी के नाशक परजीवी कीड़े की खोज की गई जिसे 'एनकार्सिया फारमोसा' कहते हैं। तब से बड़ी सावधानी के साथ इसकी नस्ल चेशन्ट नामक प्रायोगिक केन्द्र में बराबर बढ़ाई जा रही है और वहाँ से जरूरतमन्द लोग इन्हें प्राप्त कर सकते हैं। समूचे हर्टफोर्डशायर में शीशे की छाजन के नीचे की जाने वाली खेती का क्षेत्रफल लगभग उतना ही है जितना शेष समूचे ब्रिटेन में की जाने वाली इस प्रकार की खेती का क्षेत्रफल है और यहाँ चेशन्ट से जाने वाले परजीवियों की संख्या इतनी पर्याप्त रही है कि सफेद मक्खियों की तादाद अब छः वर्ष पहले की संख्या का एक अल्प अंश मात्र रह गई है।

आर्थिक कीट विज्ञान एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण विषय है जिसमें संयुक्त राज्य अमरीका ब्रिटिश साम्राज्य की अपेक्षा बहुत अधिक आगे बढ़ा हुआ है यद्यपि इस विज्ञान की सम्भाव्य उपयोगिता अंग्रेजी साम्राज्य में कम-से-कम उतनी ही अधिक है जितनी अमरीका में। निकट भविष्य में ही टिड्डियों और निद्रालुता की बीमारी पैदा करने वाली मक्खियों का उन्मूलन करने की समस्या का समाधान सम्भवतः वैज्ञानिक साधनों से परे नहीं रह जाएगा।

प्रतिष्ठित हो चुकी थी, इसलिए अब जो कुछ किया जा रहा था उसके लिए सम्माननीय पुरातनता का उदाहरण मौजूद था। बौद्ध धर्म के विरुद्ध शिंतो धर्म जापान में ही उद्भूत धर्म है, लेकिन चीन और कोरिया से आये हुए इस विदेशी धर्म के सामने युगों तक वह पृष्ठभूमि में ही पड़ा रहा था। बड़ी बुद्धिमानी से सुधारकों ने यह निर्णय किया कि ईसाई सैनिक तकनीक को जापान में लागू करते समय वे उस धर्म-दर्शन को भी साथ-साथ नहीं लागू करेंगे जो इस सैनिक तकनीक के साथ अब तक सम्बन्धित रहा था बल्कि उसके स्थान पर वे अपना राष्ट्रवादी धर्मदर्शन अपनाएँगे। जिस रूप में अब राज्य द्वारा शिंतो धर्म की शिक्षा जापान में दी जाती है उस रूप में वह राष्ट्रीयता का एक प्रबल अस्त्र बन गया है उसके देवता सब जापानी हैं, उसका ब्रह्माण्डोत्पत्ति का सिद्धान्त यह सिखाता है कि अन्य देशों की अपेक्षा जापान की सृष्टि पहले की गई थी। मिकाडो सूर्य देवता के वंशज हैं और इसलिए अन्य राज्यों के मात्र पार्थिव शासकों की अपेक्षा श्रेष्ठतर हैं। जिस रूप में आज शिंतो धर्म सिखाया जाता है उस रूप में वह जापान के अपने देशज विश्वासों से इतना अधिक भिन्न है कि सक्षम विद्यार्थियों ने उसे एक नया ही धर्म कहा है।[1] प्रगतिशील तकनीक के साथ पुराणपंथी धर्मशास्त्र के इस कुशल समन्वय के परिणामस्वरूप जापानी लोग न केवल पश्चिम से आए संकट को दूर भगाने में ही सफल हुए हैं बल्कि संसार की महानतम शक्तियों में अपना स्थान बना लेने में और समुद्री शक्तियों में तीसरा स्थान प्राप्त करने में भी सफल हुए हैं।

राजनीतिक आवश्यकताओं के अनुसार विज्ञान का उपयोग करने में जापान ने असामान्य चतुराई और विवेकशीलता दिखाई है। एक बौद्धिक शक्ति के रूप में विज्ञान संशयवादी और थोड़ा-बहुत सामाजिक संगति का विध्वंसक भी है, दूसरी ओर एक तकनीकी शक्ति के रूप में उसके गुण ठीक इसके उल्टे हैं। विज्ञान के कारण होने वाले तकनीकी विकासों ने संगठनों के आकार में और उनकी सघनता में वृद्धि की है और विशेष रूप से सरकारों की शक्ति को बहुत अधिक बढ़ा दिया है। इसलिए विज्ञान के प्रति मनोपूर्ण रुख अख्तियार करने के लिए सरकारों के पास काफी अच्छे कारण हैं बशर्ते कि उसे खतरनाक और विध्वंसकारी विचारों और कल्पनाओं से अलग रखा जा सके। राज्य जापान में तो एक प्रकार के अंधविश्वासों को पसन्द करता है और पश्चिमी देशों में दूसरे प्रकार के अंधविश्वासों का समर्थन करता है किन्तु जापान में तथा पश्चिम में सभी वैज्ञानिक—कुछ अपवादों को छोड़कर—सरकारों सिद्धान्तों को चुपचाप स्वीकार कर लेने के लिए तैयार रहते हैं क्योंकि उनमें से अधिकांश अपने-अपने

१ लेखिए प्रोफेसर बी० एच० चेम्बरलेन की पुस्तक, 'दि इन्वेंशन ऑफ ए न्यू रिलिजन', रैशनलिस्ट प्रेस एसोसिएशन द्वारा प्रकाशित।

नागरिक पहले मानते है और सत्य के अन्वेषक और पुजारी बाद म ।

जापानी नीति की असाधारण सफलता के बावजूद कुछ ऐसे अनभिप्रेत प्रभाव भी उत्पन्न हुए हैं जो समय आन पर गम्भीर कठिनाइया उत्पन्न कर सकते हैं। लोगो की आदतो म और उनके सोच विचारकर बने हुए विचारो म होने वाले आकस्मिक परिवतन न एक अधीरता और अशान्ति की भावना पैदा कर दी है, कम-से कम शहरी आबादी म। राष्ट्रीय सकट के अवसर पर यह स्थिति हिस्टीरिया की प्रवत्ति पैदा कर सकती है तोकियो म आए भूचाल के बाद कोरिया वासियो का जो हत्याकाण्ड हुआ उसम वस्तुत यही प्रवत्ति दिखाई दी थी। इसम भी गम्भीर बात तो यह है कि जापान जिस स्थिति मे है उसमे उद्योगवाद और हथियारो की वद्धि आवश्यक है। हथियारो के निर्माण म होन वाले खच के कारण जापान के मजदूर गरीब हैं, फलत उनमे विद्रोहात्मक मनोवत्ति अपनाने की प्रवृत्ति बढ रही है, और जिन परिस्थितियो म उन्हे काम करना पडता है वे परिस्थितिया उस घनिष्ठ पारिवारिक सगठन को बनाए रखने म कठिनाइया पदा कर रही हैं जिस पर जापान का समाज निर्मित हुआ है। अगर जापान को किसी असफल युद्ध म उलझना पड जाए तो ये परिस्थितिया रूसी भाति जसी कोई क्रान्ति उत्पन्न कर सकती हैं। इसलिए यह सम्भव है कि जापान की वतमान सामाजिक सरचना समय आने पर अस्थिर हो जाए लेकिन यह भी सम्भव है कि जिस कौशल स पिछले ७० वर्षों के दौरान जापान का सफलतापूवक आगे बढ़ना सम्भव हुआ है, उसी कौशल स, बिना किसी हिंसात्मक उलट फेर के जापानी लोग बदलती हुई परिस्थितियो के अनुसार धीरे धीरे अपने को ढाल लें। एक बात काफी हद तक निश्चित मालूम होती है, और वह यह है कि जापान की सामाजिक सरचना को व्यापक रूप म सशोधित करना पडेगा यह सशोधन चाहे धीरे धीरे हो और चाहे किसी क्रान्ति द्वारा हो। इसलिए महत्वपूण होते हुए भी जापान का उदाहरण समाज के वज्ञानिक निमाण का सवागपूण उदाहरण नहा है। ऐसा कहने म मेरा तात्पय यह नहा है कि जब यह समाज बना था तभी इसका निमाण और अच्छी तरह किया जा सकता था मेरा तात्पय केवल इतना ही है कि यह समाज भविष्य के लिए एक सवागपूण आदश नहीं है।

रूस म सोवियत सरकार द्वारा वज्ञानिक निमाण का जो प्रयास किया जा रहा है वह जापान म सन १८६७ म जो सुधार किए गए उनकी अपेक्षा कहीं अधिक महत्वाकाक्षापूण है इसका उद्देश्य सामाजिक सस्थाओ एव प्रथाओ म बहुत अधिक परिवतन करना है और यह प्रयास एक ऐसे समाज की सष्टि करने का है जो जापान म किए गए प्रयास की अपेक्षा हमारे अतीत अनुभव और ज्ञान से बहुत अधिक भिन्न है। निर्माण का यह प्रयोग अभी चल ही रहा है, और

कोई अविवेकी उतावला व्यक्ति ही यह भविष्यवाणी करने का साहस करेगा कि यह प्रयोग सफल होगा या असफल। सोवियत रूस के मित्रों तथा शत्रुओं दोनों की ही अभिवृत्ति इस प्रयोग के प्रति अत्यधिक अवैज्ञानिक रही है। जहां तक मेरा सम्बन्ध है मैं सोवियत प्रणाली के गुण-दोषों की विवेचना करने के लिए उतावला नहीं हूँ, मैं तो केवल इस प्रयोग के उन तत्वों की ओर संकेत करना चाहता हूं जो सोच समझकर बनाई गई योजना के तत्व हैं और जो इस योजना को एक वैज्ञानिक समाज के सर्वाधिक सर्वांगपूर्ण उदाहरण का रूप देते हैं। पहली बात तो यह है कि उत्पादन और वितरण के सभी उपादानों को राजकीय नियन्त्रण में ले लिया गया है, दूसरी बात यह है कि सम्पूर्ण राष्ट्र की शिक्षा इस ढंग से संचालित की जा रही है कि वह सरकारी प्रयोग का समर्थन करने वाले कार्य-कलापों को बढ़ावा दे। तीसरी बात यह है कि रूस की सीमा के भीतर जो विभिन्न परम्परागत धार्मिक विश्वास अभी तक मौजूद थे राज्य उनके स्थान पर अपने धर्म को प्रतिष्ठित करने का यथाशक्ति प्रयत्न कर रहा है। चौथी बात यह है कि साहित्य और सम्पूर्ण समाचारपत्रों पर सरकार का नियन्त्रण है और सम्पूर्ण साहित्य और समाचारपत्र ऐसे हैं जो राज्य के रचनात्मक उद्देश्यों की सिद्धि में सहायक हो सकते हैं। पाँचवीं बात यह है कि पारिवारिक निष्ठा जिस हद तक राज्य के प्रति व्यक्ति की निष्ठा से होड़ लेती है उस हद तक धीरे-धीरे परिवार की निष्ठा को क्षीण किया जा रहा है। छठी बात यह है कि पंचवर्षीय योजना में समूचे राष्ट्र की सम्पूर्ण रचनात्मक शक्ति का उपयोग एक निश्चित आर्थिक सन्तुलन और उत्पादन कौशल की सिद्धि के लिए किया जा रहा है और आशा की जाती है कि इस प्रकार हर व्यक्ति के लिए पर्याप्त मात्रा में भौतिक सुख-सुविधा की उपलब्धि हो सकेगी। संसार के प्रत्येक अन्य समाज में केन्द्रीय निर्देशन सोवियत सरकार द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले केन्द्रीय निर्देशन की अपेक्षा बहुत कम है। यह सही है कि युद्ध के दौरान काफी हद तक राष्ट्रों की शक्तियाँ केन्द्र-संचालित हो गई थीं लेकिन हर व्यक्ति जानता था कि यह एक अस्थायी स्थिति थी और इस समय भी अन्य राष्ट्रों का केन्द्रीय संगठन अपने सर्वाधिक रूप में भी उतना सर्वव्यापी नहीं था जितना रूस में है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है पंचवर्षीय योजना अस्थायी योजना मानी गई है और एक ऐसे मुसीबत के समय की योजना मानी गई है जो महायुद्ध की स्थिति से नितान्त भिन्न नहीं है लेकिन आशा तो यह की जानी चाहिए कि यदि यह योजना सफल होती है तो इसके बाद अन्य योजनाएं इसका स्थान लेंगी क्योंकि एक बहुत बड़े राष्ट्र के कार्य-कलापों का केन्द्रीय संगठन संचालन उसके नियन्ताओं के लिए इतना आवश्यक होता है कि उसे आसानी से छोड़ा नहीं जा सकता।

रूस का यह प्रयोग चाहे सफल हो चाहे असफल, यह निश्चित है कि

यदि यह असफल भी हुआ तो भी इसके बाद दूसरे प्रयोग किए जाएँगे जिनमें इस प्रयोग का सर्वाधिक मनोरंजक और महत्वपूर्ण लक्षण विद्यमान होगा, और वह लक्षण है एक सम्पूर्ण राष्ट्र के कार्य-कलापों का एकात्मक निर्देशन। पहले के जमाने में यह बात असम्भव थी क्योंकि यह लक्षण प्रचार की तकनीक पर आधारित है अर्थात सार्वजनिक शिक्षा, समाचारपत्र, सिनेमा और बेतार के तार पर आधारित है। रेलों ने और तार की सुविधा ने राज्य को पहले ही काफ़ी मजबूत बना लिया था, क्योंकि इनके द्वारा सेनाओं का इकट्ठा किया जाना और समाचारों का संचार शीघ्रता के साथ कर सकना सम्भव हो गया था। प्रचार की आधुनिक पद्धतियों के साथ-साथ युद्ध के आधुनिक तरीकों ने भी राज्य को असन्तुष्ट तत्वों के विरुद्ध मजबूत बना लिया है, जब तक विद्रोहियों को सैनिकों और रसायनशास्त्रियों का समर्थन न प्राप्त हो जाए तब तक वायुयानों और विषैली गैसों के कारण विद्रोह करना कठिन हो गया है। कोई भी समझदार सरकार इन दो वर्गों का पक्ष ग्रहण करेगी और उनकी निष्ठा प्राप्त करने का प्रयत्न करेगी। जैसा कि रूस के उदाहरण ने स्पष्ट कर दिया है, अब चतुर और उद्यमी लोगों के लिए यह सम्भव हो गया है कि यदि एक बार सरकारी शासन यन्त्र उनके अधिकार में आ जाए तो फिर वे शक्ति अपने हाथ में बनाए रख सकते हैं भले ही शुरू में उन्हें जनता के बहुमत का विरोध भी झेलना पड़े। इसलिए अब हम इस बात की अधिकाधिक सम्भावना स्वीकार करनी चाहिए कि सरकारों का शासनयन्त्र अल्पतन्त्रों के हाथ में जाएगा। ये अल्पतन्त्र जन्म के आधार पर न बनकर विचार के आधार पर बनेंगे। जिन देशों में काफ़ी समय से प्रजातन्त्रीय पद्धति चली आ रही है उनमें इन अल्पतन्त्रों का साम्राज्य प्रजातन्त्रीय रूपों के पीछे छिपा रह सकता है जैसा कि रोम में आगस्टस के समय हुआ था, किन्तु अन्य स्थानों पर अल्पतन्त्र का खुला शासन होगा। यदि नए प्रकार के समाजों की रचना में वैज्ञानिक प्रयोग किए जाते हैं तो वैचारिक अल्पतन्त्र का शासन अनिवार्य है। यह हो सकता है कि विभिन्न अल्पतन्त्रों के बीच संघर्ष हो लेकिन यह भी आशा की जा सकती है कि अन्ततः कोई एक अल्पतन्त्र सम्पूर्ण संसार पर आधिपत्य प्राप्त कर लेगा और एक विश्वव्यापी संगठन का निर्माण करेगा जो उसी प्रकार व्यापक और परिपूर्ण होगा जैसा आज रूस में है।

इस प्रकार की स्थिति के अपने कुछ गुण भी होंगे और कुछ दोष भी लेकिन इन गुण-दोषों से भी अधिक महत्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि वैज्ञानिक तकनीक से भरपूर प्रभावित कोई भी समाज न्यूनतम किसी भी स्थिति में शायद जीवित न रह सकेगा। वैज्ञानिक तकनीक संगठन की अपेक्षा करती है, और यह तकनीक जितना ही अधिक निर्दोष और परिपूर्ण होती जाती है उतना ही अधिकाधिक ...

संगठनों की माँग भी करती है। युद्ध की बात तो अलग है वर्तमान आर्थिक दबाव ने ही इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि न केवल किसी एक देश की समृद्धि के लिए बल्कि सभी देशों की समृद्धि के लिए उधार और साख तथा वाणिज्य का एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन आवश्यक है। आधुनिक पद्धतियों की दक्षता के कारण औद्योगिक उत्पादन का अन्तर्राष्ट्रीय संगठन आवश्यक होता जा रहा है। संसार की कुल आवश्यकताओं से कहीं अधिक चीज़ों की आपूर्ति अनेक दिशाओं में आधुनिक औद्योगिक संयन्त्र आसानी से कर सकते हैं। लेकिन इसका परिणाम हुआ है वस्तुतः गरीबी, जबकि होना चाहिए था समृद्धि। इसका कारण है प्रतियोगिता। यदि प्रतियोगिता न हो तो श्रम की अत्यधिक बढ़ी हुई उत्पादन क्षमता लोगों को अपने विश्राम और आवश्यक पदार्थों के बीच उचित समझौता या अनुपात निर्धारित करने का अवसर दे सकती है। वे स्वयं ही इस बात का निर्णय कर सकते हैं कि वे छः घण्टे प्रतिदिन काम करके धनवान बनेंगे या चार घण्टे प्रतिदिन काम करेंगे और सामान्य सुख सुविधा का उपभोग करेंगे। आर्थिक प्रतियोगिता से होने वाली बर्बादी को रोकने में और युद्ध के खतरों का उन्मूलन करने में एक विश्वव्यापी संगठन से होने वाले लाभ इतने अधिक हैं कि वैज्ञानिक तकनीक से सम्पन्न समाजों के जीवित रहने की एक अनिवार्य शर्त ही यह बनती जा रही है कि ऐसा संगठन स्थापित किया जाए। इस तर्क के विरोध में जो भी तर्क प्रस्तुत किए जा सकते हैं उनकी तुलना में यह सर्वातिशायी है, और यह प्रश्न तो इसके सामने प्रायः महत्वहीन ही हो जाता है कि एक संगठित विश्वराज्य में आज की अपेक्षा जीवन अधिक सन्तोषजनक होगा या कम। इसका कारण यह है कि जब तक मनुष्य जाति वैज्ञानिक तकनीक का त्याग नहीं कर देती तब तक एक संगठित विश्वराज्य की दिशा में ही यह विकास कर सकती है और वैज्ञानिक तकनीक का त्याग केवल ऐसे जन प्रलय के परिणामस्वरूप ही हो सकता है जो मानव सभ्यता के सम्पूर्ण स्तर को ही नीचे गिरा दे।

एक संगठित विश्वराज्य में होने वाले लाभ बहुत अधिक और स्पष्ट हैं। पहला लाभ तो यह है कि युद्ध के विरुद्ध मानव जाति सुरक्षित हो जाएगी और शस्त्रास्त्रों की होड़ में जो अपार श्रम और सम्पत्ति लगाई जाती है वह सब बच जाएगी। कल्पना की जा सकती है कि केवल एक युद्ध करने वाली सेना होगी जो अत्यन्त दक्ष होगी और मुख्य रूप से वायुयानों का और युद्ध की रासायनिक पद्धतियों का उपयोग करेगी जिसका प्रतिरोध करना स्पष्टतः असम्भव होगा। इसलिए उसका प्रतिरोध किया भी नहीं जाएगा।[१] हो सकता है कि समय समय पर राजमहल के भीतर होने वाली क्रान्ति में केन्द्रीय सरकार बदलती

१ देखिए श्री डेविड डेवीज़ की रचना, दि प्राब्लम ऑफ दि ट्वन्टीयथ सेंचुरी ए स्टडी इन इन्टरनेशनल रिलेशनशिप्स, सन् १९३०।

है, लेकिन इससे सरकार का तात्त्विक संगठन नहीं बदलेगा, केवल कठपुतली की तरह काम करने वाले नामधारी अधिकारी बदलेंगे। केन्द्रीय सरकार राष्ट्रीयता के प्रचार पर निस्सन्देह रोक लगा देगी। इस राष्ट्रीयता द्वारा ही आजकल अराजकता कायम है। इसके स्थान पर केन्द्रीय सरकार विश्वराज्य के प्रति निष्ठा का प्रचार करेगी। निष्कर्ष यह निकलता है कि इस प्रकार का संगठन यदि एक पीढ़ी तक कायम रह सका तो फिर वह स्थायी हो जाएगा। आर्थिक दृष्टि से तो इसमें अपार लाभ होगा—प्रतियोगितामूलक उत्पादन से होने वाली बर्बादी समाप्त हो जाएगी, रोजगार के सम्बन्ध में किसी को किसी प्रकार का अनिश्चय नहीं रहेगा, गरीबी नहीं होगी, भले दिन अचानक ही बुरे दिनों में नहीं बदल जाएंगे, काम करने के लिए तत्पर प्रत्येक व्यक्ति को सुख-सुविधापूर्वक रखा जाएगा और काम से जी चुराने वाले हर व्यक्ति को जेल में बन्द कर दिया जाएगा। जब कभी किसी परिस्थितिवश उस कार्य की आवश्यकता नहीं रह जाएगी जिसे कोई व्यक्ति उस समय तक करता रहा होगा, तब उसे कोई दूसरा नया काम सिखलाया जाएगा और इस प्रशिक्षण की अवधि में उसके भरण-पोषण का उपयुक्त प्रबन्ध किया जाएगा। जनसंख्या का नियन्त्रण करने के लिए आर्थिक प्रेरणाओं का प्रयोग किया जाएगा। जनसंख्या सम्भवतः स्थिर ही रखी जाएगी। जो कुछ भी मानव-जीवन में दुखदायी है प्रायः वह सभी समाप्त कर दिया जाएगा और मृत्यु भी बुढ़ापे से पहले शायद ही कभी आएगी।

इस नए स्वर्ग में लोग सुखी होंगे या नहीं यह मैं नहीं कह सकता। सम्भवतः जीव-रसायन ही हमें किसी व्यक्ति को सुखी बनाने का मार्ग दिखा सकेगा, बशर्ते कि जीवन की आवश्यक वस्तुएँ उसे उपलब्ध हों। जो लोग विनोद-हीनता से उकता जाएँगे उनके लिए शायद कुछ खतरनाक खेलों की व्यवस्था की जाएगी, क्योंकि अन्यथा ऐसे लोग उकताकर अराजकतावादी बन जाएँगे। शायद राजनीति क्षेत्र से निष्कासित निर्दयता खेलों में स्थान पाएगी। शायद फुटबाल के स्थान पर कौतुक-युद्ध आरम्भ में लड़े जाएंगे जिनमें पराजय का दण्ड मृत्यु होगा। हो सकता है कि जब तक लोगों को अपनी मृत्यु की खोज करते रहने की अनुमति दी जाएगी तब तक एक मामूली-से कारण पर भी मौत को गले लगाने में लोगों को आपत्ति नहीं होगी। लाखों दर्शकों के सामने आसमान से कूद पड़ना शायद एक गौरवपूर्ण मृत्यु की परम्परा समझी जाएगी, भले ही इसका उद्देश्य मौज मनाने वाले झुण्ड के मनोविनोद के अलावा और कुछ भी न हो। हो सकता है कि कुछ इसी प्रकार मानव-स्वभाव की अराजकतावादी और हिंसक शक्तियों के लिए एक सुरक्षा-वाल्व की व्यवस्था की जाए, अथवा फिर यह भी हो सकता है कि विवेकपूर्ण शिक्षा और उपयुक्त भोजन द्वारा मनुष्यों के अनियन्त्रित भावावेगों का उपचार कर लिया जाए और धरती पर सम्पूर्ण जीवन बसा हो

शान्तिपूर्ण हो जाए जैसा शान्तिपूर्ण रविवार का स्कूल होता है।

निश्चय ही एक विश्वव्यापी भाषा भी होगी जो या तो एस्पेरेन्टो होगी या चीनियो और यूरोपवासियों द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली अंग्रेज़ी। पुराने ज़माने का अधिकांश साहित्य इस भाषा में अनूदित नहीं किया जाएगा, क्योंकि उसका दृष्टिकोण और भावनापरक उसकी पृष्ठभूमि अव्यवस्थाकारक समझी जाएगी। इतिहास के गम्भीर विद्यार्थियों को 'हैमलेट' और 'ओथेलो'-जैसी रचनाओं का अध्ययन करने के लिए सरकार से अनुज्ञापत्र प्राप्त हो सकेगा किन्तु सामान्य जनता को उनका अध्ययन इस आधार पर निषिद्ध कर दिया जाएगा कि उनमें व्यक्तिगत हत्या को गौरवपूर्ण चित्रित किया गया है। समुद्री डाकुओं अथवा रेड इण्डियन लोगों के सम्बन्ध में लिखी गई पुस्तकें पढ़ने की आज्ञा लड़कों को नहीं दी जाएगी, प्रेम-सम्बन्धी विषयों को इस आधार पर प्रोत्साहन नहीं दिया जाएगा कि प्रेम अराजकतावादी होने के कारण यदि दुष्टतापूर्ण नहीं तो मूर्खतापूर्ण अवश्य है। सद्गुणी लोगों के लिए यह सारी स्थिति जीवन को बहुत ही आनन्ददायक बना देगी।

विज्ञान हमारी शक्ति में वृद्धि करता है, उस शक्ति से हम भला भी कर सकते हैं और बुरा भी। इसलिए विज्ञान हमारे विध्वंसात्मक भावावेगों को नियंत्रित करने की आवश्यकता में भी वृद्धि करता है। इसलिए यह ज़रूरी है कि यदि इस वैज्ञानिक जगत को आगे कायम रखना है तो लोग पहले की अपेक्षा अधिक शान्त चित्त बनें। अब रोबोट अपराधी को आदर नहीं माना जाना चाहिए और विनयशीलता की पहल की अपेक्षा अधिक प्रशंसा की जानी चाहिए। इस सारी प्रक्रिया में लाभ भी होंगे और हानि भी होगी और इन दोनों के बीच कोई सन्तुलन स्थापित करना मानव शक्ति से परे है।

तेरहवां अध्याय

व्यष्टि और समष्टि

१९वीं शताब्दी अपने राजनीतिक विचारों और अपने आर्थिक व्यवहारों के बीच एक विचित्र विभाजन से पीड़ित थी। राजनीति के क्षेत्र में तो वह लॉक और रूसो के उदारवादी विचारों को कार्यरूप में ला रही थी जो छोटे-छोटे कृषक-भूस्वामियों के समाज के लिए उपयुक्त थे। १८वीं शताब्दी के मूल मन्त्र थे 'स्वाधीनता और समानता' किन्तु उसी समय यह शती उन तकनीकों का आविष्कार भी कर रही थी जो अब बीसवीं शताब्दी को स्वाधीनता का विनाश करने और समानता के स्थान पर विभिन्न प्रकार के नये अल्पतन्त्रों की स्थापना के लिए विवश कर रही हैं। उदारवादी विचारों का प्रचलन कई प्रकार से दुर्भाग्यपूर्ण सिद्ध हुआ है क्योंकि दूरदर्शी लोगों को उद्योगवाद द्वारा प्रस्तुत की गई समस्याओं पर निष्पक्ष ढंग से विचार करने में रोक दिया है। यह ठीक है कि समाजवाद और साम्यवाद तत्वतः औद्योगिक सम्प्रदाय ही हैं किन्तु इनका दृष्टिकोण वर्ग-संघर्ष से इतना अधिक अभिभूत है कि राजनीतिक विजय प्राप्त करने के साधनों के अलावा अन्य किसी बात पर विचार करने का इनके पास कोई अवसर भी नहीं है। आधुनिक संसार में परम्परागत नैतिकता कोई सहायता नहीं कर पाती। आज एक समृद्धिशाली व्यक्ति अपने किसी कार्य द्वारा लाखों व्यक्तियों को मोहताज बना सकता है और कट्टरतम कैथोलिक धर्माध्यक्ष भी उस कार्य को पाप नहीं कह सकेगा यद्यपि वासना-सम्बन्धी मामूली-सी नैतिक च्युति के लिए वह पाप विनिर्मुक्ति की मांग करेगा जिसमें अधिक-से अधिक एक घण्टे का समय, जिसका उपयोग अच्छे ढंग से किया जा सकता था, नष्ट किया गया होगा। अपने पड़ोसी के प्रति कर्तव्य के सम्बन्ध में भी एक नये सिद्धान्त की आवश्यकता है। इस विषय पर न तो केवल परम्परागत धार्मिक उपदेश ही पर्याप्त पथ-प्रदर्शन में असफल नहीं होते, बल्कि १९वीं शताब्दी के उदारवाद के उपदेश भी असफल हो जाते हैं। उदाहरण के लिए स्वाधीनता के सम्बन्ध में लिखी गई मिल जैसे लेखक की पुस्तक को ही लें। मिल की स्थापना है कि राज्य को व्यक्ति के उन कार्य-कलापों में हस्तक्षेप करने का अधिकार है जिनके गम्भीर परिणाम दूसरों को भी प्रभावित करते हों लेकिन व्यक्ति के जिन कार्य-कलापों के प्रभाव कर्ता तक ही सीमित रहते हों, उन कार्य-कलापों में राज्य को

हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और व्यक्ति को पूरी आजादी देनी चाहिए। लेकिन आधुनिक संसार में इस प्रकार का सिद्धान्त व्यक्तिगत स्वाधीनता के लिए कोई अवकाश ही नहीं छोड़ता। जैसे जैसे समाज अधिकाधिक रूप में एक आंगिक संरचना बनता जाता है, वैसे वैसे व्यक्तियों के पारस्परिक प्रभाव अधिकाधिक बहुसंख्यक और महत्त्वपूर्ण होते जाते हैं, परिणामतः ऐसी कोई बात शेष रह ही नहीं जाती जिसके सम्बन्ध में स्वाधीनता सम्बन्धी मिल का सिद्धान्त लागू किया जा सके। उदाहरण के लिए, भाषण स्वातन्त्र्य और समाचारपत्रों की स्वाधीनता को ही लें। यह स्पष्ट हो चुका है कि जो समाज इन स्वाधीनताओं के उपभोग की पूरी आजादी देता है, वह इसी कारण उन विविध सफलताओं से वंचित रह जाता है जिनकी उपलब्धि इन स्वाधीनताओं का निषेध करने वाले समाज के लिए सम्भव होती है। यह तथ्य युद्ध काल में हर व्यक्ति को स्पष्टतः समझ में आ जाता है, क्योंकि युद्ध काल में राष्ट्रीय उद्देश्य बिलकुल स्पष्ट और सरल होता है और उसमें निहित कारणता भी प्रत्यक्ष होती है। अभी तक तो किसी भी राष्ट्र ने शान्ति काल में उस प्रकार का कोई राष्ट्रीय उद्देश्य सामने रखने की प्रथा नहीं अपनाई, केवल अपने संविधान और भौगोलिक क्षेत्र की सुरक्षा का उद्देश्य ही बराबर सामने रखा है। सोवियत रूस की भाँति जिस किसी भी सरकार के सामने शान्ति-काल में कोई उतना ही उत्कट और सुनिश्चित उद्देश्य होगा जितना अन्य राष्ट्रों के सामने युद्ध-काल में रहता है, उसे भाषण की स्वाधीनता और समाचारपत्रों की स्वाधीनता में उतनी ही काट-छाँट शान्ति-काल में भी करनी पड़ेगी जितनी काट छाँट अन्य राष्ट्र युद्ध-काल में करते हैं।

पिछले बीस वर्षों के दौरान व्यक्तिगत स्वाधीनता में जो कमी आती रही है वह प्रक्रिया शायद आगे भी जारी रहेगी क्योंकि इसे जारी रखने के दो कारण मौजूद हैं। पहला कारण तो यह है कि आधुनिक तकनीक समाज को अधिकाधिक जटिल संघटना का रूप देती जा रही है और दूसरा कारण यह है कि आधुनिक समाजशास्त्र लोगों को कारणात्मक नियमों का अधिकाधिक बोध कराता जा रहा है जिनके अनुसार एक व्यक्ति के कार्य दूसरे व्यक्ति के लिए उपयोगी या हानिकारक होते हैं। यदि भविष्य के वैज्ञानिक समाज में व्यक्तिगत स्वाधीनता के किसी भी विशिष्ट प्रकार को उचित और न्यायसंगत सिद्ध करना है तो इसी आधार पर उसे सिद्ध किया जा सकेगा कि उस प्रकार की स्वाधीनता पूरे समाज के लिए मंगलकारी है, किन्तु अधिकांश मामलों में इस आधार पर उसका औचित्य सिद्ध न किया जा सकेगा कि सम्बन्धित कार्यों का प्रभाव कर्ता के अलावा और किसी पर नहीं पड़ता।

आइए कुछ परम्परागत ढंग सिद्धान्तों के उदाहरण लें जो आज किसी प्रकार भी समस्या बनने योग्य नहीं प्रतीत होते। मेरे दिमाग में आने वाला

पहला उदाहरण है पूँजी के निवेश का। आजकल तो कुछ व्यापक सीमाओं के भीतर जिस व्यक्ति के पास भी पैसा हो वह स्वेच्छानुसार जहाँ चाहे वहाँ लगा सकता है। अर्थनीति के चढ़ते हुए ज़माने में इस स्वाधीनता का समर्थन इस आधार पर किया जाता था कि जिस किसी भी व्यापार या कारोबार में सबसे अधिक लाभ हो वही हमेशा सामाजिक दृष्टि से सर्वाधिक उपयोगी है। आजकल शायद ही ऐसे लोग हों जो इस प्रकार के सिद्धान्त को मानने का साहस करें। फिर भी यह पुरानी स्वतन्त्रता अभी तक कायम है। यह स्पष्ट है कि एक वैज्ञानिक समाज में पूँजी का निवेश वहीं किया जाएगा जहाँ उसकी सामाजिक उपयोगिता सबसे अधिक हो न कि वहाँ जहाँ अधिकतम लाभ कमाया जा सके। कमाया जाने वाला मुनाफ़ा तो प्रायः बिल्कुल आकस्मिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए रेलों और बसों के बीच की प्रतियोगिता को लें। रेलों को अपने मार्ग के लिए खर्च करना पड़ता है जबकि बसों को ऐसा खर्च नहीं करना पड़ता। इसलिए हो सकता है कि पूँजी लगाने वालों के लिए रेलें लाभदायक न हों और बसें लाभदायक हों यद्यपि सम्पूर्ण समाज की दृष्टि में बात बिल्कुल ठीक उल्टी ही क्यों न हो। अथवा दूसरा उदाहरण लें—जिन लोगों ने मिल्बैंक जेल के समीप उस समय जायदाद खरीदने की अक्लमन्दी दिखाई थी जब उस जेल को 'टेट गैलरी' में नहीं परिवर्तित किया गया था, उनके द्वारा कमाये गए मुनाफ़े पर ही विचार करें। जिस खर्चे के कारण इन लोगों को मुनाफ़े हुए वे खर्च सार्वजनिक धन से पूरे किये गए थे और इन लोगों ने जो मुनाफ़े कमाए उनके सम्बन्ध में इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि इन लोगों ने अपना पैसा किसी ऐसे काम में लगाया था जो किसी प्रकार भी जनता के लिए लाभदायक हो। एक और अधिक महत्त्वपूर्ण उदाहरण लें—विज्ञापन पर खर्च की जानेवाली अपार धन राशि पर ही विचार करें। सम्भवतः इस बात का दावा नहीं किया जा सकता कि इन विज्ञापनों से समाज का कोई लाभ होता है, शायद अत्यन्त न्यून मात्रा में होता भी हो। इसलिए हर पूँजीपति को अपनी रकम का अपनी इच्छानुसार निवेश करने की आज़ादी देने वाले सिद्धान्त का सामाजिक दृष्टि से समर्थन नहीं किया जा सकता।

मकान के मसले का ही उदाहरण लें। इंग्लैंड में व्यक्तिवादी विचारधारा के कारण अधिकांश परिवार अपना निज का छोटा-सा मकान रखना किसी बड़े मकान के एक हिस्से में रहने की अपेक्षा अधिक पसन्द करते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि मीलों दूर तक फैले हुए उपनगरों के रूप में फैलाव हुआ है जो बिल्कुल भद्दे और थकानेवाले हैं और स्त्रियों तथा बच्चों के लिए जिन्होंने बहुत सी हानि पहुँचाई है। हर गृहिणी अपने कुछ पति के लिए तमाम परिश्रम करके थोड़ा-सा भोजन तैयार कर पाती है। बच्चे जब स्कूल से घर लौटते

हैं अथवा जब वे इतने छोटे होते हैं कि स्कूल नहीं जा सकते, तब छोटे छोटे तंग स्थानों में घुसे रहते हैं जहाँ वे अपने माता पिता के लिए परेशानी पैदा करने वाले सिद्ध होते हैं या उनके माता पिता उनके लिए कष्टकारक सिद्ध होते हैं। एक अधिक समझदार समाज में हर परिवार एक बहुत बड़ी इमारत में एक हिस्से में रहेगा, इस इमारत के बीच में सहन होगा, अलग-अलग खाना नहीं पकेगा बल्कि सम्मिलित सामाजिक भोजन होगा। बच्चे जैसे ही माँ का दूध पीना छोड़ देंगे उनका सारे दिन का समय बड़े-बड़े खुले कमरों में बीतेगा जहाँ उनकी देखभाल ऐसी महिलाएँ करेंगी जिन्हें बच्चों को सुखी रखने का प्रशिक्षण प्राप्त होगा जिनका स्वभाव और ज्ञान इस काम के लिए उपयुक्त होगा। जो गृहिणियाँ आजकल अपना सारा दिन व्यर्थ के कामों में बर्बाद करती हैं उन्हें घर से बाहर अपनी रोज़ी कमाने की आज़ादी मिल जाएगी। इस प्रकार की व्यवस्था से माताओं का, और उनसे भी ज्यादा बच्चों को, अतुल लाभ होगा। राचेल मैकमिलन नर्सरी स्कूल में यह देखा गया है कि लगभग ६० प्रतिशत बच्चों के दाखिल होने के समय उन्हें सूखा रोग था, और स्कूल में एक वर्ष का समय बीतते बीतते लगभग सभी बच्चे इस रोग से मुक्त हो गए। सामान्य घरों में प्रकाश, शुद्ध वायु और अच्छे भोजन की वह व्यवस्था नहीं की जा सकती जो नर्सरी स्कूल में की जाती है लेकिन अगर तमाम बच्चों के लिए सामूहिक रूप से इन सब चीज़ों की व्यवस्था करनी हो तो बड़े सस्ते ढंग से की जा सकती है। कोई अपने बच्चों को बहुत अधिक प्यार करता है और उन्हें अपने से अलग नहीं होने देना चाहता, इस तर्क के आधार पर अपने बच्चों को कुण्ठित और विकलांग रूप में विकसित करने की आज़ादी देने की माँग एक ऐसी माँग है जिसे सार्वजनिक हित की दृष्टि से निश्चित रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता।

फिर काम के प्रश्न को ही लें, काम के प्रकार और उसके सम्पादन की पद्धति—दोनों का ही। वर्तमान समय में तो नौजवान लोग शुरू ही अपना व्यवसाय या अपनी वृत्ति चुन लेते हैं प्रायः केवल इसीलिए कि चयन के समय उन्हें उस वृत्ति या व्यवसाय में कुछ अच्छा भविष्य दिखाई देता है। एक दूरदर्शी और पूरी-पूरी जानकारी रखने वाला व्यक्ति यह समझ सकता है कि अमुक धन वृत्ति या व्यवसाय कुछ ही वर्षों बाद कम लाभदायक रह जाएगा। इस मामले में नौजवानों को यदि कुछ सार्वजनिक पथ निर्देशन मिले तो वह अत्यन्त उपयोगी होगा। जहाँ तक तकनीकी पद्धतियों का सवाल है यह कभी भी सार्वजनिक हित की बात नहीं सिद्ध हो सकती कि किसी अति प्राचीन अथवा अन्य धिक खर्चीली तरीके को उस समय भी कायम रहने दिया जाए जब उससे कहीं अधिक कम खर्चीली तकनीक मालूम हो चुकी हो। आधुनिक समय में तो, पूँजीवादी व्यवस्था की अविचारहीन और तर्कहीन पद्धति के कारण मजदूर का

व्यक्तिगत स्वार्थ अधिकांश रूप में समाज के स्वार्थ के विपरीत पड़ता है, क्योंकि कम खर्चीली पद्धतियों के अपनाए जाने से मजदूरों को अपनी रोजी से ही हाथ धोना पड़ सकता है। इस सबका कारण यह है कि पूंजीवादी सिद्धान्त एक ऐसे समाज में भी अभी कायम है जो इतना अधिक जैव संघटन का रूप प्राप्त कर चुका है कि अब उसमें इन सिद्धान्तों को कोई स्थान नहीं देना चाहिए। बिल्कुल स्पष्ट बात है कि एक सुव्यवस्थित समाज में काफी संख्या में व्यक्तियों द्वारा क्षमताहीन तकनीकों को कायम रखकर मुनाफा कमाना असम्भव हो जाना चाहिए। यह भी बिल्कुल स्पष्ट है कि सर्वाधिक कुशल तकनीक का प्रयोग चालू किया जाना चाहिए और उसके चालू होने के कारण किसी भी मजदूर को किसी प्रकार की हानि नहीं होने देनी चाहिए।

अब मैं एक ऐसे विषय को लेता हूं जिसका सम्बन्ध व्यक्तियों से और अधिक घनिष्ठ रूप से है। मेरा तात्पर्य मानव के रूप में आत्मविस्तार से है। अभी तक तो यह समझा जाता रहा है कि निषिद्ध सम्बन्ध-कोटियों से परे कोई भी स्त्री और पुरुष परस्पर शादी करने के अधिकारी हैं, और शादी कर लेने के बाद उन्हें इस बात का भी, यदि कर्तव्य नहीं तो, अधिकार अवश्य है कि प्रकृति उन्हें जितने बच्चे दे सके उतने बच्चे पैदा करें। यह एक ऐसा अधिकार है जिसे भविष्य का वैज्ञानिक समाज शायद बर्दाश्त नहीं कर सकेगा। किसी भी विशिष्ट औद्योगिक और कृषि-सम्बन्धी तकनीक से सम्पन्न राज्य में जनसंख्या की एक निश्चित अधिकतम संख्या होती है जो उसके भौतिक कल्याण को सुरक्षित रखती है। जनसंख्या के बढ़ जाने अथवा कम हो जाने पर वह भौतिक समृद्धि सम्भव नहीं होती। नये देशों को छोड़कर सामान्यतः जनसंख्या इस अधिकतम संख्या से अधिक हो रही है, यद्यपि फ्रांस पिछले कुछ दशकों में इसका अपवाद रहा है। धनी परिवारों में जायदाद की उपलब्धि उत्तराधिकार में होने वाली हो उनको छोड़कर, जनसंख्या की अधिकता के कारण छोटे परिवार के सदस्यों को लगभग उतनी ही कठिनाइयां झेलनी पड़ती हैं जितनी किसी बड़े परिवार के सदस्यों को। इसलिए जो लोग जनसंख्या में वृद्धि करते हैं वे न केवल अपने बच्चों को हानि पहुंचाते हैं बल्कि सम्पूर्ण समाज का नुकसान करते हैं। इसलिए यह कल्पना की जा सकती है कि जैसे ही धार्मिक पूर्वाग्रह बाधक न रह जाएंगे वैसे ही आवश्यकता पड़ने पर समाज लोगों को अधिक सन्तान उत्पन्न करने से रोकेगा। यही प्रश्न कुछ और अधिक खतरनाक रूप में विभिन्न राष्ट्रों और विभिन्न जातियों के बीच भी पैदा होगा। यदि कोई राष्ट्र ऐसा समझेगा कि अपने विरोधी राष्ट्र की अपेक्षा देश में जन्म-दर कम होने के कारण उसकी सैनिक श्रेष्ठता समाप्त हो रही है तो वह ऐसी स्थिति में अपने यहां जन्म-दर बढ़ाने के लिए लोगों को उत्साहित करेगा, जैसा कि किया भी जा चुका

है, किन्तु जब यह कदम भी कारगर न सिद्ध होगा, जैसा कि सम्भवतः निश्चित है, तब विरोधी राष्ट्र में जन्म दर को सीमित करने की माग की जाएगी। यदि कभी एक अन्तर्राष्ट्रीय सरकार स्थापित हो पाती है तो वह ऐसे मामलों पर विचार करेगी, और, जैसे आजकल संयुक्त राज्य अमरीका में आने वाले राष्ट्रीय प्रवासियों के लिए कोटा निश्चित है ठीक उसी प्रकार इस दुनिया में आने के लिए राष्ट्रीय प्रवासियों के कोटे भविष्य में निश्चित किए जाएंगे। निर्धारित संख्या से अधिक पैदा होने वाले बच्चों का सम्भवतः शिशु हत्या का शिकार बनाया जाएगा। यह प्रथा आधुनिक प्रथा से कम निर्दयतापूर्ण होगी, आज तो लोगों को युद्ध में अथवा भूख से तड़पाकर मारने की प्रथा चालू है। फिर भी मैं भविष्य के सम्बन्ध में केवल एक परिकल्पना कर रहा हूँ उसका समर्थन नहीं कर रहा।

जनसंख्या के परिमाण की भांति ही उसके गुण की मात्रा पर भी सार्वजनिक नियमन नियन्त्रण होना सम्भव है। अमरीका के कुछ राज्यों में तो जो लोग मानसिक विकृति वाले होते हैं उनका अनुर्वरीकरण जायज है और इंगलैण्ड में भी व्यावहारिक राजनीति के क्षेत्र में ऐसा ही प्रस्ताव उपस्थित है। यह तो महज पहला कदम है। आशा की जा सकती है कि जैसे जैसे समय बीतेगा वैसे वैसे अधिकाधिक प्रतिशत जनता का मातृत्व और पितृत्व की दृष्टि से मानसिक विकृति वाला माना जाएगा। जो कुछ भी हो यह तो स्पष्ट ही है कि जो माता पिता यह जानते हुए भी कि भावी बच्चे के मानसिक दृष्टि से विकारग्रस्त होने की पूरी पूरी सम्भावना है बच्चा उत्पन्न करते हैं वे उस बच्चे और समाज के प्रति अन्याय करते हैं। इसलिए उनको ऐसा करने से रोकने के विरुद्ध स्वतन्त्रता का कोई भी ऐसा सिद्धान्त नहीं है जिसका समर्थन किया जा सके।

स्वाधीनता में काँट छाँट करने का सुझाव देते समय हमेशा दो बिल्कुल पृथक प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक होता है। पहला प्रश्न तो यह है कि ऐसी काट छाँट यदि बुद्धिमानीपूर्वक की जाए तो, क्या सार्वजनिक हित में होगी? और दूसरा प्रश्न यह है कि यदि ऐसी काट छाँट कुछ अज्ञान और विपर्यस्त बुद्धि के साथ की जाएगी तो भी क्या उससे सार्वजनिक लाभ होगा? सिद्धान्त की दृष्टि से ये दोनों प्रश्न एक दूसरे से बिल्कुल पृथक हैं, किन्तु सरकारों की दृष्टि से तो दूसरे प्रश्न का कोई अस्तित्व ही नहीं है, क्योंकि हर सरकार को पूरा विश्वास रहता है कि वह अज्ञान और बुद्धि विपर्यय से बिल्कुल मुक्त है। फलतः जहाँ तक परम्परागत पूर्वग्रह उस पर रोक नहीं लगाते, वहाँ तक प्रत्येक सरकार लोगों की स्वाधीनता में जितना हस्तक्षेप उचित और विवेकपूर्ण है उससे भी अधिक हस्तक्षेप करने का समर्थन करेगी। इसलिए जब कभी

हम यह विचार करें कि सैद्धान्तिक दृष्टि से स्वाधीनता मे कौनसे हस्तक्षेप उचित और न्यायसगत है, जसा कि इस अध्याय मे हम कर रहे है, तब यह निष्कर्ष निकालने म हम कुछ सकोच करना चाहिए कि ऐसे हस्तक्षेपो का व्यावहारिक क्षेत्र मे भी समर्थन किया जाना चाहिए। फिर भी मैं समझता हूँ कि स्वाधीनता मे जिस प्रकार के हस्तक्षेपो का कोई सद्धान्तिक औचित्य है समय बीतने पर उन सभी हस्तक्षेपो का व्यावहारिक रूप मे अपनाया जाना सम्भव है। इसका कारण यह है कि वैज्ञानिक तकनीक क्रमश सरकारों का इतना सबल बनाती जा रही है कि बाहरी लोगो की राय पर विचार करना सरकारें जरूरी नही समझती। इसका परिणाम यह होगा कि जहा कहो सरकारो का व्यक्तिगत स्वाधीनता म हस्तक्षेप करने का कोई उपयुक्त कारण दिखाई देगा वही व ऐसा हस्तक्षेप करने म समर्थ होगी और इस प्रकार का हस्तक्षेप इसीलिए, जितना होना चाहिए उससे कही अधिक होगा। वैज्ञानिक तकनीक, इसी कारण एक ऐसी सरकारी निरकुशता लाने वाली है जो समग्र जीवन पर घातक सिद्ध हो सकती है।

स्वाधीनता की भाँति ही, समानता का मेल भी वैज्ञानिक तकनीक के साथ मिलना कठिन है, क्योकि वैज्ञानिक तकनीक म विशेषज्ञो और अधिकारियो का काफी बड़ा समुदाय आवश्यक होता है जो बड़े-बड़े सगठनो का नियन्त्रण अधिप्रबन्ध और सचालन करता है। राजनीति के क्षेत्र म लोकतान्त्रिक स्वरूप भले ही कायम रखा जा सके, लेकिन उस स्वरूप म उतनी अधिक वास्तविकता नही होगी जितना भूस्वामित्व वाले छोटे छोटे किसानो के समाज म होती है। अधिकारी अनिवार्यत शक्तिशाली होते हैं। और जहा अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्न इतना तकनीकी हो कि सामान्य व्यक्ति उन्हे समझ सकने की आशा ही न कर सके वहाँ विशेषज्ञो को अनिवार्यत काफी नियन्त्रण प्राप्त हो जाता है। उदाहरण के लिए मुद्रा और साख के प्रश्न का ही लें। यह सच है कि सन १८९६ म विलियम जेनिंग्स ब्रयान ने मुद्रा का चुनाव का एक प्रश्न बना दिया था लेकिन उनके पक्ष म वोट देने वाले लोग वही थ जो उन्हे हर सूरत मे वोट देते चुनाव का विषय उन्होने चाहे जो प्रस्तुत किया होता। अनेक सम्मानित विशेषज्ञो के अनुसार आधुनिक समय म मुद्रा और साख के प्रश्न को गलत ढग स हल किए जाने के कारण अतुलनीय कठिनाइयाँ और मुसीबतें पैदा की जा रही हैं लेकिन मतदाताओ के सामने इस प्रश्न को किसी भावावेगपूर्ण और अवैज्ञानिक रूप के अलावा अन्य किसी रूप म प्रस्तुत कर सकना असम्भव है केवल एक ही तरीके से कुछ किया जा सकता है और वह तरीका है—जो अधिकारी बड़े-बड़े केन्द्रीय बको का नियन्त्रण करते हैं उन्हे राजी कर लेना। जब तक व लोग ईमानदारी के साथ और परम्परा क अनुसार काम करते हैं तब तक समाज उनका नियन्त्रण

नही कर सकता, क्योंकि यदि वे गलती भी करते हैं तो बहुत कम लोग उस गलती को जान पाएँगे। कुछ कम महत्त्वपूर्ण एक दूसरा उदाहरण लें—जिस किसी भी व्यक्ति ने रेलो पर सामान के यातायात सचालन के अमरीकी तरीकों के साथ ब्रिटेन के तरीकों की तुलना कभी की है वह जानता है कि अमरीकी तरीके अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। वहाँ व्यक्तिगत ट्रक नही हैं और रेलों की ट्रकें एक मानक आकार की हैं जिनमे चालीस टन माल जा सकता है। इगलैण्ड मे तो हर चीज अस्त व्यस्त और अव्यवस्थित है और व्यक्तिगत ट्रको के उपयोग से बहुत अधिक बरबादी होती है। यदि यह व्यवस्था सुधारी जा सके तो भाडा कम किया जा सकता है और उपभोक्ताओ को लाभ हो सकता है, लेकिन यह कोई ऐसा मामला नही जिसको लेकर चुनाव लड़ा जा सके क्योंकि इसमे स्पष्टत न तो रेल कम्पनियो को लाभ होगा और न रेल कर्मचारियो को। यदि कभी *कुछ और अधिक एकरूप व्यवस्था लागू की जाएगी तो वह सरकारी अधिकारियो* द्वारा लागू की जाएगी, न कि लोकतन्त्रीय माग के फलस्वरूप।

समाजवाद अथवा साम्यवाद के अधीन भी वैज्ञानिक समाज उतना ही अल्पतान्त्रिक होगा जितना पूँजीवाद के अधीन, क्योंकि जहाँ कही लोकतान्त्रिक पद्धतियाँ मौजूद हैं वहा भी सामान्य मतदाता को न तो आवश्यक ज्ञान की ही उपलब्धि कराई जा सकती है और न उसे निर्णायक मौके पर मौजूद रहने में हो समर्थ बनाया जा सकता है। जो लोग आधुनिक समाज की जटिल यान्त्रिकता को समझते हैं और जिनमे उपक्रम और निर्णय करने की आदत है, वही लोग अनिवार्यत काफी हद तक घटनाओ की गतिविधि का नियन्त्रण करेंगे। अन्य किसी प्रकार के राज्य की अपेक्षा यह बात एक समाजवादी राज्य के बारे में शायद और भी अधिक लागू होती है, क्योंकि एक समाजवादी राज्य मे आर्थिक और राजनीतिक शक्ति एक ही प्रकार के लोगो के हाथो मे केन्द्रित हो जाती है, और जिस राज्य मे व्यक्तिगत उद्योग रहता है उसकी अपेक्षा समाजवादी राज्य मे राष्ट्र के आर्थिक जीवन का राष्ट्रीय स्तर पर सगठन सचालन अधिक पूर्ण होता है। इसके अलावा प्रचार और विज्ञापन के साधनो पर अन्य किसी राज्य की अपेक्षा एक समाजवादी राज्य का नियन्त्रण और भी अधिक व्यापक हो सकता है जिसके परिणामस्वरूप राज्य के हाथो मे इस बात की और भी अधिक शक्ति होगी कि जो कुछ वह लोगो को बताना चाहे वही वे जानें, और जो कुछ राज्य उन्हे न बताना चाहे उसे वे न जानें। इसलिए मुझे तो कुछ ऐसा लगता है कि स्वाधीनता की भाँति ही स्वतन्त्रता भी १९वी शताब्दी के एक सपने से अधिक और कुछ नहीं है। भावी जगत मे एक शासक वर्ग होगा, जो सम्भवत आनुवंशिक नही होगा बल्कि कथोलिक चर्च के शासको से अधिक मिलता जुलता होगा। और जैसे-जैसे इस शासक वर्ग का अधिकाधिक ज्ञान और विश्वास प्राप्त

होता जाएगा, वैसे वैसे वह व्यक्ति के जीवन में अधिकाधिक हस्तक्षेप करेगा, और इस हस्तक्षेप को लोगों द्वारा बर्दाश्त कराने की अधिकाधिक तरकीबें सीखता जाएगा। यह आशा की जा सकती है कि इन शासकों के उद्देश्य सुन्दर होंगे और उनका आचरण सम्माननीय होगा यह भी आशा की जा सकती है कि ये लोग बहुविज्ञ और उद्यमी होंगे, लेकिन मेरे विचार से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे लोग अपनी शक्ति का प्रयोग करने से केवल इस आधार पर विरत होंगे कि व्यक्तिगत उपक्रम एक अच्छी चीज़ है अथवा इस आधार पर कि एक अफ़सरतन्त्र अपने दासों के सच्चे हितों का विचार सम्भवतः नहीं कर सकता, क्योंकि जिन लोगों में इस प्रकार के आत्मनियन्त्रण की क्षमता होगी वे शक्ति और अधिकारपूर्ण पदों तक पहुँच नहीं पाएँगे। ऐसे पद तो, वंशानुगत होने की स्थिति को छोड़कर, केवल उन्हीं लोगों को प्राप्त हो सकते हैं जो ऊर्जस्वी होते हैं और जिनकी बुद्धि सन्देहों से मुक्त होती है। इस प्रकार का शासक-वर्ग कैसे संसार की सृष्टि करेगा? अगले अध्यायों में मैं इसी प्रश्न के उत्तर का कुछ अंश प्रस्तुत करने का प्रयास करूँगा।

चौदहवाँ अध्याय

वैज्ञानिक सरकार

जब मैं वैज्ञानिक सरकार की बात करता हूँ तब शायद मुझे यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि 'वैज्ञानिक सरकार' से मेरा तात्पर्य क्या है। मेरा मतलब केवल ऐसी सरकार से नहीं है जिसमें सभी लोग वैज्ञानिक हों। नेपोलियन की सरकार में बहुत-से वैज्ञानिक लोग थे जिनमें लाप्लेस भी शामिल थे, लेकिन लाप्लेस इतने अक्षम और अयोग्य साबित हुए कि थोड़े ही समय में उन्हें निकाल देना पड़ा। मेरी समझ में, जब तक लाप्लेस नेपोलियन की सरकार में थे तब तक उसे एक वैज्ञानिक सरकार मानना, और उनके निकल जाने के बाद उसे अवैज्ञानिक सरकार मानना ठीक न होगा। मेरे विचार से वैज्ञानिक सरकार की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि जिस मात्रा में कोई सरकार वांछित परिणाम उत्पन्न कर सकती है उसी मात्रा में वह कम या अधिक वैज्ञानिक है। जितने ही अधिक परिणामों की कामना और उपलब्धि कोई सरकार कर सकती है उतनी ही अधिक वैज्ञानिक वह है। उदाहरण के लिए अमरीका का संविधान बनाने वाले व्यक्तिगत सम्पत्ति की सुरक्षा की व्यवस्था करने में तो वैज्ञानिक थे, किन्तु राष्ट्रपति के अप्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था लागू करने का उनका प्रयत्न अवैज्ञानिक था। जिन सरकारों ने महायुद्ध छेड़ा था वे अवैज्ञानिक थीं, क्योंकि उस युद्ध के दौरान उन सभी का पतन हो गया। फिर भी इसका एक अपवाद था सर्बिया जो पूर्णत: वैज्ञानिक था, क्योंकि युद्ध का परिणाम ठीक वही हुआ जिसकी कामना सेराजेवो हत्याकाण्ड के समय सर्बिया की शासनारूढ़ सरकार ने की थी।

ज्ञान की वृद्धि के कारण आजकल पहले की अपेक्षा सरकारों के लिए अत्यधिक वांछित परिणाम उपलब्ध कर सकना सम्भव हो गया है। जो परिणाम आज असम्भव समझे जाते हैं उन्हें उपलब्ध करना शायद शीघ्र ही सम्भव हो जाएगा। उदाहरण के लिए, गरीबी का पूर्ण विनाश इस समय तकनीकी दृष्टि से सम्भव है। इसका मतलब यह है कि उत्पादन के ज्ञात तरीकों का यदि बुद्धिमानीपूर्वक उपयोग किया जाए तो उनसे इतनी वस्तुएं उत्पन्न की जा सकती हैं जो समूचे भूमण्डल की जनसंख्या को सामान्य सुख-सुविधापूर्वक रखने के लिए पर्याप्त हैं। लेकिन तकनीकी दृष्टि से यद्यपि यह सम्भव है, फिर भी

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अभी यह सम्भव नही है। अ तराष्ट्रीय विरोध वग विराध और व्यक्तिगत उद्योगो की अराजकतामूलक व्यवस्था इसम वाधाएँ डालती हैं और इन वाधाआ का दूर करना इतना आसान काम नही है। रागा का कम करना एक एसा उद्देश्य है जिसकी पूर्ति के माग म पश्चिमी देशो म कम वाधाए आती हैं और इसीलिए वहा इसकी पूर्ति का काम अधिक सफलतापूवक किया जा सका है। लेकिन समूचे एशिया म इस उद्देश्य क सामने भी वडी-वडी वाधाएँ आती है। क्षाण मस्तिष्क वाले लोगा के अनुवरीकरण को छोडकर, सुजनन विज्ञान तो अभी तक व्यावहारिक राजनीति का विषय ही नहीं वन सका लेकिन अगल पचास वर्षों के भीतर ऐसा हो सकता है। जसा कि हम पहले देख चुके हैं, भ्रूण पर सीधे कारवाई किए जान के तरीका द्वारा जव भ्रूण विज्ञान और अधिक विकसित हो जाएगा, तव सुजनन विज्ञान पृष्ठभूमि म आ सकता है।

य सारी वातें ऐसा हैं जो स्पष्टत साध्य होन ही ऊजस्वी और व्याव हारिक आदशवादिया को वहुत प्रभावित करेंगी। अधिकाश आदशवादी दो प्रकारा के मिश्रण होते हैं जिन्हे हम क्रमश स्वप्नदर्शी और जोड-तोड करने वाल कह सकते हैं। शुद्ध स्वप्नदर्शी तो पागल हाता है और शुद्ध जोड-तोड करने वाला एसा व्यक्ति हाता है जो केवल अपनी व्यक्तिगत शक्ति की चिन्ता करता है किन्तु आदशवादी इन दोनो अतिवादी छोरा के वीच की स्थिति म रहता है। उसम कभी कभी स्वप्नदर्शी प्रवल हो उठता है और कभी-कभी जाड तोड करने वाला। विलियम मारिस को "यूज फ्राम नो व्हयर" के सपन देखन म आनन्द मिलता था लेकिन तब तक कोई सन्तोष नही मिला जव तक वह अपन विचारो को वास्तविकता का जामा नहा पहना सके। दोना ही प्रकार के आदश वादी जिस जगत मे व हाते हैं उसस भिन्न जगत की कामना करत हैं किन्तु जाड तोड करने वाला इतना सशक्त हाता है कि वह अपने वाछित जगत की सृष्टि कर लता है जवकि स्वप्नदर्शी हैरान होकर कल्पनालोक की शरण लेता है। वज्ञानिक समाज की सृष्टि करने वाला वह आदशवादी हागा जो जाड-तोड करने वाला भी हागा। हमारे जमान म एसे लोगा के आदश उदाहरण हैं लेनिन। शुद्ध व्यक्तिगत महत्वाकाक्षा वाले व्यक्ति स जोड-तोड करन वाला आदशवादी इस दृष्टि मे भिन्न होता है कि वह न कवल कुछ चीजें स्वय अपन लिए चाहता है वल्कि एक विशेष प्रकार के समाज की भी कामना करता है। शास्वल को स्ट्रफड क वाद आयरलण्ड का लाड ल्पटीनण्ट वन जान स या लॉड के वाद कटरवरी का आकविशप वनन स शाद सन्ताप न मिलता। उसके सुख क लिए यह अत्यन्त आवश्यक था कि इग्लण्ड एक विशेष प्रकार का देश वने कवल यही नही कि वह स्वय इग्लण्ड म प्रमुख वन जाए। यह अवैयक्तिक कामना ही एक आदशवादी का दूसरे लोगा स भिन्न वनाती है। इस प्रकार क

लोगों के लिए क्रान्ति के बाद से रूस में जितना अवसर उपलब्ध हुआ है उतना अन्य किसी देश में किसी भी समय नहीं हुआ, और जितना ही अधिक वैज्ञानिक तकनीक पूर्णता प्राप्त करता जाएगी उतना ही अधिक अवसर उसे लोगों को हर कहीं प्राप्त होगा। इसलिए मुझे पूरी आशा है कि अगले दो सौ वर्षों में इस संसार को नया रूप देने में इस प्रकार के लोगों को एक प्रमुख भूमिका अदा करनी होगी।

आधुनिक युग में वैज्ञानिकों में से जिन्हें व्यावहारिक आदर्शवादी कहा जा सकता है शासन की समस्याओं के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण 'नेचर' (६ सितम्बर, १९३०) में प्रकाशित एक अग्रलेख में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है। नीचे उसके कुछ उद्धरण दिये जा रहे हैं

'विज्ञान की प्रगति के लिए स्थापित ब्रिटिश एसोसियेशन फार दि एडवांसमेंट आफ साइंस ने सन् १८३१ में (जब उसकी स्थापना हुई थी) अभी तक जो परिवर्तन देखे हैं उनमें से एक है विज्ञान और उद्योग के बीच के अन्तर का धीरे धीरे गायब हो जाना। जैसा कि लार्ड मेल्चेट ने हाल ही में अपने एक भाषण में कहा है, शुद्ध विज्ञान और प्रायोगिक विज्ञान के बीच विभेद करने का प्रयत्न अब अर्थहीन हो गया है। विज्ञान और उद्योग के बीच कोई स्पष्ट विभाजन सम्भव नहीं है। सर्वाधिक चिन्तनमूलक शोधकार्यों के परिणामों से प्रायः महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक परिणामों की उपलब्धि होती है। अब ब्रिटेन की इम्पीरियल कैमिकल इण्डस्ट्री, लिमिटेड, जैसी प्रगतिशील फर्में उस पद्धति का अनुगमन करती हैं जो जर्मनी में बहुत पहले से प्रचलित रही है और जिसमें विश्वविद्यालयों में होने वाले वैज्ञानिक शोध कार्य के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

फिर भी, यदि यह बात सही है कि पिछले २५ वर्षों में विज्ञान ने उद्योग के क्षेत्र में नेतृत्व का दायित्व तेजी के साथ स्वीकार कर लिया है, तो अब उससे और भी व्यापक दायित्व स्वीकार करने की माँग की जा रही है। आधुनिक सभ्यता की परिस्थितियों में सामान्य समाज की भाँति उद्योगों को भी शुद्ध और प्रायोगिक विज्ञान पर ही अपनी निरन्तर प्रगति और समृद्धि के लिए निर्भर रहना पड़ता है। आधुनिक वैज्ञानिक अन्वेषणों और उनके प्रयोगों के प्रभाव से न केवल उद्योगों के क्षेत्र में बल्कि अन्य अनेक दिशाओं में भी समाज का सम्पूर्ण आधार तेजी के साथ वैज्ञानिक होता जा रहा है और राष्ट्रीय प्रशासन के सामने जो भी समस्याएँ आती हैं—चाहे वे न्यायपालिका से सम्बन्धित हों और चाहे कार्यपालिका से—सबमें एसे तत्व निहित रहते हैं जिनके सुलझाने के लिए वैज्ञानिक ज्ञान की आवश्यकता होती है।

हाल के कुछ वर्षों में अन्तराष्ट्रीय संवाद-संचार और परिवहन में तेजी

के साथ जो तमाम तरह की प्रगति हुई है उसने उद्योग के सम्पूर्ण दृष्टिकोण और संगठन को आश्चर्यजनक रूप से अन्तर्राष्ट्रीय बना दिया है। साथ ही इन्हीं शक्तियों ने गलत नीतियों के कारण उत्पन्न होने वाले दुष्परिणामों की व्यापकता भी बढ़ा दी है। हाल में किए गए इतिहास-सम्बन्धी शोधकार्य से यह सिद्ध हो गया है कि दक्षिण अफ्रीका की यूनियन के सामने आज जो कठिन जातीय समस्याएँ उपस्थित हैं वे तीन पीढ़ी पहले राजनीतिक पूर्वाग्रहों के कारण निर्धारित की गई गलत नीतियों के परिणाम हैं। आधुनिक संसार में पूर्वग्रह के कारण तथा निष्पक्ष और वैज्ञानिक जाँच की अवहेलना करने के कारण की जाने वाली गल-तियों से उत्पन्न खतरे अत्यन्त गम्भीर होते हैं। जिस युग में प्रशासन और विकास की प्राय सम्पूर्ण समस्याओं में वैज्ञानिक तत्त्व निहित रहते हैं उस युग में प्रशासनिक नियन्त्रण ऐसे लोगों के हाथों में सौंपने का खतरा मोल नहीं उठा सकता जिन्हें विज्ञान का पर्याप्त ज्ञान स्वतः प्राप्त न हो।

आधुनिक परिस्थितियों में, इसीलिए, ज्ञान की सीमा रेखा विस्तृत करने की अपेक्षा कुछ और अधिक की आशा वैज्ञानिक क्षेत्र में काम करने वालों से की जाती है। अब उन्हें इस बात से सन्तोष नहीं मिलना चाहिए कि अपने अन्वेषणों के परिणाम दूसरों के हाथों में सौंप दें और उनका उपयोग मनमाने ढंग से अनिर्देशित रूप में करने दें। वैज्ञानिकों के कार्यों से जो शक्तियाँ उपलब्ध हुई हैं उनके नियन्त्रण का दायित्व भी वैज्ञानिकों को स्वीकार करना ही चाहिए। क्षमतापूर्ण प्रशासन और उच्चकोटि की राजमर्मज्ञता वैज्ञानिकों की सहायता के बिना वस्तुतः असम्भव है।

शासन के सामने जो व्यावहारिक समस्याएँ उपस्थित हैं उनमें से सर्वाधिक कठिन एक समस्या है विज्ञान और राजनीति के बीच ज्ञान और शक्ति के बीच, अथवा अधिक सटीक शब्दों में कहें तो वैज्ञानिक कार्यकर्ता और समाज के जीवन के नियन्त्रण तथा प्रशासन के बीच ठीक-ठीक सम्बन्धों की स्थापना की समस्या। ब्रिटिश एसोसिएशन के सदस्यों से समाज यह आशा करने का अधिकारी है कि वे लोग ऐसी समस्या पर कुछ विचार करें और उन उपायों के सम्बन्ध में मार्गदर्शन करें जिनसे विज्ञान अपने उपयुक्त नेतृत्व का पद प्राप्त कर सके।

यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि जहाँ राष्ट्रीय मामलों में वैज्ञानिक कार्य-कर्ता अपेक्षाकृत रूप में असमर्थ सिद्ध हुए हैं वहाँ इसके विपरीत अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में युद्ध के समय से विशेषज्ञों की परामर्शदात्री समितियों ने क्रियात्मक शक्ति से नितान्त शून्य होते हुए भी आश्चर्यजनक और महान प्रभाव डाला है। राष्ट्रसंघ (लीग आफ नेशन्स) द्वारा संगठित विशेषज्ञ समितियों का ही इस बात का श्रेय है कि ऐसी योजनाएँ कहीं

विस्थापन से और अस्तव्यस्त होने से बचा लिया गया तथा इतिहास में हुए सबसे बड़े प्रव्रजन के परिणामस्वरूप जो लगभग १५ लाख व्यक्ति शरणार्थी बन गए थे उनकी बेकारी की समस्या हल की जा सकी। फिर भी इन समितियों का कार्य केवल परामर्श देना था। इन उदाहरणों से पर्याप्त रूप में यह तथ्य सिद्ध हो जाता है कि, यदि आवश्यक प्रेरणा मिले और उत्साह हो तो वैज्ञानिक विज्ञापन ऐसी स्थितियों में भी अपना सफल प्रभाव डाल सकते हैं जब सामान्य प्रशासनिक प्रयत्न असफल हो चुके हों और जब राजममंत्रों द्वारा किसी समस्या को वस्तुतः असाध्य मानकर टाल दिया गया हो जैसा कि आस्ट्रिया के सम्बन्ध में किया गया था।

सचाई तो यह है कि समाज में भी और उद्योगों के क्षेत्र में भी वैज्ञानिक कार्यकर्ताओं का एक विशिष्ट अधिकारपूर्ण पद प्राप्त है, और प्रसन्नता की बात है कि इस तथ्य को अब वैज्ञानिक कार्यकर्ता स्वयं भी स्वीकार करते हैं। इस प्रकार गत वर्ष केमिकल सोसाइटी के सामने (लीड्स में) अपना अध्यक्षीय भाषण देते हुए प्रोफेसर जोसलिन थार्प ने यह संकेत किया था कि अब वह जमाना नजदीक आ गया है जिसमें संगठित उद्योगों द्वारा अनुमोदित नीतियों को छोड़कर अन्य मामलों में सरकारों के बदलते रहने वाले बहुमत महत्त्वपूर्ण नीतियों का निर्धारण नहीं कर सकेंगे और विज्ञान तथा उद्योगों के घनिष्ठतर संगठन का समर्थन करते हुए उन्होंने ऐसे संगठन से प्राप्त होने वाली राजनीतिक शक्ति पर जोर दिया था। ब्रिटिश एसोसिएशन के सामने जो निबन्ध (दि डिक्लाइन आफ साउथ एण्ड फ्राम ग्रेट फादर—नागरिकों से साउथ एण्ड की रक्षा) है उससे इस दावे का और भी प्रमाण मिलता है कि वैज्ञानिक कार्यकर्ता सामाजिक और औद्योगिक सुरक्षा के मामलों में नेतृत्व का दायित्व स्वीकार कर रहे हैं। ब्रिटिश एसोसिएशन की बैठकें वैज्ञानिक कार्यकर्ताओं को अपने साथ कार्य करने में चाहे जो प्रेरणा अथवा प्रोत्साहन दें, यह एसोसिएशन मानवता की और अधिक उपयुक्त सेवा कर सकने के लिए इससे अच्छा दूसरा कोई रास्ता नहीं अपना सकता कि वैज्ञानिक कार्यकर्ताओं को समाज तथा उद्योगों के क्षेत्र में व्यापक नेतृत्व के उन दायित्वों को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करे और उनका आह्वान करे जिन दायित्वों को स्वीकार करना वैज्ञानिकों के प्रयत्नों के कारण ही अनिवार्य हो गया है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैज्ञानिक लोग समाज के प्रति अपने उन दायित्वों के सम्बन्ध में सजग होते जा रहे हैं जो उनके ज्ञान के कारण उन पर आ पड़े हैं और पहले की अपेक्षा अब सार्वजनिक कार्यों के निर्देशन में अधिक भाग लेना अपना कर्त्तव्य समझने लगे हैं।

जो व्यक्ति वैज्ञानिक दृष्टि से संगठित समाज के स्वप्न देखता है और

अपने सपना को व्यवहार के क्षेत्र में उतारना चाहता है उसके सामने अनेक कठिनाइयां उपस्थित मिलती हैं। एक विरोध तो जनता और पुराने अभ्यास द्वारा प्रस्तुत होता है। लोग जिस प्रकार का व्यवहार हमेशा से करते आए हैं वैसा ही व्यवहार करते रहना चाहते हैं हमेशा से जैसे रहते आए हैं बस हा रहना चाहते हैं। फिर निहित स्वार्थों द्वारा विरोध किया जाता है। सामन्ती जमाने से जो आर्थिक पद्धति चली आ रही है वह कुछ ऐसे लोगों को सुविधाएँ देती है जिन्होंने अपने आपको उन सुविधाओं के उपयुक्त बनाने के लिए कुछ भी नहीं किया होता, और यही लोग मौलिक परिवर्तन के मार्ग में काफी बड़ी बड़ी बाधाएँ उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं क्योंकि वे धनी और शक्ति सम्पन्न होते हैं। इन शक्तियों के साथ साथ कुछ आदर्शवाद भी परिवर्तनों का विरोध करता है। ईसाई नीतिशास्त्र कुछ आधारभूत मामलों में वैज्ञानिक नीतिशास्त्र के विरुद्ध है पर वैज्ञानिक नीतिशास्त्र धीरे धीरे बढ़ता जा रहा है। ईसाई धर्म में व्यक्तिगत आत्मा के महत्त्व पर जोर दिया गया है, और बहुमत के किसी गूढ़ कल्याण के लिए किसी एक निर्दोष व्यक्ति का बलिदान करने की अनुमति देने के लिए तैयार नहीं है। संक्षेप में ईसाई धर्म अराजनीतिक है और यह स्वाभाविक भी है क्योंकि इसका विकास ऐसे लोगों के बीच हुआ था जो राजनीतिक शक्ति से शून्य थे। वैज्ञानिक तर्क नीव के सम्बन्ध में जो नया नीतिशास्त्र धीरे धीरे विकसित हो रहा है उसमें व्यक्ति की अपेक्षा समाज पर अधिक दृष्टि केन्द्रित रहेगी। अपराध और दण्ड सम्बन्धी अंधविश्वास के लिए उसमें कोई स्थान न होगा, बल्कि ऐसा नीति शास्त्र सार्वजनिक कल्याण के उद्देश्य से व्यक्तियों को कष्ट पहुँचाने के लिए प्रस्तुत होगा और इसके लिए ऐसे कारणों को गढ़ने की भी चिन्ता नहीं करेगा जिनका उद्देश्य यह सिद्ध करना हो कि वे व्यक्ति कष्ट पाने के पात्र थे। इस अर्थ में यह नीतिशास्त्र निर्दयी होगा और परम्परागत विचारों के अनुसार अनैतिक होगा लेकिन सम्पूर्ण समाज को एक सम्यक रूप में देखने समझने के अभ्यास से यह परिवर्तन स्वभावतः सिद्ध होगा। समाज को व्यक्तियों का संकलन या समुदाय नहीं माना जाएगा। उदाहरण के लिए मानव शरीर को हम एक सम्यक रूप में देखते समझते हैं और यदि शरीर के किसी अंग को काटना जरूरी होता है तो उस अंग को पहले पुष्ट सिद्ध करना हम जरूरी नहीं समझते। सम्पूर्ण शरीर के कल्याण का ही हम प्रत्येक पक्ष में पर्याप्त तर्क मान लेते हैं। इसी प्रकार जो व्यक्ति सम्पूर्ण समाज को सम्यक रूप में देखता-समझता है वह समाज के किसी भी सदस्य को बिना उस व्यक्ति के कल्याण का बहुत अधिक विचार किए, सम्पूर्ण समाज के कल्याण के लिए बलिदान कर देगा। युद्ध में तो सदैव यही नीति व्यवहार में लाई गई है क्योंकि युद्ध एक सामूहिक उद्योग

होता है। सार्वजनिक हित के लिए ही सिपाहियों को मौत के मुह म झोंक दिया जाता है, यद्यपि यह बात कोई नही कहता कि वे सिपाही इस योग्य हैं कि उन्हे मार डाला जाए। लेकिन युद्ध के अलावा अन्य सामाजिक प्रयोजना को अभी तक लोगो ने उतना महत्व नही दिया है और इसलिए उस प्रकार के बलिदान देन मे भी हिचकते रहे हैं जो उन्ह न्याय-सगत नही प्रतीत हुए। मैं समझता हूँ कि भविष्य के वैज्ञानिक आदर्शवादियो के लिए इस सोच विचार से मुक्ति पाना सम्भव होगा, न केवल युद्ध के समय बल्कि शांति काल म भी। जिस विरोध का उन्ह सामना करना पडेगा उसे परास्त करने के लिए उन लोगो को अपना एक वैचारिक अल्पतन्त्र सगठित कर लेना होगा जसा कि रूस म कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा सगठित किया गया है।

लेकिन पाठक पूछेगा कि यह सब होगा कसे ? क्या यह केवल अपनी इच्छा-पूर्ति की कामना से प्रेरित हवाई कल्पना नही है, जो व्यावहारिक राजनीति से नितान्त परे है ? मैं ऐसा नही सोचता। पहली बात तो यह है कि जो भविष्य मुझे दिखाई दे रहा है वह स्वय मेरी इच्छाओ के भी अधिक रूप म ही अनुकूल है। मुझे तो भव्य व्यक्तियो को देखकर अधिक प्रसन्नता होती है, शक्तिशाली सगठनो को देखकर मुझे उतनी प्रसन्नता नही होती, और मुझे भय है कि अतीत की अपेक्षा भविष्य म भव्य व्यक्तियों के लिए बहुत कम स्थान रह जाएगा। इस नितान्त व्यक्तिगत राय को छोड, जिस प्रकार की वैज्ञानिक सरकार की मैं कल्पना कर रहा हूँ ऐसी सरकार ससार को जिन तरीको से उपलब्ध हो सकती है उनकी कल्पना करना ज्यादा आसान है। यह तो स्पष्ट ही है कि अगले महायुद्ध म यूरोप ध्वस्त हो जाएगा। सम्भवत यूरोप की जनसख्या आधी रह जाएगी और यह आधी जनसख्या भी अराजकतापूर्ण निराशा की स्थिति म होगी। ऐसी परिस्थितियो म ससार को धनिकतन्त्र की मुट्ठी म सुरक्षित कर लेना अमरीका का काम होगा। इस प्रक्रिया का एक तात्विक कदम होगा समूचे यूरोप पर पर्याप्त नियन्त्रण कर लेना। पिछले वर्षों म जर्मनी म 'डाज आयोजना और यग आयोजना' जिस उग्र रूप म लागू की गई थी, उससे भी अधिक उग्र रूप म समूचे यूरोप पर लागू की जाएगी यूरोपवासियो से काम लेने के लिए और आधुनिकतम तकनीक और सगठन लागू करने के लिए वैज्ञानिक विशेषज्ञो को रखा जाएगा। पहले जहाँ लन्दन रहा होगा उस स्थान पर अमरीकी नौसेनिक कब्जा करेंगे और सेंट पाल गिरजाघर के खण्डहर पर गगनचुम्बी इमारतें बनेंगी। इस प्रकार एक ऐसी विश्व सरकार की स्थापना होगी जिसम बडे-बडे धनिकतन्त्रवादियो को शक्ति प्राप्त होगी, किन्तु ये लोग अधिकाश रूप में यह शक्ति विभिन्न प्रकार के विशेषज्ञो को सौंप देंगे। यह कल्पना की जा सकती है कि ये धनिकतन्त्रवादी नरम पडन

पर धीरे धीरे आलसी हो जाएंगे। अपनी शक्तियों का अपने से कम वैभवशाली विशेषज्ञों द्वारा हथिया लिया जाना इन्हें बर्दाश्त होगा और धीरे धीरे यही विशेषज्ञ संसार के वास्तविक शासक बन जाएंगे। मैं कल्पना कर सकता हूँ कि ये लोग अपना एक घनिष्ठ कार्पोरेशन बना लेंगे जिसका नियन्त्रण नियमन तब तक सम्मति के आधार पर होगा जब तक उनकी सरकार को चुनौती देने वाले मौजूद रहेंगे, लेकिन बाद में शासकों का चुनाव परीक्षाओं और बुद्धि तथा संकल्प-शक्ति की परख के आधार पर किया जाएगा।

विशेषज्ञों के जिस समाज की मैं कल्पना कर रहा हूँ उसमें कुछ थोड़े-से विकृत-बुद्धि और अराजकतावादी सनकी लोगों को छोड़कर विज्ञान के क्षेत्र में प्रसिद्ध सभी प्रमुख लोग शामिल होंगे। इस समाज के पास सम्पूर्ण अद्यतन हथियार होंगे और केवल इसी समाज को युद्ध-कौशल के सभी नये रहस्य ज्ञात होंगे। इसलिए युद्ध होंगे ही नहीं क्योंकि अवैज्ञानिक लोगों द्वारा किया जाने वाला प्रतिरोध स्पष्टतः निश्चित रूप से असफल होगा। विशेषज्ञों का यह समाज शिक्षा और प्रचार का नियन्त्रण करेगा। यह समाज विश्व-सरकार के प्रति निष्ठा की शिक्षा देगा और राष्ट्रीयता को भयंकर राष्ट्रद्रोह बना देगा। सरकार एक अल्पतन्त्र की होगी इसलिए वह अधिकांश जनसमाज में अधीनता की भावना भर देगी और उपक्रम तथा आदेश-निर्देश देने का अभ्यास केवल अपने सदस्यों तक सीमित रखेगी। सम्भव है कि अपनी शक्ति को छिपाए रखने के नए-नए तरीके यह सरकार ईजाद कर ले और लोकतन्त्र के रूपों को यथावत बने रहने दे तथा धनिकतन्त्र को इस कल्पना का आनन्द लेने दे कि लोकतन्त्र के स्वरूपों का नियन्त्रण बड़ी चतुराई के साथ वही कर रहा है। फिर भी धीरे धीरे जैसे जैसे धनिकतन्त्र के सदस्य आलसी रहने के कारण मूर्ख होते जाएँगे वैसे-वैसे उनकी सम्पत्ति भी उनके हाथ से निकलती जाएगी। यह सम्पत्ति अधिकाधिक मात्रा में सार्वजनिक सम्पत्ति होती जाएगी और उसका नियन्त्रण विशेषज्ञों की सरकार करेगी। इस प्रकार बाह्य स्वरूप चाहे जो भी रहे सम्पूर्ण वास्तविक शक्ति उन लोगों के हाथों में केन्द्रित हो जाएगी जो वैज्ञानिक जोड़-तोड़ की कला जानते होंगे।

शायद यह सारी-की-सारी कहानी एक कोरी कल्पना का ही चित्र है और भविष्य में जो कुछ भी होने वाला है वह शायद ऐसा होगा जिसकी पूर्व कल्पना नहीं की जा सकती। हो सकता है कि वैज्ञानिक सभ्यता तत्त्वतः अस्थायी सिद्ध हो। अनेक ऐसे कारण हैं जिनसे यह दृष्टिकोण असम्भाव्य नहीं प्रतीत होता। इनमें सर्वाधिक स्पष्ट कारण तो युद्ध ही है। कुछ ऐसा हुआ है कि युद्ध की कला में हुए नवीनतम आविष्कारों ने आक्रमण की शक्ति को सुरक्षा की शक्ति की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ा दिया है और इसकी कोई सम्भावना नहीं

दिखाई देती कि प्रतिरक्षामूलक कलाएँ अगले महायुद्ध से पहले अपनी पूर्व स्थिति को प्राप्त कर सकें। ऐसे लोग भी हैं जो कहते हैं कि अगले महायुद्ध में किसी को भी तटस्थ नहीं रहने दिया जाएगा।[1] यदि ऐसी बात है तो हम सभ्यता के जीवित रहने की केवल यही आशा बच रहती है कि कोई एक राष्ट्र युद्ध-क्षेत्र से इतना काफी दूर होगा और इतना सबल भी होगा कि वह इस युद्ध की विभीषिका से अपनी सामाजिक संरचना ध्वस्त होने से बचा ले। यह स्थिति प्राप्त करने का सबसे अच्छा अवसर अमरीका को प्राप्त है। कुछ सम्भावना चीन की भी है, क्योंकि उसकी आबादी बहुत अधिक है और अराजकता को बर्दाश्त करने की क्षमता भी उसमें बहुत है। अगले युद्ध में यूरोप का जो विघटन प्रायः निश्चित है, यदि ये दोनों राष्ट्र भी उस विश्वव्यापी विघटन के शिकार हो जाते हैं, तो वर्तमान स्तर पर सभ्यता को फिर पहुँचते पहुँचते कितनी ही शताब्दियाँ लग सकती हैं। यदि अमरीका अकेला ही बच निकलता है तो भी यह आवश्यक होगा कि एक विश्व सरकार का संगठन तुरंत प्रारम्भ किया जाए, क्योंकि यह आशा नहीं की जा सकती कि यह सभ्यता इसके बाद एक और विश्वयुद्ध की चोट बर्दाश्त करके बच सकेगी। ऐसी परिस्थितियों में सभ्यता के पक्ष में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण शक्ति होगी अमरीकी पूँजीपतियों की यह इच्छा कि पुरानी दुनिया के ध्वस्त देशों में सुरक्षापूर्वक अपनी पूँजी लगा सकें। यदि उन्हें केवल अपने महाद्वीप में ही अपनी पूँजी लगाने से संतोष हो गया तो भविष्य निश्चय ही अंधकारपूर्ण होगा।

एक वैज्ञानिक सभ्यता के स्थायित्व पर सन्देह करने का दूसरा कारण जन्म दर की गिरावट में उत्पन्न होता है। सर्वाधिक वैज्ञानिक राष्ट्रों के सर्वाधिक बुद्धिमान वर्ग समाप्त होते जा रहे हैं, और पश्चिमी राष्ट्रों में सम्यक् रूप में अपनी जनसंख्या बनाए रखने के अलावा और अधिक कुछ नहीं किया जा रहा। यदि कोई क्रान्तिकारी कदम नहीं उठाए जाते तो इस भूमण्डल पर श्वेतांग जातियों की जनसंख्या शीघ्र ही कम होने लगेगी। फ्रांसीसी लोगों को पहले ही से अश्वेत सैनिकों का सहारा लेना पड़ रहा है, और यदि श्वेतांग आबादी कम हो जाती है तो मोटा काम अन्य जातियों को सौंपने की प्रवृत्ति बढ़ती जाएगी। अंततोगत्वा इसके परिणामस्वरूप विद्रोह होंगे और यूरोप की हालत हायिती की सी हो जाएगी। ऐसी परिस्थितियों में हमारी वैज्ञानिक सभ्यता को जारी रखने का काम चीन और जापान के जिम्मे आएगा, लेकिन जिस अनुपात में चीन और जापान इस वैज्ञानिक सभ्यता को प्राप्त करते जाएँगे उसी अनुपात में उनकी जन्म-दर भी कम होती जाएगी। इसलिए एक वैज्ञानिक सभ्यता का स्थायी होना तब तक असम्भव ही है जब तक सन्तानोत्पत्ति को बढ़ाने के कृत्रिम तरीके नहीं

१ देखिए मे[illegible] की पुस्तक, 'दि नेक्स्ट वार', सन् १९३०।

अपनाए जाते। इन तरीकों के अपनाने में बहुत बड़ी बाधाएँ हैं। ये बाधाएँ आर्थिक भी हैं और भावनात्मक भी। यदि वैज्ञानिक सभ्यता को ध्वस्त होने से बचना है तो इस मामले में जैसे युद्ध के मामले में भी उसे और भी अधिक वैज्ञानिक होना पड़ेगा। यह पूर्वकल्पना कर सकना असम्भव ही है कि हमारी यह वैज्ञानिक सभ्यता पर्याप्त तेजी के साथ और अधिक वैज्ञानिक हो सकेगी या नहीं।

हम यह देख चुके हैं कि वैज्ञानिक सभ्यता के स्थायी होने के लिए विश्वव्यापी संगठन की आवश्यकता है। शासन के क्षेत्र में ऐसे संगठन की सम्भावना पर हम विचार कर चुके हैं। अब हम आर्थिक क्षेत्र में इस सम्भावना पर विचार करेंगे। अभी तो जहाँ तक सम्भव है उत्पादन का संगठन राष्ट्रीय आधार पर ही किया जाता है और इसके लिए शुल्क प्रतिबन्धों का सहारा लिया जाता है। प्रत्येक राष्ट्र जिन वस्तुओं का उपभोग करता है उनका उत्पादन भी यथासम्भव अधिकाधिक मात्रा में अपने राष्ट्र में ही करने का प्रयत्न करता है। यह प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है और ब्रिटेन भी अपेक्षाकृत रूप में आर्थिक अलगाव की नीति को स्वीकार करके अपनी उस नीति को छोड़ता हुआ प्रतीत हो रहा है, जिसके अनुसार मुक्त व्यापार द्वारा वह अपने निर्यात को अधिकाधिक बढ़ाने का प्रयत्न करता रहा है।

लेकिन, यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि एक शुद्ध आर्थिक दृष्टिकोण से तो अंतर्राष्ट्रीय आधार के बजाय राष्ट्रीय आधार पर उत्पादन का संगठन करने में बेकार बरबादी होती है। यदि समूचे संसार में प्रयोग में आनेवाली मोटर-कारों का उत्पादन किसी एक स्थान पर—मान लीजिए डट्रायट में—किया जाए तो उसमें बहुत बचत होगी। इसका मतलब यह है कि ऐसी स्थिति में आज की अपेक्षा कारें भी कुछ निश्चित विशिष्ट गुणों से युक्त कार कम मानवीय श्रम खर्च करके बनाई जा सकेंगी। वैज्ञानिक ढंग से संगठित संसार में अधिकांश औद्योगिक उत्पादन इसी प्रकार स्थानिक बना लिए जाएँगे। पिनें और सुइयाँ बनाने के लिए कोई एक स्थान होगा, कैंचियाँ और चाकू बनाने के लिए कोई दूसरा स्थान होगा, हवाई जहाज बनाने के लिए कोई तीसरा स्थान होगा और खेती के औजार बनाने के लिए कोई चौथा स्थान होगा, आदि। जिस विश्व सरकार की विचारणा हम कर रहे हैं वह यदि कभी स्थापित होती है तो उसके प्राथमिक कर्तव्यों में से एक कर्तव्य होगा उत्पादन का अन्तर्राष्ट्रीय संगठन। आज की भाँति उत्पादन व्यक्तिगत उद्योगपतियों के हाथ में नहीं छोड़ा जाएगा, बल्कि पूरी तरह सरकारी आदेशों के अनुसार उत्पादन की व्यवस्था की जाएगी। युद्ध सामग्री जैसी कुछ चीजों के बारे में तो आज भी यही स्थिति है, क्योंकि युद्ध के सम्बन्ध में इनको महत्त्वपूर्ण माना जाता है किन्तु अधिकांश मामलों में

उत्पादन व्यक्तिगत उत्पादकों की अस्त व्यस्त और अव्यवस्थित प्रेरणाओं पर छोड़ दिया गया है, जो कुछ चीजों को तो बहुत अधिक महत्त्व देते हैं और कुछ चीजों को बहुत कम जिसका परिणाम यह होता है कि प्रयोग में न आने वाली समृद्धि के बावजूद गरीबी मौजूद है। आज संसार में जो औद्योगिक संयंत्र अनेक क्षेत्रों में मौजूद हैं व समाज की आवश्यकताओं से कहीं अधिक है। किसी एक ही वस्तु के उत्पादन में प्रतियोगिता को समाप्त करके और उत्पादन को केंद्रित करके यह सारी बरबादी बचाई जा सकती है।

कच्चे माल का नियंत्रण एक ऐसा मसला है जिसको किसी भी वैज्ञानिक समाज में एक केन्द्रीय अधिकारी के अधीन रखा जाएगा। आजकल तो महत्वपूर्ण कच्चे मालों का नियंत्रण सैनिक शक्ति द्वारा किया जाता है। अगर किसी कमजोर राष्ट्र में तेल उपलब्ध होता है तो बहुत जल्दी ऐसा राष्ट्र किसी बलवान राष्ट्र के अधिराजत्व में आ जाता है ट्रांसवाल को अपनी स्वाधीनता इसलिए खोनी पड़ी कि उसमें सोने की खान थी। कच्चे मालों पर उन लोगों का कतई अधिकार नहीं होना चाहिए जिन्होंने विजय अथवा कूटनीति के द्वारा उन क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया हो जिन क्षेत्रों में कच्चा माल उपलब्ध होता हो, कच्चे माल तो एक विश्व-अधिकारी के अधीन होने चाहिए जो उनका नियमित वितरण उन लोगों में करे जिन्हें सर्वजन मात्र के उपयोग का सर्वाधिक कौशल प्राप्त हो। इसके अलावा, हमारी वर्तमान आर्थिक व्यवस्था हर व्यक्ति से कच्चे मालों की बरबादी कराती है क्योंकि इस मामले में दूरदर्शिता बरतने का कोई प्रेरक हेतु है ही नहीं। एक वैज्ञानिक संसार में हर महत्त्वपूर्ण कच्चे माल की आपूर्ति का सावधानापूर्वक आकलन किया जाएगा, और जैसे ही किसी माल के समाप्त होने का समय नजदीक आएगा वैसे ही उसके बदले में काम आने वाली किसी दूसरी चीज के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान प्रारम्भ कर दिया जाएगा।

सम्भव है भविष्य में खेती का उतना महत्त्व न रह जाए जितना आज और है पिछले जमाने में रहा है। इसके कारणों की चर्चा हम किसी पिछले अध्याय में कर चुके हैं। न केवल कृत्रिम रेशम ही भविष्य में हमें उपलब्ध होगा बल्कि कृत्रिम ऊन, कृत्रिम काष्ठ और कृत्रिम रबड़ भी उपलब्ध होगी। समय आ सकता है जब कृत्रिम भोजन भी मिलने लगे। लेकिन इस बीच खेती के तरीके, और जो लोग खेती करते हैं उनकी मनोवृत्ति—दोनों ही अधिकाधिक औद्योगिक हो जाएंगे। अमरीकी किसानों और कनाडा के किसानों में पहले ही से यह औद्योगिक मनोवृत्ति मौजूद है उनकी मनोवृत्ति एक शांत किसान की मनोवृत्ति नहीं है। बेहतर मशीनों का अधिकाधिक उपयोग किया जाएगा। बड़े-बड़े शहरी बाजारों के पड़ोस में धरती को कृत्रिम रूप से उष्ण बनाने की पद्धतियों का प्रयोग करके सघन खेती द्वारा प्रतिवर्ष कई फसलें पैदा की जाएंगी। समूचे

ग्रामीण क्षेत्र में यत्र तत्र बड़े-बड़े बिजलीघर होंगे जो आबादियों के केन्द्र बनेंगे। पुराने ज़माने में जो खेतिहर मनोवृत्ति चली जा रही है उसका कोई अंश शेष न रहेगा, क्योंकि न केवल धरती बल्कि जलवायु भी मनुष्य के नियन्त्रण में होगी।

कल्पना की जा सकती है कि हर स्त्री पुरुष को काम करने के लिए विवश होना पड़ेगा, और जब कभी किसी पुराने व्यापार की आवश्यकता न रह जाएगी तब सम्बन्धित कामगर को कोई नया व्यापार सिखाया जाएगा। सबसे अधिक आनन्दायक कार्य, निस्सन्देह वही होगा जिसमें इस समूची मानवता पर सर्वाधिक नियन्त्रण प्राप्त होगा। सम्भवतः सर्वाधिक शक्तिपूर्ण पद या पदनाम व्यक्तियों को दिए जाएँगे जिनका चयन उनकी बुद्धिमत्ता की परीक्षाओं के आधार पर किया जाएगा। निम्नकोटि के समस्त कार्य के लिए जहाँ कहीं सम्भव होगा, नीग्रो लोगों को लगाया जाएगा। मैं समझता हूँ यह कल्पना भी की जा सकती है कि जो कार्य अधिक वाञ्छनीय होंगे उनके लिए अधिक उच्च वेतन दिया जाएगा क्योंकि उनके सम्पादन के लिए अधिक कौशल अपेक्षित होगा। वह समाज ऐसा नहीं होगा जिसमें समानता होती है यद्यपि इस बात में मुझे सन्देह है कि विभिन्न जातियों के बीच की असमानताओं को छोड़कर—अर्थात् श्वेतांग और काले लोगों के बीच की असमानताओं के अलावा अन्य कोई असमानताएँ पनूष भी होंगी। हर व्यक्ति का जीवन सुविधापूर्ण होगा और जो लोग अधिक वेतन वाले पदों पर प्रतिष्ठित होंगे वे पर्याप्त विलासपूर्ण जीवन का उपभोग कर सकेंगे। आज की भाँति अच्छे और बुरे दिनों के दौर नहीं आएँगे क्योंकि बुरे दिनों के दौर हमारी अराजकतामूलक आर्थिक व्यवस्था के ही परिणाम हैं। कोई भी भूखा नहीं मरेगा और कोई भी उन आर्थिक चिन्ताओं का शिकार नहीं होगा जो आज धनी और निर्धन दोनों को एक समान बेचैन रखती हैं। दूसरी ओर सबसे अधिक वेतन पाने वाले विशेषज्ञों को छोड़कर शेष लोगों के लिए जीवन में कोई साहसपूर्ण उल्लास नहीं रह जाएगा। जब से सभ्यता का प्रारम्भ हुआ तब से आज तक अन्य किसी भी वस्तु की अपेक्षा लोग अपनी सुरक्षा की खोज और भी अधिक उत्साहपूर्वक करते रहे हैं। ऐसे संसार में वह सुरक्षा उन्हें उपलब्ध होगी, लेकिन विश्वासपूर्वक मैं नहीं कह सकता कि इस सुरक्षा के लिए उन्होंने जो मूल्य चुकाया होगा उसके अनुरूप वे उसे सुख-शान्ति भी समझ सकेंगे।

पन्द्रहवाँ अध्याय

वैज्ञानिक समाज में शिक्षा

शिक्षा के दो उद्देश्य होते हैं—एक ओर तो शिक्षा मस्तिष्क और चरित्र निर्माण विकास करती है, और दूसरी ओर वह नागरिक को प्रशिक्षित करती है। एथेंसवासियों ने शिक्षा के पहले उद्देश्य पर अपना ध्यान केंद्रित किया था, स्पार्टावालों ने दूसरे उद्देश्य पर। स्पार्टा वाले विजयी हुए थे लेकिन दुनिया ने एथेंसवासियों को ही याद रखा।

मेरे विचार से एक वैज्ञानिक समाज में शिक्षा की सर्वोत्तम अवधारणा उस शिक्षा के अनुरूप की जा सकती है जो जेसुइट लोगों से उपलब्ध हुई। जो लड़के सामान्य सांसारिक व्यक्ति बननेवाले होते थे उन्हें जेसुइट लोग एक प्रकार की शिक्षा देते थे, और जो लड़के 'सोसाइटी ऑफ जीसस' (धार्मिक पंथ) के सदस्य होनेवाले होते थे उन्हें दूसरे प्रकार की शिक्षा देते थे। इसी प्रकार वैज्ञानिक शासक भी सामान्य स्त्री-पुरुषों को एक प्रकार की शिक्षा देने की व्यवस्था करेंगे, और जो लोग वैज्ञानिक शक्ति के रखवाले बननेवाले होंगे उन्हें दूसरे प्रकार की शिक्षा देंगे। सामान्य स्त्री-पुरुषों से यह अपेक्षा की जाएगी कि वे विनीत हों, उद्यमी हों, समय-परायण हों, विचारहीन हों और सन्तुष्ट रहनेवाले हों। इन सभी गुणों में से सन्तुष्ट रहनेवाला गुण सम्भवतः सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना जाएगा।

यह गुण उत्पन्न करने के लिए मनोविश्लेषण, व्यवहारवाद और जीव रसायन के क्षेत्र में किए गए सभी शोधों का उपयोग किया जाएगा। बचपन में ही बच्चों की शिक्षा इस ढंग से व्यवस्थित की जाएगी जिससे भावग्रंथियों के उत्पन्न होने की कम-से-कम सम्भावना हो। लगभग सभी बच्चे प्रसन्न, स्वस्थ और सुखी लड़के या लड़कियाँ होंगे। उनका भोजन उनके माता-पिता की रुचि अरुचि पर निर्भर नहीं रहेगा बल्कि सर्वोत्तम जीवरसायनशास्त्री द्वारा निर्धारित करने के बाद भोजन उन्हें दिया जाएगा। अपना काफी समय बच्चे खुली हवा में बिताएँगे और पुस्तक-ज्ञान जितना नितान्त आवश्यक होगा उससे अधिक उन्हें नहीं कराया जाएगा। इस प्रकार निर्मित स्वभाव में अधीनता की भावना बनाए रखनेवाले अफसर द्वारा प्रयुक्त तरीकों से अथवा बाल्चरों पर प्रयोग में लाए जानेवाले कुछ नरम तरीकों से उत्पन्न की जाएगी। बचपन में ही सभी बच्चे

सहभागी बनने की कला सीखेंगे, अर्थात जो कुछ हर व्यक्ति द्वारा किया जा रहा है ठीक वही करने की कला सीखेंगे। इन बच्चों में उपक्रम की भावना को दबाया जाएगा, और बिना दण्ड दिए ही अवज्ञा की भावना वैज्ञानिक ढंग के प्रशिक्षण से दूर कर दी जाएगी। उनकी सम्पूर्ण शिक्षा अधिकांश रूप में शारीरिक होगी, और स्कूल की अवधि समाप्त होने पर उन्हें कोई रोजगार सिखाया जाएगा। किस रोजगार में किस बच्चे को लगाया जाए इसका फैसला करने के लिए विशेषज्ञ लोग बच्चों की अभिवृत्ति परखेंगे। औपचारिक पाठ जितने भी उस स्थिति में शेष रहेंगे, सिनेमा अथवा रेडियो के द्वारा पढ़ाए जाएँगे, ताकि एक ही शिक्षक समूचे देश में चलनेवाली सभी कक्षाओं में वही पाठ एक साथ पढ़ा सके। इन पाठों को पढ़ाने का काम निस्सन्देह, अत्यन्त कौशलपूर्ण कार्य माना जाएगा जो शासक वर्ग के सदस्यों के लिए ही आरक्षित रहेगा। आजकल के स्कूलों के अध्यापक के स्थान पर स्थानीय दृष्टि से केवल एक महिला की आवश्यकता होगी जो शान्ति और व्यवस्था कायम रखने के लिए होगी। यद्यपि आशा तो यही की जाती है कि बच्चों का व्यवहार इतना अच्छा होगा कि इन सम्माननीय महिला की सेवाओं की शायद ही कभी आवश्यकता पड़े।

दूसरी ओर जिन बच्चों को शासक वर्ग का सदस्य बनना होगा, उन्हें बिल्कुल भिन्न प्रकार की शिक्षा दी जाएगी। ऐसी शिक्षा के लिए कुछ बच्चे तो जन्म से पहले ही चुन लिए जाएँगे, कुछ का चुनाव जन्म से लेकर तीन वर्ष के अन्दर किया जाएगा, और कुछ का तीन वर्ष से छः वर्ष की अवस्था के बीच में। उनकी बौद्धिक शक्ति और संकल्प शक्ति को साथ-साथ विकसित करने के लिए सर्वोत्तम ज्ञात विज्ञान का प्रयोग किया जाएगा।

अतः सर्वोत्तम सम्भव क्षमता उत्पन्न करने के उद्देश्य से सुजनन-विज्ञान का, भ्रूण के रासायनिक और तापीय उपचार का तथा प्रारम्भिक वर्षों में उपयुक्त भोजन का प्रयोग किया जाएगा। बच्चा जब से बात करना प्रारम्भ कर सकेगा तभी से उसके मन मस्तिष्क में वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न किया जाएगा और प्रारम्भिक वर्षों में जब बच्चों पर प्रायः आसानी से प्रभाव डाला जा सकता है सावधानीपूर्वक उन्हें ज्ञानहीन और अवैज्ञानिक लोगों के सम्पर्क में आने से बचाया जाएगा, शैशव से लेकर बीस वर्ष की अवस्था तक बच्चे के दिमाग में वैज्ञानिक ज्ञान भरा जाएगा और हर स्थिति में बारह वर्ष से लेकर बच्चे को विज्ञान की उन शाखाओं का विशेषाध्ययन कराया जाएगा जिनमें उसकी अभिरुचि सर्वाधिक रहती हो। और साथ-ही-साथ उसे शारीरिक दृढ़ता के गुर भी सिखाए जाएँगे, बर्फ पर नंगे लुढ़कने के लिए उसे प्रोत्साहित किया जाएगा, कभी-कभी चौबीस घण्टों तक निराहार रहने, गर्म दिनों में मीलों की दौड़ लगाने, शारीरिक साहसिक कार्यों में हिम्मत दिखाने, और जब कभी शारीरिक कष्ट

हो तब उसकी शिकायत न करने के लिए उसे उत्साहित किया जाएगा। बारह वर्ष से लेकर उसे अपने से कुछ छोटे बच्चों का संगठन करना सिखाया जाएगा, और यदि ऐसे बच्चों की टोलियाँ उसका अनुगमन न कर सकीं तो उसकी कड़ी निन्दा और आलोचना की जाएगी। उसके सामने निरंतर अपने जीवन का एक अत्यंत उच्च लक्ष्य प्रस्तुत किया जाएगा और उसके आदेशों के प्रति निष्ठा इतनी स्वयंसिद्ध होगी कि उसके दिमाग में अपने आदेश के सम्बन्ध में सन्देह करने की बात कभी उत्पन्न ही न होगी। इस प्रकार प्रत्येक युवक को दोहरा प्रशिक्षण दिया जाएगा—बुद्धिमानी का प्रशिक्षण, आत्म निर्देशन का प्रशिक्षण, और दूसरा के निर्देशन नियंत्रण का प्रशिक्षण। इन तीनों में से किसी में भी यदि वह असफल हो जाएगा तो उसे सामान्य मजदूरों की श्रेणियों में गिरा देने का भयंकर दण्ड दिया जाएगा और अपने शेष सम्पूर्ण जीवन भर उसे ऐसे स्त्री-पुरुषों के साथ रहने का दण्ड मिलेगा जो शिक्षा में, और सम्भवतः समझदारी में भी, उससे बहुत निम्नकोटि के होंगे। इस दण्ड का भय ही ऐसे सभी बच्चों में उद्यमी और अध्यवसायी बनने की प्रेरणा पैदा करने के लिए काफी होगा और शासक वर्ग के शायद अत्यल्पसंख्यक बच्चों पर यह प्रभाव कारगर न हो पाएगा।

विश्व राज्य के प्रति और स्वयं अपने वर्ग के प्रति निष्ठा के मामले को छोड़कर अन्य सभी मामलों में शासक वर्ग के सदस्यों को साहसी और उपक्रम सम्पन्न बनने के लिए उत्साहित किया जाएगा। वैज्ञानिक तकनीक में सुधार करना और शारीरिक श्रम करने वाले मजदूरों को निरन्तर नये मनोरंजनों से सन्तुष्ट रखना उनका कर्तव्य माना जाएगा। चूँकि इन्हीं लोगों पर सारी प्रगति निर्भर होगी, इसलिए न तो उन्हें अनावश्यक रूप में अधीन भावना वाले होना चाहिए और न उनका इतना नियंत्रण होना चाहिए कि वे नये विचार प्रस्तुत करने में असमर्थ हो जाएँ। अपने अध्यापकों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने और उनके साथ विवाद करने के लिए भी उन्हें प्रोत्साहित किया जाएगा जबकि जिनके भाग्य के लिए शारीरिक श्रम करने वाले मजदूर बनना निर्धारित कर दिया जाएगा उन्हें ऐसा कोई अवसर नहीं मिलेगा। अपने आपको सही सिद्ध करना उनका कर्तव्य होगा, और यदि वे ऐसा नहीं कर पाते तो विनम्रतापूर्वक अपनी भूल स्वीकार कर लेना भी उनका फर्ज होगा। फिर भी शासक वर्ग के बच्चों के लिए भी बौद्धिक स्वाधीनता की कुछ सीमाएँ निर्धारित होंगी। विज्ञान के मूल्य महत्त्व के सम्बन्ध में अथवा शारीरिक मजदूरों और विशेषज्ञों के दो वर्गों में जनसंख्या के विभाजन के सम्बन्ध में सन्देह करने या प्रश्न उठाने की अनुमति उन्हें नहीं दी जाएगी। उन लोगों को इस विचार के साथ मन बहलाने की भी अनुमति नहीं दी जाएगी कि शायद कविता भी मशीनों के समान

मूल्यवान है, अथवा प्रेम उतनी ही अच्छी चीज है जितनी अच्छी चीज वैज्ञानिक शोध है। अगर किसी साहसी के मन-मस्तिष्क में इस प्रकार के विचार उत्पन्न हो ही गए तो उसे एक भयाक्रान्त कष्टपूर्ण शान्ति में चुपचाप सुन लिया जाएगा और इस बात का बहाना किया जाएगा कि ऐसे विचारों को सुना ही नहीं गया।

जितना जल्दी शासकवर्ग के बच्चे इस तथ्य को समझने योग्य हो जाएँगे उतनी ही जल्दी उनके मन मस्तिष्क में सार्वजनिक कर्तव्य की एक गम्भीर भावना भर दी जाएगी। उन्हें यह शिक्षा दी जाएगी कि मानव-जाति का वे अपने ऊपर निर्भर समझें और यह कि उन्हें उदारतापूर्वक सेवा करनी है विशेषकर उन कम भाग्यशाली वर्गों की जो उनके नीचे हैं। लेकिन इससे यह अर्थ न लगाया जाए कि ये लोग मिथ्याभिमानी होंगे। मिथ्याभिमान से ये वस्तुतः दूर होंगे। जिस बात पर वे लोग अपने हृदय में विश्वास भी करते होंगे, उसे यदि स्पष्ट शब्दों में कोई व्यक्त कर देगा तो कुछ अवमाननापूर्ण हँसी के साथ वे उस बात को टाल देंगे। उनका व्यवहार मधुर और सुखद होगा और उनकी परिहास-वृत्ति कभी भी चूकने वाली न होगी।

शासकवर्ग के सर्वाधिक बुद्धिमान बच्चों की शिक्षा का अन्तिम दौर होगा शोध-सम्बन्धी प्रशिक्षण। शोधकार्य अत्यधिक संगठित होगा और युवकों को अपना विशिष्ट शोधकार्य चुनने की अनुमति नहीं दी जाएगी। बेशक उन्हें ऐसे ही विषयों में शोधकार्य करने का निर्देश दिया जाएगा जिन विषयों में उन्होंने अपनी कुछ विशिष्ट क्षमता दिखाई होगी। कुछ थोड़े-से लोगों को छोड़कर वैज्ञानिक ज्ञान का बहुत बड़ा अंश शेष सभी लोगों से छिपाकर गुप्त रखा जाएगा। पुरोहित वर्ग के शोधकर्ताओं के लिए कुछ रहस्य आरक्षित रहेंगे। ये शोधकर्ता बड़ी सावधानी के साथ अपनी बौद्धिक प्रतिभा और निष्ठा के गुणों के आधार पर चुने जाएँगे। मेरे विचार में यह आशा की जा सकती है कि शोध-कार्य आधारभूत होने के बजाय तकनीकी अधिक होंगे। शोध सम्बन्धी विभाग भी विभाग के अध्यक्ष बुजुर्ग लोग होंगे और उन्हें इस विचार से ही सन्तोष मिलेगा कि उनके विषय के आधारभूत तत्त्व भलीभाँति ज्ञात हैं। यदि मूलाधारों के सम्बन्ध में सरकारी दृष्टिकोण को गलत साबित करने वाले शोधकार्य नौजवानों द्वारा किए जाएँगे तो उन पर आक्रोश ही व्यक्त किया जाएगा, और यदि उतावलेपन के साथ ऐसे शोधकार्य को प्रकाशित कर दिया जाएगा तो उसका परिणाम शोधकर्ता की पदच्युति ही होगा। जिन युवकों को कोई आधारभूत नई बात सूझेगी वे अपने आचार्यों को इन नए विचारों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि-कोण अपनाने के लिए प्रेरित करने का सतर्कतापूर्ण प्रयत्न करेंगे, किन्तु यदि उनके ये प्रयत्न असफल हो गए तो अपने नए विचारों को वे तब तक छिपाए रखेंगे जब तक वे स्वयं अधिकारपूर्ण पदों पर नहीं पहुँच जाते, और ऐसा समय आने

तक सम्भवत व अपन नए विचारा को भूल भी गए होंगे। तकनीकी शोधकाय के लिए सगठन और अधिकार का वातावरण बहुत ही उपयुक्त और सुविधा जनक होगा, किन्तु जसे शोधकाय, उदाहरण के लिए वतमान शतो म भौतिकी के क्षेत्र म देखे गए हैं इस प्रकार क विध्वसक नवशाधा के प्रति वातावरण विरोधपूण ही रहेगा। निस्सदेह एक सरकारी तत्वमीमासा भी हागी जिसे बौद्धिक दृष्टि से तो महत्वहीन माना जाएगा, किन्तु राजनीतिक दृष्टि से जिसे मान्य माना जाएगा। अततोगत्वा वैज्ञानिक प्रगति की रफ्तार धीमी होती जाएगी और अधिकार क प्रति सम्मान की भावना शोधकाय को समाप्त कर देगी।

जहा तक शारीरिक श्रम करने वाले मजदूरा का सवाल है उन्ह गम्भीर विचार करने स निरुत्साहित किया जाएगा जहाँ तक सम्भव होगा उनके लिए सुख-सुविधा का प्रबन्ध किया जाएगा और उनके काम के घण्टे आज की अपेक्षा बहुत कम होंगे उनके सामने निरीहता का अथवा उनक बच्चा क दुर्भाग्य का कोई भय नही रहेगा। जसे ही काम के घण्टे समाप्त हागे, इस प्रकार का मनोरजन प्रस्तुत कर दिया जाएगा जिमस भरपूर हँसी और आनन्द प्राप्त हा और सन्तोष के कोई विचार उत्पन्न ही न होन पाएँ जो अन्यथा उनकी सुख-सुविधा को नगण्य बना सकत हैं।

जब कभी एसे अवसर उत्पन्न हागे जिनम सामाजिक पद निर्धारण करने की सामान्य अवस्था पार कर चुकने वाले किसी युवक या युवती म इतनी अधिक क्षमता दिखाई देगी जो शासकों की बौद्धिक क्षमता क समान हो तब एक कठिन स्थिति उत्पन्न हागी जिसके सम्बन्ध म गम्भीरतापूवक विचार करना आवश्यक हो जाएगा। किन्तु ऐसे अवसर बहुत कम आएँगे। यदि ऐसा युवक अपन पहले के सगी-साथियों को छोडकर पूरे दिल स शासकों के साथ अपन आपको मिला देने के लिए तत्पर हा तो उपयुक्त परीक्षाएँ लेने के बाद उसे सामाजिक पदोन्नति दी जा सकेगी किन्तु यदि अपन पहले के सगी-साथिया के साथ वह कोई खेदजनक एकता की भावना प्रदर्शित करता है तो मजबूरन शासकों को यह निर्णय करना पडेगा कि उसकी अनुशासनहीन बुद्धिमानी का विद्रोह की भावना का प्रचार करन का अवसर मिलने से पहले ही उस घातक कक्ष म भेज देने क अलावा और कोई चारा नहीं है। शासकों के लिए यह एक कष्टपूर्ण कतव्य होगा लेकिन मैं समझता हूँ कि इस कतव्य को पूरा करन से व हिचकेंगे नहीं।

सामान्यत पर्याप्त मात्रा म उत्तम घरान क बच्चा को गर्भाधान के समय से ही शासकवग म शामिल कर लिया जाएगा। जन्म के बजाय मैंने गर्भाधान क समय की चर्चा इसलिए की है कि जन्म क बजाय इसी समय स दोना वर्गों क साथ किया जाने वाला व्यवहार भिन्न हागा। किन्तु फिर भी यदि तीन वर्ष की अवस्था तक पहुँचते पहुँचते यह पर्याप्त रूप म स्पष्ट हो जाता है कि बच्चा

वाछित स्तर तक नही पहुँचता तो उसे उसी स्थिति म नीचे के वग मे कर दिया जाएगा। मैं इस वात को मान लेता हूँ कि उस समय तक तीन वप के बच्चे की समझदारी को पर्याप्त रूप मे सही सही आकना सम्भव हो जाएगा। जिन मामलो म कोई सदह होगा उनकी परख छ वष की अवस्था तक सावधानी पूवक की जाएगी और कल्पना की जा सकती है कि इस अवस्था तक सरकार द्वारा कोई निणय किया जाना सम्भव होगा। किन्तु ऐसे मामले बहुत कम होगे, और छ वष की अवस्था तक जिनके सम्बध म निणय न किया जा सके, ऐसे मामले तो और भी कम होगे। इसके विपरीत मजदूरो के बच्चो को तीन वप और छ वप के बीच की अवस्था म किसी भी समय उच्चवग मे लिया जा सकेगा, किन्तु इसके बाद बहुत कम मामलो मे एसा सम्भव होगा। फिर भी मेरे विचार म यह माना जा सकता है कि शासकवग के वशानुगत बन जाने की बडी प्रबल प्रवृत्ति होगी, और कुछ पीढियो के बाद एक वग के बच्चो को दूसरे वग म स्वीकार करने की प्रथा बहुत ही सीमित हो जाएगी। यदि सतति के सुधार म भ्रूण वज्ञानिक पद्धतियो का प्रयोग केवल शासकवग मे ही किया गया और अय वर्गों म उनका प्रयोग न किया गया तो यह बात विशेष रूप स लागू होगी। इस प्रकार दोना वर्गों क बीच नसर्गिक समझदारी और बुद्धिमानी-सम्बधी अन्तर की खाई बरावर अधिकाधिक चौडी होती जाएगी। लेकिन इसके परिणामस्वरूप हीन बुद्धि वाले वग का विनाश नही होगा, क्योकि शासक लोग अरोचक शारीरिक श्रम करना, अथवा मजदूरा की व्यवस्था करने म अपनी उदारता और सावजनिक भावना को व्यक्त करने के लिए मिलने वाले अवसर से वचित होना, पसद नही करेंगे।

सोलहवाँ अध्याय

वैज्ञानिक प्रजनन

सामाजिक संगठन पर एक बार मजबूत अधिकार हो जाने पर इसकी सम्भावना बहुत कम है कि विज्ञान मानव जीवन के उन जीव विज्ञान-सम्बन्धी पहलुओं तक ही सीमित रह जाए जिनके सम्बन्ध में अभी तक मार्गदर्शन का काम धर्म और प्रेरणा के मत्थे छोड़ दिया गया था। मेरे विचार से हम लोग यह कल्पना कर सकते हैं कि आबादी की मात्रा और उसके गुण दोनों का ही सतर्कतापूर्वक नियमन राज्य द्वारा किया जाएगा, लेकिन बच्चों की उत्पत्ति के मामले को छोड़कर यौन सम्भोग को तब तक एक व्यक्तिगत मामला माना जाएगा जब तक उसके कारण काम में कोई बाधा या हस्तक्षेप न पड़े। जहाँ तक आबादी की संख्या का सवाल है राज्य के सम्पादित यथासम्भव सावधानीपूर्वक यह निर्धारित करने का प्रयत्न करेंगे कि किसी भी क्षण संसार की जनसंख्या उस निश्चित संख्या से कम है या ज्यादा जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को सर्वाधिक भौतिक सुख सुविधा दी जा सकती है। तकनीक में जो भी भावी परिवर्तन सोचे समझे जा सकते होंगे उनका भी पूरा पूरा विचार वे लोग करेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि सामान्य नियम तो जनसंख्या को स्थिर रखना ही होगा किन्तु यदि किसी महत्वपूर्ण आविष्कार द्वारा जीवन की आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन बहुत अधिक सस्ता हो जाए, जैसे कृत्रिम भोजन का उत्पादन तो कुछ समय के लिए जनसंख्या की वृद्धि की बात सोची जा सकेगी। फिर भी मैं तो यही कल्पना करूँगा कि सामान्य स्थितियों में विश्व सरकार जनसंख्या को स्थिर रखने का ही आदेश देगी।

यदि हमारी यह कल्पना ठीक है कि वैज्ञानिक समाज में किए जाने वाले कार्यों के अनुसार विभिन्न सामाजिक स्तर होंगे तो हम यह भी कल्पना कर सकते हैं कि ऐसे समाज में उन व्यक्तियों का भी उपयोग होगा जो सर्वोच्च स्तर की बुद्धि से सम्पन्न न होंगे। सम्भव है कि कुछ प्रकार का श्रम मुख्य रूप से नीग्रो लोगों द्वारा किया जाए और शारीरिक श्रम करने वाले मजदूरों को सामान्यतः मस्तिष्क के विकास की शिक्षा न देकर धैर्यपूर्वक शारीरिक श्रम करने की शिक्षा दी जाए। इसके विपरीत शासकों और विशेषज्ञों को मुख्य रूप से बौद्धिक क्षमताओं और चरित्र-बल के विकास की शिक्षा दी जाएगी। यदि यह मान

रहे कि दोनों प्रकार का ही पोषण शिक्षण वैज्ञानिक रूप से सम्पन्न होगा तो इन दोनों प्रकार के वर्गों के बीच अधिकाधिक भेद बढ़ता जाएगा, जिसके फलस्वरूप दोनों वर्ग अन्तत बिल्कुल भिन्न प्रकार की जातियाँ बन जाएँगी।

आजकल तो एक शुद्ध वैज्ञानिक अर्थ में वैज्ञानिक प्रजनन का दुर्निवार विरोध धर्म और भावना दोनों क्षेत्रों से किया जाएगा। वैज्ञानिक ढंग से प्रजनन के लिए यह आवश्यक होगा कि पुरुषों के अत्यल्प प्रतिशत का उपयोग किया जाए जैसा कि पालतू जानवरों के सम्बन्ध में किया जाता है। यह बात समझ में आ सकती है कि धर्म और विज्ञान ऐसी व्यवस्था पर हमेशा एक अटल निषेध का प्रयोग करने में सफल होंगे। मैं चाहता हूँ कि मैं भी ऐसा ही मान सकता। लेकिन मेरा विश्वास है कि मनुष्य की भावना असाधारण रूप से लचीली होती है, और जिस व्यक्तिवादी धर्म के हम लोग अभ्यस्त हो गए हैं वह सम्भवत अधिकाधिक रूप से राष्ट्र के प्रति निष्ठा के धर्म द्वारा पदच्युत होता जाएगा। रूस के साम्यवादियों के बीच पहले ही ऐसा हो चुका है। जो कुछ भी हो, वैज्ञानिक समाज द्वारा यह जो माँग की जाएगी वह स्वाभाविक भावावेगों पर उतना कठिन नियमन नहीं सिद्ध होगी जितना कि कैथोलिक पादरियों के बीच अविवाहित रहने की माँग सिद्ध हुई है। जिस किसी भी क्षेत्र में कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ सम्भव होती हैं जिनसे मनुष्य के नैतिक आदर्शवाद को तुष्टि मिलती है वहीं शक्ति का प्रेम सहज अनुराग के जीवन को आत्मसात कर लेने में समर्थ होता है विशेषकर यदि शुद्ध शारीरिक यौन भावावेगों की तुष्टि का मार्ग उपलब्ध हो। यदि रूस का प्रयोग सफल सिद्ध हो गया तो रूस में जिस परम्परागत धर्म को क्रान्तिकारी ढंग से अपदस्थ कर दिया गया है उसी परम्परागत धर्म को हर कहीं अपदस्थ किया जाएगा। जो कुछ भी हो, इस परम्परागत धर्म के दृष्टिकोण का नागरिक उद्योगवाद और वैज्ञानिक तकनीक के दृष्टिकोण के साथ मिल सकना बहुत कठिन है। परम्परागत धर्म तो प्राकृतिक शक्तियों के सम्मुख मनुष्य की असमर्थता की भावना पर आधारित था, इसके विपरीत वैज्ञानिक तकनीक मनुष्य की बुद्धि के सामने प्राकृतिक शक्तियों की असमर्थता की भावना उत्पन्न करती है। इस शक्ति भावना के साथ साथ कोमल सुखानुभूति के सम्बन्ध में कुछ मिताचार की संगति बिल्कुल स्वाभाविक है। जो लोग भावी यान्त्रिक समाज की सृष्टि कर रहे हैं उनमें इस प्रकार का मिताचार पहले ही देखा जा सकता है। अमरीका में इस मिताचार ने प्रोटेस्टेण्ट दयालुता का रूप ग्रहण किया है और रूस में साम्यवाद के प्रति भक्ति और निष्ठा का रूप अपनाया है।

इसलिए मैं तो सोचता हूँ कि प्रजनन के सम्बन्ध में विज्ञान द्वारा परम्परागत भावना में जो परिवर्तन किए जा सकते हैं उनकी कोई सीमा निर्धारित करना कठिन

है। यदि भविष्य में आबादी की संख्या और उनकी गुण-श्रेष्ठता—दोनों का ही साथ-साथ गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया, तो हम यह आशा कर सकते हैं कि हर पीढ़ी में लगभग पच्चीस प्रतिशत स्त्रियों को और लगभग पाँच प्रतिशत पुरुषों को अगली पीढ़ी के माता-पिता बनने के लिए चुना जाएगा। शेष समाज का अनुर्वरीकरण कर दिया जाएगा, जिससे उनके यौन सुख-भोग में तो किसी प्रकार का हस्तक्षेप न होगा, बल्कि इन सुख-भोगों को केवल सामाजिक महत्त्व से हीन कर दिया जाएगा। जिन स्त्रियों को प्रजनन के लिए चुना जाएगा, उनमें से प्रत्येक के आठ या नौ बच्चे होंगे, लेकिन उन स्त्रियों से अपने बच्चों को कुछ उपयुक्त अवधि तक दूध पिलाने के अलावा और कोई काम नहीं लिया जाएगा। अनुर्वरीकृत अन्य पुरुषों के साथ उनके सम्बन्धों में कोई रोक नहीं लगाई जाएगी, और न अनुर्वरीकृत पुरुषों और स्त्रियों के पारस्परिक सम्बन्धों में ही कोई रोक लगाई जाएगी, लेकिन सन्तान पैदा करने का काम राष्ट्र के नियमन का विषय समझा जाएगा और सम्बन्धित व्यक्तियों की स्वेच्छा पर नहीं छोड़ा जाएगा। शायद यह भी माना जाए कि कृत्रिम गर्भाधान अधिक निश्चित और कम असुविधाजनक है, क्योंकि इससे होने वाले बच्चे के पिता और माता का पारस्परिक सम्पर्क होने की आवश्यकता न रह जाएगी। सन्तानोत्पत्ति के प्रयोजन से मुक्त यौन-सम्भोग के साथ व्यक्तिगत प्रेम की भावनाएँ फिर भी सम्बन्धित रह सकेंगी, लेकिन गर्भाधान को एक बिल्कुल भिन्न दृष्टि से देखा जाएगा, उसे एक शल्य-चिकित्सा या आपरेशन जैसा समझा जाएगा। इसका परिणाम यह होगा कि प्राकृतिक ढंग से गर्भाधान करना सद्-महिलाओं के अनुपयुक्त माना जाएगा। जिन गुणों के आधार पर माता-पिता का चयन किया जाएगा, वे गुण होने वाले बच्चे के सामाजिक पद के अनुसार भिन्न-भिन्न कोटि के होंगे। शासक-वर्ग के लिए माता-पिता में सर्वाधिक बुद्धि-सत्ता अपेक्षित होगी, पूर्ण स्वास्थ्य तो अनिवार्य होगा ही। जब तक गर्भाधान की अवधि को प्राकृतिक अवधि तक चलने दिया जाएगा, तब तक माताओं का चयन भी इस आधार पर किया जाएगा कि वे सुविधापूर्वक प्रसव करने में समर्थ हों, और इसलिए उनके बस्ति-प्रदेश का अधिक संकीर्ण होना उपयुक्त न माना जाएगा। फिर भी यह सम्भव है कि जैसे-जैसे समय बीतेगा, गर्भाधान की अवधि कम होती जाएगी और भ्रूण के विकास के उत्तरकाल की अवधि किसी इन्क्यूबेटर में बीतेगी। इस प्रकार बच्चों को दूध पिलाने से भी माताओं को छुटकारा मिल जाएगा और मातृत्व बहुत कठिन नहीं रह जाएगा। जिन बच्चों को शासक-वर्ग का सदस्य बनना होगा उनका इस रूप माताओं के सहारे बहुत कम छोड़ा जाएगा। माताओं का चयन सुजनन-सम्बन्धी उनके गुणों के आधार पर किया जाएगा और वे गुण ऐसे नहीं होंगे जिनकी आवश्यकता इस काम में पड़ती है। दूसरी ओर

गर्भाधान के प्रारम्भिक महीने आजकल की अपेक्षा अधिक बोझिल हो सकते हैं क्योंकि भ्रूण का अनेक प्रकार से वैज्ञानिक उपचार किया जाएगा, जिसका उद्देश्य न केवल उसकी अपनी विशेषताओं के लिए लाभदायक प्रभाव उत्पन्न करना होगा बल्कि उसकी सम्भव सन्तति की विशिष्टताओं पर भी कल्याणकारी प्रभाव डालना होगा।

बाद में अपने बच्चों के साथ पिताओं का कोई सम्बन्ध नहीं होगा। सामान्यतः पाँच माताओं को बच्चे देने के लिए एक ही पिता होगा, और यह भी बिल्कुल सम्भव है कि उसने अपने बच्चों की माताओं को कभी देखा भी न होगा। इस प्रकार पितृत्व की भावना का बिल्कुल लोप हो जाएगा। शायद समय आने पर यही बात माताओं के सम्बन्ध में भी होगी, यद्यपि हो सकता है कि उसकी मात्रा कुछ कम हो। यदि समय से पहले ही बच्चे का जन्म सम्भव हो सका और बच्चे को जन्म के समय ही माता से अलग कर दिया गया, तो मातृत्व की भावना के विकसित होने के लिए भी बहुत कम अवसर रह जाएगा।

मजदूरों के बीच में शायद इतनी व्यापक सतर्कता नहीं बरती जाएगी, क्योंकि केवल शारीरिक बलशाली सन्तान पैदा करना बुद्धिमान सन्तान पैदा करने की अपेक्षा अधिक आसान है और यह असम्भव नहीं है कि इस वर्ग की औरतों को पुराने प्राकृतिक ढंग से अपने बच्चों का पालन पोषण करने दिया जाए। मजदूरों में राज्य के प्रति उस अन्धनिष्ठा की आवश्यकता नहीं होगी जो शासक-वर्ग के लिए आवश्यक समझी जाएगी, और इसलिए मजदूरों में व्यक्तिगत अनुरागों का होना सरकार के लिए उतनी आपत्ति की बात न होगी। यह कल्पना तो करनी ही पड़ेगी कि शासकों में किसी प्रकार के भी व्यक्तिगत मनोभावों का होना सरकार द्वारा सन्देह की दृष्टि से देखा जाएगा। किसी भी पुरुष और स्त्री के बीच यदि परस्पर अत्यधिक प्रेम या निष्ठा की भावना दिखाई देगी तो उन्हें उसी प्रकार हेय दृष्टि से देखा जाएगा जैसे आजकल नैतिकवादियों द्वारा उन स्त्री पुरुषों के सम्बन्धों को देखा जाता है जो परस्पर विवाहित न हों। शिशुशालाओं में बच्चों की देखरेख करने वाली शिशु शालाओं में वतिक धायें रखी जाएँगी और नर्सरी स्कूलों में वैतनिक अध्यापक रहा करेंगे लेकिन यदि उनको किसी बच्चे विशेष से कोई विशेष अनुराग हो गया तो वे कर्तव्य च्युत समझे जाएँगे। जो बच्चे किसी भी वयस्क विशेष के प्रति कोई विशेष अनुराग दिखाएँगे उन्हें उस वयस्क व्यक्ति से अलग कर दिया जाएगा। इस प्रकार के विचार पहले से ही काफी फैल हुए हैं उदाहरण के लिए डॉ० जॉन बी० वाटसन द्वारा शिशुओं पर लिखी गई पुस्तक में ऐसे विचार मिलेंगे।[1]

१ जॉन बी० वाटसन की पुस्तक 'साइकोलॉजिकल केयर ऑफ इनफेन्ट एण्ड चाइल्ड' १९२८।

वैज्ञानिक जोड तोड मिलाने वाले लोगों की प्रवृत्ति व्यक्तिगत अनुरागों को अवांछनीय और दुर्भाग्यपूर्ण मान लेती है। फ्रायड के अनुयायियों ने यह सिद्ध किया है कि ऐसे अनुराग भाव ग्रन्थियों के स्रोत होते हैं। प्रशासकों का अनुभव है कि ऐसे अनुराग राष्ट्र और कर्तव्य के प्रति पूर्ण निष्ठा के मार्ग में बाधक बनते हैं। धर्मपीठ (चर्च) ने कुछ प्रकार के प्रेमों की अनुशस्ति दी है तो कुछ दूसरे प्रकार के प्रेमों की निन्दा की है लेकिन आधुनिक तपस्वी इन सबसे अधिक पूर्णतावादी है और सभी प्रकार के प्रेमों को एक समान केवल मूर्खता और समय की बरबादी मानता है।

ऐसे संसार में लोगों के मानसिक गठन के सम्बन्ध में क्या आशा की जानी चाहिए? मेरे विचार से शारीरिक श्रम करने वाले तो काफी सुखी हो सकते हैं। कल्पना की जा सकती है कि शासक लोग शारीरिक श्रम करने वाले मजदूरों को सुख और छिछली प्रवृत्ति के बनाने में सफल होंगे, काम बहुत कठिन नहीं होगा और मामूली किस्म के अनन्त मनोरंजन होंगे। अनुर्वरीकरण हो जाने के कारण प्रेम सम्बन्धी मामलों के परिणाम तब तक असुविधाजनक नहीं होंगे जब तक सम्बन्धित स्त्री और पुरुष दोनों ही का अनुर्वरीकरण न किया गया हो। इस प्रकार शारीरिक श्रम करने वालों के लिए मामूली किस्म के सुखी और सुविधापूर्ण जीवन की व्यवस्था की जाएगी और इसके साथ-साथ निश्चित रूप से शासकों के प्रति बचपन में ही अन्धविश्वासपूर्ण श्रद्धा की भावना उनके मन में भर दी जाएगी और वयस्कों के मन में वह भावना प्रचार द्वारा कायम रखी जाएगी।

शासकों का मनोविज्ञान कुछ अधिक कठिन मामला होगा। उनसे आशा की जाएगी कि वे वैज्ञानिक राज्य के आदर्श के प्रति अध्यवसाय और परिश्रम पूर्ण निष्ठा प्रदर्शित करें और इस आदर्श के लिए पत्नी और बच्चों के प्रेम जैसी कोमल भावनाओं का बलिदान करें। सहकर्मियों के बीच, चाहे वे कर्मचारी हों या मित्रलिंगी, मैत्री की भावना बहुत प्रबल होगी, और ऐसे अवसर कम नहीं होंगे जब वह सामाजिक नीतिशास्त्रियों द्वारा निर्धारित सीमाओं का अतिक्रमण कर जाएगी। ऐसे मामलों में अधिकारी सम्बन्धित मित्रों को अलग कर देंगे, बशर्ते कि ऐसा करने से किसी महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक अथवा प्रशासनिक कार्य में बाधा न पड़ती हो। जब कभी ऐसे सार्वजनिक कारणों से मित्रों को अलग न किया जा सकेगा तब उनकी भर्त्सना की जाएगी। सरकारी माइक्रोफोनों द्वारा सेंसर करने वाले लोग उनकी बातचीतों को सुनेंगे और यदि कभी भी उनकी बातचीत भावनात्मक पाई गई तो उनके विरुद्ध अनुशासन की कारवाई की जाएगी। सभी गम्भीर भावनाएँ निष्फल हो जाएँगी, केवल विज्ञान और राज्य के प्रति भक्ति की भावना इसका एकमात्र अपवाद होगी।

केवल शासकों के लिए भी अवकाश के समय अपने मनोरंजन उपलब्ध होंगे। कला अथवा साहित्य का विकास ऐसे संसार में किस प्रकार हो सकेगा, यह मैं नहीं समझ पाता, मैं यह भी नहीं समझता कि जिन भावावेगों और मनोभावों से कला और साहित्य की उत्पत्ति होती है और जिनको वे प्रभावित करते हैं उनको अनुशासित ऐसी सरकार कर सकेगी, लेकिन शासकवर्ग के युवकों में अत्यधिक पुष्टकाय बनने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया जाएगा और मनोरंजक खेलों में भाग लेना ऐसी मानसिक और बौद्धिक आदतों के प्रशिक्षण के लिए बहुत उपयोगी माना जाएगा जिनके द्वारा शारीरिक श्रम करने वालों पर अधिकार कायम रखा जा सके। अनुर्वरीकृत लोगों के बीच पारस्परिक प्रेम पर न तो कानून द्वारा कोई प्रतिबन्ध लगाया जाएगा और न जनमत द्वारा लेकिन ऐसा प्रेम आकस्मिक और अस्थायी होगा जिसमें न तो कोई गहरी भावनाएँ होंगी और न गम्भीर प्रेम होगा। जिन लोगों को ऊब असह्य हो रही होगी उन्हें एवरेस्ट की चोटी पर चढ़ने अथवा दक्षिणी ध्रुव पर उड़ान भरने के लिए प्रेरित किया जाएगा, लेकिन इस प्रकार के विकर्षणों की आवश्यकता को मानसिक अथवा शारीरिक अस्वास्थ्य का लक्षण माना जाएगा।

इस संसार में सुख भले ही हो, पर आनन्द नहीं होगा। परिणामस्वरूप एक इस प्रकार की मानव जाति विकसित होगी जिसमें दृढ़ यतियों के सामान्य लक्षण दिखाई देंगे। ये लोग कठोर होंगे, कभी न झुकने वाले होंगे, अपने आदर्शों में उनकी प्रवृत्ति निर्ममता की ओर होगी और वे लोग ऐसा सोचने में तत्पर होंगे कि सार्वजनिक कल्याण के लिए यातना देना आवश्यक है। मैं तो ऐसा नहीं समझता कि पाप के दण्ड-स्वरूप उन्हें अधिक यातना दी जाएगी, क्योंकि अवज्ञा और राज्य के प्रयोजनों को पूरा करने में असफलता के अलावा और कोई पाप स्वीकार नहीं किया जाएगा। ज्यादा सम्भावना इस बात की है कि यह यतिवाद जिन परपीडनमूलक मनोवेगों को जन्म देगा उनकी अभिव्यक्ति वैज्ञानिक प्रयोगों में होगी। सर्जन लोगों या शल्य चिकित्सकों द्वारा तथा जीव रासायनिकों और प्रायोगिक मनोविज्ञानियों द्वारा व्यक्तियों को अत्यधिक यातना दिए जाने का समर्थन ज्ञान की प्रगति के आधार पर किया जाएगा। जैसे-जैसे समय बीतेगा, एक निर्धारित यातना को ही उचित ठहराने वाली ज्ञान की अतिरिक्त मात्रा धीरे धीरे कम होती जाएगी और इस शोध के प्रति आकर्षित होने वाले शासकों की संख्या बढ़ती जाएगी जिनमें निर्दय प्रयोग करना आवश्यक है। जिस प्रकार ऐज़्टेक लोगों द्वारा की जाने वाली सूर्य की उपासना के लिए प्रति वर्ष हजारों मनुष्यों की यातनापूर्ण मृत्यु आवश्यक होती थी, उसी प्रकार इस नये वैज्ञानिक धर्म द्वारा भी पवित्र बलिदानों की माँग की जाएगी। धीरे धीरे यह संसार अधिक अन्धकारपूर्ण और अधिक भयावना होता जाएगा, मानव-

वर्तियाँ के अद्भुत विपर्यय पहले तो अँधेरे कोनों में छिपे रहेंगे और फिर धीरे धीरे उच्चपदस्थ लोगों को भी अभिभूत कर देंगे। कामज आनन्दों के प्रति जो नैतिक असंगता व्यापक होगी वह परपीडनमूलक सुखों पर नहीं लागू होगी क्योंकि ऐसे सुख प्रचलित यतिवाद के अनुकूल होंगे, जैसे धार्मिक न्यायालयों द्वारा दी गई यातनाएं थीं। अन्ततोगत्वा इस प्रकार की व्यवस्था या तो भीषण रक्त पात में नष्ट भ्रष्ट हो जाएगी, अथवा आनन्द की नई खोज में ही इसकी परिणति होगी।

इन अमंगल सूचक अशुभ भावी कल्पनाओं के अंधकार में आशा की एक किरण दिखाई देती है जो अंधकार को कुछ हल्का कर देती है लेकिन मैं आशा की इस किरण की स्वीकृति में हमने एक मूक आशावाद को स्वीकार कर लिया है। शायद इन्जेक्शनों, औषधियों और रसायनों द्वारा लोगों को वह सब कुछ सहने के लिए तैयार कर लिया जाएगा जो कुछ जनता के वैज्ञानिक शासक लोग उसके लिए कल्याणकारी निर्धारित करेंगे। हो सकता है मद्यहोशी के ऐसे नए तरीके निकाल जाए जिनमें नशा उतरने के बाद सरदर्द न हो और नशे के ऐसे नए तरीकों का आविष्कार किया जाए जो इतने स्वादिष्ट हों कि उन्हें प्राप्त करने के लिए लोग अपने होश की घड़ियों को यातना में बिताने के लिए तैयार हों। जिस संसार का शासन प्रेम रहित ज्ञान और दया हीन शक्ति द्वारा किया जाएगा यह सब उसी की सम्भावनाएं हैं। शक्ति से मदोन्मत्त व्यक्ति विवेकहीन हो जाता है और जब तक ऐसा व्यक्ति संसार का शासन करता है तब तक यह संसार सौन्दर्य और आनन्द से शून्य रहेगा।

सत्रहवाँ अध्याय

विज्ञान और मान-मूल्य

इस खण्ड के अध्ययन में जिस वैज्ञानिक समाज का चित्रण किया गया है उसे कोई बिल्कुल गम्भीर भविष्यवाणी नहीं समझ लेना चाहिए। यह तो उस विश्व को चित्रित करने का एक प्रयत्न भर है जिसकी स्थापना तभी हो सकती है जब वैज्ञानिक तकनीक का अबाध शासन हो। पाठकों ने देखा होगा कि इसमें वाञ्छनीय समझे जाने वाले लक्षणों के साथ प्रायः अविच्छिन्न रूप में ऐसे लक्षण भी मिले हुए हैं जो विकर्षण उत्पन्न करने वाले हैं। इसका कारण यह है कि हमने एक ऐसे समाज की कल्पना की है जिसका विकास मानव-स्वभाव के कुछ विशिष्ट उपादानों के अनुरूप किया गया है और अन्य उपादानों को बिल्कुल बाहर कर दिया गया है। उपादानों के रूप में तो ये अच्छे हैं लेकिन यदि उन्हें एकमात्र प्रेरक शक्ति के रूप में स्वीकार किया जाए तो वे घातक सिद्ध हो सकते हैं। वैज्ञानिक रचना का मनोवेग तभी प्रशंसनीय होता है जब वह मानव-जीवन को मूल्यवान बनाने वाले अन्य प्रमुख मनोवेगों को कुण्ठित नहीं कर देता किन्तु जब शेष सभी मनोवेगों की अभिव्यक्ति को रोकने की आज़ादी उसे मिल जाती है तब वह एक निर्दय अत्याचारी का रूप धारण कर लेता है। मेरे विचार में इस बात का भय सचमुच मौजूद है कि यह संसार कहीं इस प्रकार के निरंकुश अत्याचार का शिकार न हो जाए और यही कारण है कि वैज्ञानिक जोड़-तोड़ द्वारा निर्बाध रूप में जिस संसार की रचना की जा सकती है उसके दोषों को चित्रित करने में मैंने कोई हिचक नहीं की।

कुछ शताब्दियों के अपने इतिहास में विज्ञान का एक ऐसा आन्तरिक विकास हुआ है जो अभी पूरा हुआ नहीं प्रतीत होता। इस विकास को संक्षेप में चिन्तन से जोड़-तोड़ की ओर बढ़ना कहा जा सकता है। ज्ञान के जिस प्रेम की देन स्वयं विज्ञान है, वह स्वयं ही दो प्रकार के मनोवेगों का परिणाम है। किसी पदार्थ के सम्बन्ध में हम ज्ञान की खोज इसलिए भी कर सकते हैं कि उस पदार्थ से हमें प्रेम है अथवा इसलिए कि हम उस पदार्थ पर अधिकार-शक्ति प्राप्त करना चाहते हैं। पहले प्रकार का मनोवेग हमें उस ज्ञान की ओर ले जाता है जो चिन्तन मूलक है, और दूसरे प्रकार का मनोवेग हमें व्यावहारिक ज्ञान की ओर ले जाता है। विज्ञान के विकास में शक्ति का मनोवेग अधिकाधिक रूप में

प्रेम के मनोवेग पर हावी होता गया है। शक्ति का मनोवेग उद्योगवाद में और शासकीय तकनीक में प्रकट हुआ है। इसकी अभिव्यक्ति अयत्रियावाद और यान्त्रिकतावाद के नाम से विख्यात दार्शनिक सिद्धान्तों में भी हुई है। मोटे तौर से इन दोनों ही दार्शनिक सिद्धान्तों की मान्यता यह है कि किसी भी पदार्थ के सम्बन्ध में हमारे विश्वास जहाँ तक उस पदार्थ के सम्बन्ध में एक जोड़-तोड़ करने में हमें समर्थ बनाते हैं जिसमें हमारा लाभ हो, वहीं तक वे सही हैं। इसे हम सत्य का शासकीय दृष्टिकोण कह सकते हैं। इस प्रकार के सत्य की उपलब्धि विज्ञान द्वारा हम बहुत काफी हो चुकी है। सच तो यह है कि इस दिशा में विज्ञान की सम्भव उपलब्धियों का कोई अन्त ही नहीं दिखाई देता। जो व्यक्ति अपने पर्यावरण को परिवर्तित करना चाहता हो उसे विज्ञान अद्भुत शक्ति सम्पन्न साधन उपलब्ध कराता है, और यदि ज्ञान का अर्थ वह शक्ति हो जिससे वांछित परिवर्तन उत्पन्न किए जा सकें तो विज्ञान हमें अपरिमित ज्ञान देता है।

किन्तु ज्ञान की कामना का एक दूसरा रूप भी होता है जो बिल्कुल भिन्न मनोभावों से सम्बन्धित है। रहस्यवादी लोग, प्रेमी और कवि भी सत्यान्वेषी होते हैं, शायद बहुत अधिक सफल अन्वेषक वे नहीं होते लेकिन फिर भी इसी कारण वे हमारे लिए कम सम्मान के पात्र नहीं हो जाते। प्रेम के हर स्वरूप में हम प्रिय के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, शक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से नहीं बल्कि चिंतन का आनन्द प्राप्त करने के लिए। ईश्वर के ज्ञान में ही हमारे अनन्त जीवन की स्थिति है, लेकिन इसलिए नहीं कि ईश्वर का ज्ञान हमें ईश्वर पर शक्ति भी प्रदान करता है। जहाँ कहीं भी किसी पदार्थ में हमें हर्षोन्माद अथवा आत्यंतिक आनन्द प्राप्त होता है, हम उस पदार्थ के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। यह ज्ञान जोड़-तोड़ के रूप में नहीं होता जिसके द्वारा उस पदार्थ को किसी और रूप में भी बदल दिया जाता है, बल्कि एक आनन्द दर्शन के रूप में हम उसे जानना चाहते हैं, क्योंकि यह ज्ञान अपने आपमें और स्वतः अपने लिए प्रेमी पर आनन्द की वर्षा करता है। कामजनित प्रेम में भी अन्य प्रकार के प्रेमों की भाँति इस प्रकार के ज्ञान का मनोभाव विद्यमान रहता है, हाँ यदि कामजनित प्रेम शुद्ध शारीरिक और व्यावहारिक मात्र हो तो बात दूसरी है। इस मनोभाव को ऐसे हर प्रेम की कसौटी स्वीकार किया जा सकता है जो मूल्यवान हो। जिस किसी भी प्रेम में कुछ मूल्य और महत्ता होती है, उसमें उस ज्ञान का मनोभाव भी होता है जिसके आधार पर रहस्यवादी मिलन की उत्पत्ति होती है।

विज्ञान का प्रारम्भ उन लोगों द्वारा हुआ जिन्हें इस जगत से प्रेम था। उन्होंने तारों के, सागर के, हवाओं और पर्वतों के सौंदर्य का अनुभव किया। इनको वे प्यार करते थे और इसीलिए उनके विचार इन पर केंद्रित रहते थे।

और वे लोग केवल बाह्य चिन्तन द्वारा इन्हें जितना समझ पाते थे, उससे अधिक और घनिष्ठ रूप में इन्हें समझना चाहते थे। हिरेक्लिटस ने कहा था, "यह संसार एक अनन्त जीवन्त अग्नि है, जिसके स्फुलिंग जलते और बुझते रहते हैं।" वैज्ञानिक ज्ञान का प्राथमिक मनोवेग और प्रेरणा हिरेक्लिटस तथा अन्य यूनानी दार्शनिकों से ही प्राप्त हुई थी। ये लोग संसार के अद्भुत सौन्दर्य की अनुभूति रक्त में संचरित उन्माद की भांति करते थे। ये लोग अति मानवीय भावावेग-पूर्ण बुद्धि वाले व्यक्ति थे और उनके बौद्धिक भावावेग की गहनता में ही आधुनिक जगत का यह सारा गतिमूलक आन्दोलन उत्पन्न हुआ है। लेकिन धीरे धीरे, जैसे जैसे विज्ञान का विकास हुआ है वैसे-वैसे विज्ञान को जन्म देने वाले प्रेम के भावावेग को अधिकाधिक रूप में कुण्ठित कर दिया गया है और इसके विपरीत शक्ति के भावावेग को, जो पहले केवल एक अनुगामी मात्र था, क्रमशः उसकी अप्रत्याशित सफलता के कारण अधिकार-पद प्राप्त हो गया है। प्रकृति के प्रेमी को तो वंचित और अवरुद्ध कर लिया गया है और प्रकृति पर अत्याचार करने वाले को पुरस्कार मिला है। जैसे जैसे भौतिकी का विकास हुआ है वैसे-वैसे क्रमशः हम उस ज्ञान से उतने वंचित कर लिए गए हैं जिसके बारे में हम यह सोचते थे कि भौतिक जगत की आन्तरिक प्रकृति के सम्बन्ध में हमें यह ज्ञान प्राप्त है। रंग और ध्वनि, प्रकाश और छाया, स्वरूप और गठन अब उस बाह्य प्रकृति के अंग नहीं रह गए जिसे आयोनियावासी अपनी भक्ति का, अपनी श्रद्धा का पात्र, अपनी प्रेयसी मानते थे। अब ये सारी चीजें प्रेयसी प्रकृति से छिन गई हैं और प्रेमी को प्राप्त हो गई हैं। प्रेयसी तो अब केवल ठठरियों का एक खड़खड़ाता, निर्जीव और भयानक ढांचा मात्र रह गई है जो शायद केवल एक भ्रम—एक माया मात्र है। अपने सूझ द्वारा अनावृत इस रूक्ष रेगिस्तान के दृश्य से भयभीत और चकित बेचारे भौतिक विज्ञानी भगवान से प्रार्थना करते हैं कि वह उन्हें सान्त्वना दे, लेकिन अपनी इस सृष्टि के इस भयावनेपन का भागी तो ईश्वर को भी होना ही पड़ेगा और अपनी चीख-पुकार का जो उत्तर भौतिक विज्ञानियों को सुनाई देता है वह केवल उनके हृदय की भयभीत धड़कन मात्र है। प्रकृति के प्रेमी के रूप में असफल होकर मनुष्य प्रकृति पर अत्याचार करने वाला शासक बनता जा रहा है। व्यावहारिक व्यक्ति तो कहता है—यदि मैं इस बाह्य जगत को अपनी इच्छानुसार आचरण करने के लिए विवश कर सकता हूँ तो फिर इसकी परवाह ही क्या है कि इस जगत की कोई सत्ता है या यह केवल भ्रम है? इस प्रकार विज्ञान ने अधिकाधिक रूप में प्रेममूलक ज्ञान के स्थान पर शक्तिमूलक ज्ञान को प्रतिष्ठित किया है और जैसे-जैसे यह परिवर्तन अधिकाधिक पूर्ण होता जाता है वैसे वैसे विज्ञान अधिकाधिक परपीड़न रत होता जाता है। भविष्य के जिस वैज्ञानिक समाज की कल्पना हम करते आ रहे हैं वह

तथा समाज होगा जिसमे शक्ति के मनोभाव ने प्रेम के मनोभाव को पूरी तरह पराजित कर दिया होगा और जिस प्रकार की निर्दयताओं का प्रदर्शन ऐसे समाज म किए जाने का खतरा है उनका मनोवैज्ञानिक उद्गम यही है।

जिस विज्ञान का प्रारम्भ सत्य की खोज के रूप म हुआ था अब उसकी सगति सत्यता के साथ नही बैठ रही क्योंकि पूर्ण सत्यता अधिकाधिक रूप म पूर्ण वैज्ञानिक सशयवाद का ओर प्रेरित करती है। जब विज्ञान पर व्यावहारिक दृष्टि के बजाय चिन्तनमूलक दृष्टि से विचार किया जाता है तब हम देखते हैं कि हम जिस बात पर भी विश्वास करते हैं उसका कारण पाशव श्रद्धा होती है और विज्ञान से तो हम केवल अविश्वास की ही उपलब्धि होती है। किन्तु दूसरी ओर जब हम अपने आपको और अपने पर्यावरण को रूपान्तरित करने वाली तकनीक के रूप म विज्ञान पर विचार करते हैं तब हम यह देखते हैं कि विज्ञान हमे एक ऐसी शक्ति देता है जो तत्त्वमीमासीय मान्यता से बिल्कुल मुक्त होती है। किन्तु इस शक्ति का प्रयोग हम तभी कर सकते हैं जब वास्तविकता के स्वरूप के सम्बन्ध म अपने-आपसे तत्त्वमीमासीय प्रश्न पूछना बन्द कर दें। लेकिन फिर भी यही प्रश्न तो ससार के प्रति एक प्रेमी की अभिव्यक्ति के प्रमाण हैं। इसलिए तकनीकविज्ञों के रूप म इस जगत पर हम उसी मात्रा म विजय प्राप्त कर सकते हैं जिस मात्रा म जगत के प्रति अपने प्रेम का त्याग कर सकते हैं। किन्तु आत्मा का यह विभाजन मनुष्य म जो कुछ सर्वोत्तम है उसके लिए घातक होगा। तत्त्वमीमासा के रूप म विज्ञान की असफलता की अनुभूति हो जाने पर एक तकनीक के रूप म विज्ञान द्वारा दी जाने वाली शक्ति केवल कुछ ऐसे रूप म ही प्राप्त की जा सकती है जो शैतान की उपासना से मिलता जुलता है अर्थात प्रेम का त्याग करके ही यह शक्ति प्राप्त की जा सकती है।

यही वह आधारभूत कारण है जो एक वैज्ञानिक समाज की सम्भावनाओं को आशका की दृष्टि से देखने के लिए विवश करता है। अपने शुद्ध रूप म वैज्ञानिक समाज का चित्रित करने का ही हम प्रयत्न करते आ रहे हैं और ऐसे समाज की सगति केवल मतियों के त्याग का छोडकर सत्य प्रेम, कला, स्वत स्फूर्ति हर्ष तथा ऐसे किसी भी आदर्श के साथ नहीं बैठती जिसकी कामना आज तक मनुष्य करता आया है। इन सकटों का स्रोत ज्ञान नही है। ज्ञान तो शुभ होता है और अज्ञान ही अशुभ होता है। जगत का प्रेमी इस सिद्धान्त के किसी भी अपवाद को स्वीकार नही करता और न शक्ति ही अपने आपमे और अपने लिए सकट का स्रोत है। खतरनाक तो केवल शक्ति के लिए शक्ति का प्रयोग किया जाना है सच्चे कल्याण के लिए प्रयोग म लाई जाने वाली शक्ति खतरनाक नही होती। आधुनिक जगत् के नेता शक्ति म मदोन्मत्त हैं। केवल

यहां विचार कि वे ऐसा कुछ करने में समर्थ हैं जिसे पहले कभी किसी ने सम्भव भी नहीं माना था, वैसा कुछ कर गुजरने के लिए उनकी दृष्टि में पर्याप्त कारण बन जाता है। शक्ति जीवन का कोई लक्ष्य नहीं है, वह तो अन्य लक्ष्यों की सिद्धि का साधन मात्र है और जब तक लोगों को यह ध्यान नहीं रहता कि किन लक्ष्यों की पूर्ति शक्ति द्वारा की जानी चाहिए तब तक विज्ञान शुभ जीवन की वह सेवा नहीं कर सकेगा जो उसके द्वारा सम्भव है। लेकिन तब पाठक पूछेगा कि जीवन के लक्ष्य क्या है? मेरे विचार से किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं है कि इस मामले में किसी दूसरे व्यक्ति के लिए कोई विधान बनाए। प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसके जीवन के लक्ष्य वही पदार्थ हैं जिनकी उसे उत्कट कामना हो और जिनकी उपलब्धि उसे शान्ति दे सके। अथवा यदि ऐसा समझा जाए कि मृत्यु से पहले शान्ति की कामना करना बहुत अधिक की कामना करना है तो हमें यह कहना चाहिए कि जीवन के लक्ष्यों द्वारा व्यक्ति को हर्ष अथवा आनन्द अथवा आत्यंतिक उल्लास की उपलब्धि होनी चाहिए। जो व्यक्ति शक्ति की कामना केवल शक्ति के लिए ही करता है उसकी चेतन इच्छाओं में कुछ-न-कुछ कालिमा रहती है। जब शक्ति मिलती है तब वह और अधिक शक्ति की कामना करता है और जो कुछ उसे मिल चुका होता है उससे उसे तुष्टि नहीं होती। प्रेमी कवि और रहस्यवादी को जितना अधिक संतोष प्राप्त होता है उसकी अनुभूति शक्ति के अन्वेषी को कभी भी नहीं हो सकती, क्योंकि प्रेमी कवि और रहस्यवादी तो अपने प्रेम पात्र की उपलब्धि से ही शान्ति और संतोष पा जाते है लेकिन शक्ति के अन्वेषी को तो निरन्तर किसी नई जोड़-तोड़ में व्यस्त रहना होता है अन्यथा उसके जीवन में एक सूनेपन की भावना उसे अभिभूत करने लगती है। इसलिए मेरे विचार से एक प्रेमी को (यहां मैं इस शब्द का अधिकतम व्यापक अर्थ में प्रयोग कर रहा हूँ) प्राप्त होने वाले संतोष एक अत्याचारी शासक को प्राप्त होने वाले संतोषों से कहीं अधिक होते हैं, और जीवन के लक्ष्यों में उन्हें उच्चतर स्थान प्राप्त होना चाहिए। जब मौत आएगी तब मैं यह नहीं महसूस करूँगा कि मैंने जीवन व्यर्थ में बिताया। मैंने संध्या समय इस धरती को लाल रंग में रँग जाते देखा है प्रातःकाल चमकते हुए ओस बिंदुओं को देखा है और तुषाराच्छादित भूमि को प्रकाश में चमकती हुई हिमशिलाएँ देखी हैं, सूखे के बाद बरसते हुए मेह की सोंधी उसांस मैंने अनुभव की है, और मानवाल के तट पर चट्टानों से टकराते हुए तूफानी अटलान्टिक का घोष सुना है। विज्ञान इन तथा ऐसे अन्य आनन्दों की उपलब्धि उन तमाम लोगों को भी करा सकता है जो अन्यथा इन्हें न प्राप्त कर सकते यदि ऐसा किया जाए तो विज्ञान की शक्ति का उपयोग बुद्धिमत्तापूर्ण कहा जाएगा। किन्तु जब विज्ञान जीवन से उन क्षणों को भी छीन लेता है जिनके कारण जीवन

का महत्त्व है तब वह हमारी प्रशंसा का पात्र नहीं रहेगा, चाहे जितनी चतुराई के साथ और चाहे जितने भारी भरकम साज़ो सामान के साथ वह हमें निराशा के पथ पर आगे बढ़ाता चले। जहाँ तक विज्ञान का स्वरूप ज्ञान की खोज है वहाँ तक तो ठीक है, पर उसमें भिन्न मान-मूल्यों का क्षेत्र विज्ञान की सीमाओं से बाहर है। शक्ति की खोज के रूप में विज्ञान को मान मूल्यों के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करने देना चाहिए और वैज्ञानिक तकनीक द्वारा यदि मानव जीवन को समृद्ध बनाना है तो जिन लक्ष्यों की पूर्ति इस तकनीक द्वारा की जानी चाहिए उनसे अधिक महत्त्व स्वयं तकनीक को कभी न दिया जाना चाहिए।

किसी भी युग के विशिष्ट स्वरूप को निर्धारित करने वाले लोगों की संख्या थोड़ी ही होती है। कोलम्बस, लूथर और पंचम चार्ल्स सोलहवीं शताब्दी पर हावी थे, गलीलियो और देकार्त ने सत्रहवीं शताब्दी का निर्देशन किया था। जो युग अभी अभी समाप्त हुआ है उसके महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं एडिसन, राकफेलर, लेनिन और सनयातसेन। सनयातसेन को छोड़कर ये सभी लोग संस्कृति-हीन थे, अतीत से घृणा करनेवाले थे आत्मविश्वासी और निर्दयी थे। उनके विचारों और उनकी भावनाओं में परम्परागत विवेक को कोई स्थान ही नहीं था उन्हें तो केवल यान्त्रिकता और संगठन में ही अभिरुचि थी। यदि भिन्न प्रकार की शिक्षा मिली होती तो ये सभी लोग भिन्न प्रकार के व्यक्ति हो सकते थे। एडिसन ने युवावस्था में इतिहास, काव्य और कला का ज्ञान प्राप्त किया होता राकफेलर को यह सिखाया जा सकता था कि क्राएसस और कैसस उसके पूर्वगामी हो चुके हैं लेनिन के विद्यार्थी जीवन में उसके भाई को जो फाँसी दी गई उसके परिणामस्वरूप उसके मन में जो घृणा बस गई थी उसके स्थान पर उसे इस्लाम के उदय का और प्यूरिटन सम्प्रदाय के दयालुता से धनिक तन्त्र की ओर विकसित होने का इतिहास पढ़ाया जा सकता था। इस प्रकार की शिक्षा से इन महापुरुषों की आत्मा में संशय के कुछ बीज पैदा किये जा सकते थे। और यदि थोड़ा-सा भी संशय इनकी आत्माओं में उत्पन्न हो गया होता तो उनकी उपलब्धि की मात्रा शायद कुछ कम हो गई होती, किन्तु उसका मूल्य बहुत अधिक बढ़ गया होता।

हमारे संसार को संस्कृति और सौन्दर्य की एक विरासत मिली है लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि हर पीढ़ी में हम इस विरासत को उस पीढ़ी के ऐसे लोगों को सौंपते गए हैं जो कम सक्रिय और महत्त्वपूर्ण रहे हैं। संसार का शासन ऐसे लोगों के हाथ में जाने दिया गया है जिन्हें अतीत का कोई ज्ञान नहीं है जिनके हृदय में जो कुछ भी परम्परागत है उसके प्रति कोई कोमल भावना नहीं है और जिन्हें इतनी भी समझ नहीं है कि वे किस निधि को नष्ट किए जा रहे हैं। शासकों से मेरा अर्थ केवल उन लोगों से नहीं है जो मन्त्री पदों

पर आसीन हैं बल्कि मेरा मतलब उन लोगों से है जिनके हाथ में वास्तविक शक्ति है। स्थिति को ऐसी बनाए रखने का कोई भी तात्विक कारण नहीं है। इस स्थिति को रोकना एक शैक्षणिक समस्या है और कोई बहुत कठिन समस्या नहीं है। अतीत काल में प्राय लोगों की दिक दृष्टि संकीर्ण होती थी लेकिन हमारे युग के प्रमुख लोगों में काल दृष्टि की संकीर्णता है। अतीत के प्रति उनके हृदय में एक ऐसी घृणा है जो नितान्त अनुपयुक्त है, और वर्तमान के प्रति एक ऐसा सम्मान है जिसका पात्र यह युग और भी कम है। प्राचीन काल के नीति सूत्र आज बहुत पुराने समझे जाते हैं लेकिन फिर भी नये नीति-सूत्रों की आवश्यकता भी महसूस की जाती है। ऐसे नीति-सूत्रों में मैं सबसे पहला स्थान दूंगा इस सूत्र को— बहुत अधिक हानि करने के बजाय थोड़ा-सा कल्याण कर देना अच्छा है। इस सूत्र का कुछ अर्थपरता देने के लिए निश्चय ही यह आवश्यक होगा कि कल्याण की भावना भी कुछ स्पष्ट कर दी जाए। उदाहरण के लिए आधुनिक जमाने में शायद ही कुछ ऐसे लोग हों जिन्हें यह विश्वास करने के लिए प्रेरित किया जा सके कि तेज संचलन में स्वत कोई उत्तमता नहीं निहित है। नरक से स्वर्ग तक चढ जाना अच्छा है भले ही गति बहुत धीमी हो और प्रक्रिया आयासपूर्ण हो, स्वर्ग से नरक में गिर जाना बुरा है भले ही इस पतन की गति मिल्टन के शैतान की गति-सी तेज हो। और यह बात भी नहीं कही जा सकती कि भौतिक पदार्थों के उत्पादन में होने वाली वृद्धि मात्र अपने-आपमें कोई बहुत महत्वपूर्ण बात है। अत्यधिक दीनता की रोकथाम महत्वपूर्ण है, किन्तु जिनके पास पहले ही बहुत अधिक सम्पन्नता है उनकी समृद्धि को बढाना श्रम का व्यय बरबाद करना है। अपराधों की रोक-थाम जरूरी हो सकती है लेकिन केवल इसलिए नए-नए अपराधों का आविष्कार करना प्रशंसनीय नहीं है कि पुलिस को उनकी रोकथाम में अपने कर्तव्य निर्वाह का अवसर मिले। विज्ञान ने मनुष्य को जो नई शक्तियां दी हैं उनका निरापद प्रयोग केवल उन्हीं लोगों द्वारा किया जा सकता है जो, चाहे इतिहास के अध्ययन द्वारा अथवा अपनी जीवनानुभूति से मानव भावनाओं के प्रति कुछ सम्मान और उन भावावेगों के प्रति कुछ कोमल अनुभूति उपलब्ध कर सके हों जो मनुष्य के दैनिक जीवन को कुछ रंग रूप देते हैं। मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि वैज्ञानिक तकनीक समय मिलने पर एक ऐसे कृत्रिम जगत् की सृष्टि नहीं कर सकेगी जो उस जगत् से सभी प्रकार बरण्य होगा जिसमें अभी तक लोग रहते आए हैं लेकिन मैं यह बात जरूर कहना हूँ कि यदि ऐसा किया जाना है तो इसे प्रायोगिक रूप में ही किया जाना चाहिए और इस अनुभूति के साथ किया जाना चाहिए कि शासन का प्रयोजन केवल शासकों को सुख पहुँचाना नहीं है बल्कि शासितों के लिए भी जीवन जीने योग्य बनाना है। वैज्ञानिक तकनीक को केवल शक्ति-सम्पन्न लोगों

का सम्पूर्तिपूर्ण करने का ही काम नहीं करने देना चाहिए और यह अनुभूति लोगों के नैतिक दृष्टिकोण का एक तात्विक अंग बन जानी चाहिए कि केवल सकल्प ही शुभ जीवन का निर्माण नहीं कर सकता। व्यक्ति तथा समाज दोनों ही के जीवन में ज्ञान और अनुभूति समान रूप से तात्विक अंग हैं। ज्ञान यदि व्यापक और सूक्ष्म हुआ तो यह अतीत युगों और दूरस्थ स्थानों की अनुभूति अपने साथ लाता है। यह ज्ञान होना है कि व्यक्ति न तो सर्वशक्तिमान है और न सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है और ऐसा ज्ञान उन्हें दृष्टि भी देता है जो मान मूल्यों को उन लोगों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट रूप से देख सकती है जिन्हें दूर स्थान असम्भव होता है। ज्ञान से भी अधिक महत्वपूर्ण हैं मनोभावों का जीवन। हृदय और स्नेह से हीन जगत एक मूल्य हीन जगत् है। वैज्ञानिक जोड़-तोड़ करने वाले को य बातें याद रखनी चाहिए और यदि वह इन्हें याद रखता है तो उसकी जोड़ तोड़ पूर्णतः लाभदायक हो सकती है। आवश्यकता केवल यह है कि लोग नई शक्ति से इतना अधिक मदोन्मत्त न हो जाएँ कि उन सत्यों को भी भूल जाएँ जिनसे प्रत्येक पूर्वगामी पीढ़ी भलीभाँति परिचित थी। सम्पूर्ण विवेक नया नहीं है, और न सम्पूर्ण मूढ़ता पुरानी ही है।

अभी तक तो प्रकृति की अधीनता ने मनुष्य को अनुशासित रखा था। इस अधीनता से अपने आपको मुक्त करके आज मनुष्य कुछ उन दोषों का प्रदर्शन कर रहा है जो मालिक बन जाने वाले गुलाम में देखे जाते हैं। एक नये नैतिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है जिसमें प्रकृति की शक्तियों की अधीनता के स्थान पर मनुष्य में जो कुछ सर्वोत्तम है उसके सम्मान की प्रतिष्ठा की जाए। जहाँ इस सम्मान का अभाव है वहीं वैज्ञानिक तकनीक खतरनाक है। जब तक यह सम्मान विद्यमान है तब तक विज्ञान मनुष्य को प्रकृति की दासता से मुक्त करने के बाद अब उसे स्वयं अपने भीतर की दास भावना के बन्धन से मुक्त कराने की ओर प्रगति कर सकता है। खतरे तो हैं, लेकिन वे अनिवार्य नहीं हैं और भविष्य के प्रति आशा कम-से-कम उतनी ही तर्कसंगत है जितना तर्कसंगत भय है।

● ●